सिरोहीराज्य का इतिहास.

रचयिता

पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

वैदिक-यन्त्रालय अजमेर में

पण्डित श्रीहरिश्चंद्र त्रिवेदी के प्रबन्ध से

छपा.

विक्रम संवत् १९६८. ईसवी सन् १९११.

सिरोही का राज्य-चिह्न।

भूमिका.

समस्त सभ्य तथा उन्नतशाली जातियों में इतिहासविद्या का बड़ा ही गौरव माना जाता है, क्योंकि प्रत्येक जाति या देश की उन्नति अथवा अवनति किन कारणों से हुई, यह जानने का साधन केवल ऐतिहासिक पुस्तक ही हैं. प्रत्येक जाति के अस्तित्व और उन्नति के लिये इतिहास की परम आवश्यकता रहती है. राजपूताने में यह कहावत परंपरा से चली आती है, कि " नाम गीतड़ों या भीतड़ों से ही रहता है " अर्थात् जिनका इतिहास या चरित्र ऐतिहासिक पुस्तकों में लिखा रहता है या जिनके बनवाये महल, मकानात, मंदिर आदि विद्यमान होते हैं, उन्हींकी कीर्त्ति चिरस्थायी रहती है. राजपूताने की यह कहावत यथार्थ है, तो भी भीतड़ों अर्थात् बड़े बड़े मकानात आदि के बनवानेवालों का नाम उतने समय तक बना नहीं रहता, जितना कि गीतड़ों अर्थात् ऐतिहासिक पुस्तकों से बना रहता है. यदि व्यास और वाल्मीक आदि कृष्ण और रामचन्द्र का चरित्र न लिखते, बाणभट्ट तथा चीनी यात्री हुएन्त्संग महाप्रतापी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) का चरित्र अपने पुस्तकों में अंकित न करते तो उनका नाम चिरस्थायी न रहता. सारांश यह है, कि जिनका इतिहास होता है उन्हींका अस्तित्व रहता है. इसीसे इतिहास का महत्व माना जाता है.

एक समय ऐसा था, कि भारतवर्ष विद्या, सभ्यता तथा उन्नति आदि

में भूमंडल में मुख्य था और यहां के विद्वानों ने वेद, दर्शन, काव्य, साहित्य, गणित, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि अनेक विषयों में अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे और अनेक दूर दूर के देशवासियों ने उनकी सभ्यता तथा विद्या का लाभ उठाया, परन्तु खेद की बात यह है, कि यहांवालों ने अपने देश का शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने का विशेष यत्न किया हो, ऐसा पाया नहीं जाता, क्योंकि मुसलमानों के पूर्व का इस देश का लिखित इतिहास नहीं मिलता, जैसा कि मिसर (इजिप्ट), चीन, यूनान आदि देशों का चार पांच हज़ार वर्ष पूर्व का शृंखलाबद्ध मिल आता है. इस अभाव का मुख्य कारण यही अनुमान होता है, कि यहां के विद्वानों की रुचि प्रवृत्तिमार्ग की अपेक्षा निवृत्तिमार्ग की तरफ़ अधिक होने के कारण उन्होंने मनुष्यों के चरित्र नहीं, किन्तु भगवान् के अवतार तथा देवी देवताओं के चरित्र लिखने में ही अपना श्रम सार्थक माना. इसीसे अपने देश के इतिहास की तरफ़ उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया. दूसरा कारण यह भी है, कि प्राचीनकाल से ही इस विस्तीर्ण देश में एक ही सार्वभौम राजा का राज्य कभी नहीं रहा, किन्तु अनेक स्वतंत्र राज्य रहे. जहांके राजा अपना राज्य बढ़ाने के लिये पड़ोसियों से सदा लड़ते ही रहे और कभी कभी तो ऐसा भी बना, कि किसी प्रबल राजा ने एक महाराज्य की स्थापना की और उसीके जीते जी या उसके पीछे थोड़े ही समय में उसका अंत होगया. ऐसी स्थितिवाले देश का शृंखलाबद्ध इतिहास लिखा जाना भी सर्वथा असंभव

था, तो भी यह निश्चित है, कि यहां के लोग इतिहासविद्या से परिचित थे और पुराण, काव्य, नाटक आदि विषयों के जो कुछ ग्रन्थ अनेक बार के अत्याचारों के बाद भी बचने पाये हैं, वे इसकी साक्षी दे रहे हैं, परन्तु मुसल्मानों के राज्यसमय तक इन बचेकुचे ग्रन्थों को संग्रह कर उनसे ऐतिहासिक वृत्तान्त संग्रह करने का यत्न किसी ने न किया, जिससे यहां के अनेक प्रतापी राजा, सामंत, वीरपुरुष, विद्वान्, धर्मप्रवर्तक, धनाढ्य, दानी आदि पुरुषों के नाम तक लुप्त होगये, परन्तु जब से इस देश पर न्यायशील सर्कार अंग्रेज़ी का राज्य हुआ, तब से विद्या का फिर प्रचार ही नहीं, किन्तु विद्या से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक विषय की बहुत कुछ उन्नति हुई है और सर्कार की उदार सहायता तथा अनेक यूरोपिअन और देशी विद्वानों के शोध से असंख्य शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के तथा अनेक इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले पुस्तक प्रसिद्धि में आये हैं †, जिनसे भारतवर्ष के प्रत्येक विभाग का प्राचीन इतिहास लिखने का श्रम कुछ कुछ सफल हो सकता है.

इतिहासविद्या की तरफ़ रुचि होने के कारण मैंने मिसर (इजिप्ट), यूनान, चीन, रोम आदि देशों के इतिहास पढ़े, तब से ही मेरी रुचि राजपूत जाति का, जो वीरता, सहनशीलता, उदारता आदि गुणों में प्रसिद्ध है और जिसका राज्य पहिले सारे भारतवर्ष पर रहा

† 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री' नामक लेख में, जो पुस्तकाकार भी छपा है, मैंने यहां के प्राचीन इतिहास की उपलब्ध सामग्री का विवरण लिखा है.

था, इतिहास पढ़ने की तरफ़ बढ़ी, जिससे मैंने महानुभाव कर्नल टॉड साहब का 'राजस्थान' (राजपूत जाति और विशेष कर राजपूताना के मुख्य मुख्य राज्यों का इतिहास) तथा फार्बस साहब की 'रासमाला' नामक गुजरात के इतिहास की पुस्तक पढ़ी, जिससे इधर मेरी रुचि और भी बढ़ी और यह इच्छा हुई, कि समस्त राजपूत वंशों का श्रृंखला-बद्ध प्राचीन इतिहास संग्रह करने का यत्न किया जावे. इसी काममें मैं वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४)से प्रवृत्त हुआ और मेरा अवकाश का विशेष समय इसी काममें बिताने लगा. इस प्रसंग में एक दिन यह इच्छा हुई, कि अपनी जन्मभूमि अर्थात् सिरोहीराज्य का इतिहास पढ़कर वहां की जानकारी प्राप्त करूं. इसके लिये मैंने अनेक ऐतिहासिक पुस्तक देखे, परन्तु वहां का श्रृंखलाबद्ध इतिहास न मिल-सका इतना ही नहीं, किन्तु किसी पुस्तक में पांच चार पत्रों से अधिक वहां का ऐतिहासिक वृत्तान्त न पाया, जिससे मैंने सिरोही से वहां का इतिहास प्राप्तकर अपनी जिज्ञासा पूर्ण करनी चाही, परन्तु जब वहां से यह उत्तर मिला, कि "यहां पर राज्य का कोई लिखित इतिहास नहीं है और वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) में जोधपुर के महाराजा मानसिंह की फौज ने सिरोही पर हमला कर इस शहर को लूटा, उस समय यहां का दफ्तर भी उसने जला दिया, जिससे इतिहास की जो कुछ सामग्री यहां पर थी, वह भी सब नष्ट होगई." इस ख़बर के सुनने से मुझे बड़ा ही खेद हुआ और उसी समय वहां के इतिहास की

सामग्री एकत्र कर एक नवीन इतिहास का निर्माण करना निश्चय किया और जब मैलिसन साहब की 'नेटिव स्टेट्स ऑफ़ इंडिआ' नामक पुस्तक में यह पढ़ा, कि "राजपूताने में केवल एक सिरोहीराज्य ही ऐसा है, कि जिसने अपनी स्वतन्त्रता कायम रक्खी और न मुग़लों न राठोड़ों और न मरहठों की आधीनता स्वीकार की" तब उधर मेरी रुचि और भी बढ़ी.

वि० सं० १९४३-४४ में बंबई की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय के जिन जिन पुस्तकों में सिरोही के इतिहास संबंध में जो कुछ लिखा मिला वह मैंने संग्रह किया. वहीं की एक अलमारी में रासमाला के कर्त्ता प्रसिद्ध फार्बस साहब के संग्रह किये हुए हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह में से भी कई एक उपयोगी बातों का पता लगा और उसी संग्रह से नाडोल के दो ताम्रपत्र तथा आबू के कई एक शिलालेखों की नक़लें भी प्राप्त हुईं, जिनमें आबू के परमार तथा नाडोल के चौहान राजाओं के कुछ कुछ प्राचीन इतिहास था. जब नाडोल के एक ताम्रपत्र में वहांपर चौहानों का राज्य कायम करनेवाले राजा लक्ष्मण (राव लाखणसी) के शाकंभरी (सांभर) के चौहान राजाओं के साथ के संबंध का पता लगा तब मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ और अपने कार्य की तरफ़ रुचि और उत्साह दोनों बढ़े. वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में मैंने बंबई से अपने जन्मस्थान रोहेड़ा गांव में आकर ३ मास तक सिरोहीराज्य में भ्रमण किया और अनेक प्राचीन शिलालेखों, कितने

एक ताम्रपत्रों तथा भाटों (बड़वों) की लिखी हुई २ ख्यात की पुस्तकों का पता लगाकर उनकी नक़लें कीं. फिर वि० सं० १६४५ के प्रारंभ में राजपूत राजाओं के प्राचीन गौरव, उनकी वर्त्तमान स्थिति, उनकी सवारियों आदि के ठाठ का, जिनका अलौकिक वर्णन महानुभाव कर्नल टॉड के 'राजस्थान' में पढ़ा था, अनुभव प्राप्त करने तथा मेवाड़ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों को देखने की इच्छा से मेरा जाना उदयपुर हुआ. उस समय वहांपर 'वीरविनोद' नाम का मेवाड़ का बृहत् इतिहास उक्त राज्य के इतिहासकार्यालय के अध्यक्ष महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास बना रहे थे. मेरे वहां जाने बाद थोड़े ही दिनों में मैं उक्त इतिहासकार्यालय का सेक्रेटरी नियत हुआ, जिससे मुझको भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की खोज करने का बहुत अच्छा मौक़ा मिला. वहां रहकर मैंने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहासविषयक बहुत कुछ खोज की और साथ ही साथ सिरोही के इतिहास की भी बहुतसी सामग्री एकत्रित की. सिरोही तथा जोधपुर आदि प्रदेशों में जहां जहां चौहानों का राज्य रहा, वहां कई बार दौरा किया. चौहानों, परमारों तथा अन्य जिन जिन राजवंशों का सिरोहीराज्य से सम्बन्ध रहा, उनके शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के, ऐतिहासिक पुस्तकें, भाटों की ख्यातें, चारणों के मुख से सुने हुए गीत, छप्पय, दोहे आदि का संग्रहकर वि० सं० १६५६ (ई० स० १८६६) से इस इतिहास का लिखना प्रारंभ किया और वि० सं० १६६१ (ई० स० १६०४) तक इसके ६

प्रकरण लिख लिये. पिछले १०० वर्ष के क़रीब का वृत्तान्त लिखने में सिरोही के दफ्तर के काग़ज़ों को देखने की आवश्यकता हुई, परन्तु मेरा रहना उदयपुर में होने से उन सबको देखने और उनसे ऐतिहासिक बातों का संग्रह करने का अवकाश मुझको न होने से मैं सिरोही गया और श्रीमान् महारावजी सर केसरीसिंहजी साहब, के. सी. एस. आई., जी. सी. आई. ई. की सेवा में उपस्थित होकर इस इतिहास का जितना हिस्सा मैंने लिखा था वह नज़र कर निवेदन किया, कि यहां से आगे का वृत्तान्त लिखने में सिरोही के दफ्तर के काग़ज़ों को देखने की आवश्यकता है, परन्तु मुझे इतना अवकाश नहीं है, कि मैं यहां रहकर उनको देख सकूं. इस पर श्रीमानों ने अपनी गुणग्राहकता के कारण मेरा लिखा हुआ इतिहास का हिस्सा पढ़कर उसपर प्रसन्नता प्रकट की और अपने राज्य के दफ्तर के काग़ज़ों को पढ़कर उनका सारांश तय्यार कर मेरे पास भेजने की आज्ञा पंडित मंछाराम शुक्ल को दी, जो उन दिनों महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब के शिक्षक थे. पंडित मंछाराम शुक्ल ने बड़ी योग्यता के साथ मेरे लिये वहां के आवश्यकीय काग़ज़ों का सारांश तय्यार किया इतना ही नहीं, किन्तु उसके आधार पर पिछला इतिहास भी लिख भेजा, जिसके लिये मैं उनका उपकृत हूं. मैंने उक्त सामग्री के आधार पर वि० सं० १९६४ (ई० स० १९०७) में इस इतिहास के अन्तिम दो प्रकरण लिख इसे समाप्त कर दिया. फिर वि० सं० १९६६ (ई० स० १९१०) और १९६७ (ई० स० १९११) के शीतकाल में मैंने राजपूताना

म्यूज़िअम अजमेर के लिये प्राचीन वस्तुओं की तलाश करने के निमित्त सिरोहीराज्य में फिर दौरा किया और उस समय जो कुछ नई बातें मालूम हुईं, वे तथा पिछले तीन वरसों का वृत्तान्त भी छपते समय इसमें जोड़ दिया. श्रीमान् महारावजी सर केसरीसिंहजी साहब की इंग्लैंड की यात्रा का वृत्तान्त महता मगनलाल ने, जो इनके साथ थे, मेरे पास लिख भेजा और उसीके अनुसार वह दर्ज किया गया है.

राजपूताना के भिन्न भिन्न राज्यों का विस्तृत इतिहास अबतक हिन्दी भाषा में प्रसिद्ध नहीं हुआ, ऐसी दशा में यदि मेरी यह पुस्तक इतिहासप्रेमियों तथा राजपूताना के निवासियों को कुछ भी उपयोगी हो-सकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा.

इस पुस्तक † के लिखने में मैंने अनेक संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, उर्दू तथा कितने ही हस्तलिखित पुस्तकों से, जिनकी सूची शेषसंग्रह नं० २ में दीगई है, सहायता ली है. उनके कर्ताओं का मैं बहुत ही उपकृत हूं.

अजमेर.
अक्षयतृतीया वि० सं० १९६८.

गौरीशंकर हीराचन्द, ओझा.

---

† इस पुस्तक में जो वि० सं० लिखा गया है. वह बहुधा चैत्रादि विक्रम संवत् है.

सूचीपत्र.

प्रकरण पहिला.

प्रकरण दूसरा.

प्रकरण तीसरा.

प्रकरण चौथा.

पृष्ठ.

प्रकरण पांचवां.

पृष्ठ.

प्रकरण छठा.

प्रकरण सातवां.

पृष्ठ.

पृष्ठ.

प्रकरण आठवां.

पृष्ठ.

पृष्ठ.

पृष्ठ.

शेष संग्रह नं० १.

शेष संग्रह नं० २.

सिरोहीराज्य का इतिहास.

प्रकरण पहिला.

भूगोल-सम्बन्धी वृत्तान्त.

सिरोहीराज्य ‡ राजपूताने के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में २४° २०′ और २५° १७′ उत्तर अक्षांश तथा ७२° १६′ और ७३° १०′ पूर्व रेखांश के बीच है. इसका क्षेत्रफल १९६४ मील † मुरब्बा है.

‡ जिस देश को इस समय 'सिरोही का राज्य' कहते हैं उसका प्राचीन नाम 'अर्बुददेश' अर्थात् आबू का मुल्क था, जैसा कि पुराणों में लिखा मिलता है, परन्तु जब से सिरोही नगर बसाया जाकर राजधानी बना तब से 'सिरोही का राज्य' कहलाया.

सिरोही शब्द की उत्पत्ति 'सिरणवा' से मानी जाती है. सिरणवा नामक पर्वतश्रेणी के नीचे इस शहर के बसने के कारण इसका नाम सिरोही होना बतलाते हैं. कोई कोई 'शिवपुरी' नाम से सिरोही कहलाना भी मानते हैं, परन्तु 'सिरोही' शब्द शिवपुरी के बनिस्बत सिरणवे से अधिक मिलता हुआ है और पुरानी कविता में सिरोही के स्थान पर सिरणवा शब्द का प्रयोग भी मिलता है.

† पहिली बार छपे हुए 'राजपूताना गैज़ेटिअर' में सिरोहीराज्य का क्षेत्रफल ३०२० मील मुरब्बा होना लिखा है, जो ठीक नहीं जचता.

सीमा—इसकी उत्तर में मारवाड़, दक्षिण में पालनपुर और दांता, दक्षिण-पूर्व में ईडर, पूर्व में मेवाड़ तथा मारवाड़ और पश्चिम में मारवाड़ है.

पर्वतश्रेणी—दांता, ईडर और मेवाड़ की सीमा की तरफ़ का हिस्सा आड़ावला (अर्वली) पहाड़ से ढका हुआ है. इस पहाड़ी श्रेणी की पश्चिम में थोड़ीसी समान भूमि है, जिसमें होकर राजपूताना मालवा रेलवे निकली है. उस समान भूमि की पश्चिम में फिर प्रसिद्ध आबू का पहाड़ आगया है, जिसका सिलसिला उत्तर-पूर्व में एरनपुर के निकट तक चला गया है. रियासत के उत्तरी तथा पश्चिमी हिस्से की भूमि समान है. उसमें भी कई अलग अलग पहाड़ियां आगई हैं.

इस राज्य के पहाड़ी सिलसिले में सबसे ऊंचा आबूपहाड़ है, जिसका ऊपर का हिस्सा लंबाई में १२ माइल और चौड़ाई में २ से ३ माइल तक है. इसकी कुदरती शोभा बड़ी ही सुन्दर है. आबू के बाज़ार के आसपास का हिस्सा समुद्र की सतह से क़रीब ४००० फीट ऊंचा है. इस पहाड़ का सबसे ऊंचा शिखर, जो 'गुरुशिखर' नाम से प्रसिद्ध है, समुद्र की सतह से ५६५० फीट ऊंचा है. हिमालय और नीलगिरि के बीच के प्रदेश में इतनी ऊंचाई का दूसरा कोई पहाड़ी शिखर नहीं है. इसकी शीतलता के कारण राजपूताने के एजंट गवर्नर-जनरल साहब का यह मुख्य निवासस्थान है और राजपूताना वगैरह के राजा तथा धनाढ्य लोग गरमी के दिनों में यहां आकर रहा करते हैं.

आबू के उत्तर की पर्वतश्रेणी सिरोही के पास होती हुई पूर्व में मुड़कर मारवाड़ की सीमा तक चली गई है, जिसमें २००० से २५०० फीट की ऊंचाई के कई शिखर हैं. इस श्रेणी की उत्तर-पश्चिम में एक अलग ही पहाड़ी श्रेणी आगई है, जो 'माळ का मगरा' नाम से प्रसिद्ध है और मारवाड़ की सीमा तक चली गई है. इसकी अधिक से अधिक ऊंचाई २७३७ फीट है.

आबू से दक्षिण और पश्चिम की पहाड़ी श्रेणियां पालनपुर राज्य में चली गई हैं, जिनमें से 'चोटीला' नामक पहाड़ की ऊंचाई २७५५ और उससे आगे के 'जयराज' की ३५७५ फीट है.

आबू से पश्चिम में, राज्य की दक्षिण-पश्चिमी सीमा के निकट नंदवार (नांदवणा) नामकी पहाड़ियां हैं, जो नींबज की पहाड़ियां भी कहलाती हैं. उनकी अधिक से अधिक ऊंचाई ३२७७ फीट है. इन से उत्तर में भी कई एक अलग अलग पहाड़ियां आगई हैं.

नदी—इस राज्य में छोटी छोटी कई नदियां हैं, परन्तु सालभर बहने वाली एक भी नहीं है. उनमें मुख्य मुख्य ये हैं:—

पश्चिमी † बनास—इसमें कई जगह सालभर पानी रहता है. यह नदी शहर सिरोही के पूर्व की पहाड़ियों से निकलती है और झाड़ोली के पास से दक्षिण की तरफ़ मुड़कर आबूरोड़ (खराड़ी)

† राजपूताने में बनास नाम की दो नदियां होने के कारण इसको पश्चिमी बनास लिखा है. पूर्वी बनास मेवाड़ से निकल कर चंबल में जा मिलती है.

व सांतपुर के पास बहती हुई पालनपुर राज्य में होकर कच्छ के रण में जा गिरती है.

सूकली—यह नदी नाणे (जोधपुर राज्य में) के पास से निकल कर सिरोही राज्य में दाखिल होती है, और उत्तर-पश्चिम में बहती हुई खणदरा व रांवाड़ा के पास होकर मारवाड़ की सीमा में जाकर जवाई में मिल जाती है.

खारी—यह सिरोही से उत्तर-पूर्व की पहाड़ियों से निकलती है और उत्तर-पश्चिम में बहती हुई सांवली, लोटीवाड़ा व उमेदगढ़ के पास होकर जोधपुर राज्य में प्रवेश करती है, जहां पर जवाई में मिलजाती है.

कृष्णावती—यह नदी आबू से उत्तर की पहाड़ी श्रेणी से निकलती है और उत्तर-पश्चिम में बहती हुई मीरपुर, मामावली, पाडीव वग़ैरह के पास होकर उमेदगढ़ के पास खारी में जा गिरती है.

सूकली (दूसरी)—यह आबू की उत्तर से निकलकर दक्षिण-पश्चिम में बहती हुई पोइत्रां, हाथल, सेलवाड़ा, खरोंटी और जवाद्रा के पास होती हुई पालनपुर राज्य में जाकर बनास में मिल जाती है.

तालाब—इस राज्य में बहुत बड़ा तालाब कोई नहीं है. आबूपर का 'नखी' तालाब छोटा होनेपर भी आबू की शोभा को बढ़ाता है. खराड़ी से ८ मील पश्चिम में 'चंडेला', पींडवाड़े के पास 'डायामंड जुबिली टैंक' (तालाब) जो स्वर्गवासिनी श्रीमती भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिया

की डायमंड जुबिली की यादगार में वर्तमान महारावजी साहब ने बनवाया है. ये दोनों तालाब खेती के लिये उपयोगी हैं. सिरोही के पास तीन तालाब हैं, जिनमें मुख्य मानसरोवर है. इसका काम अबतक जारी है. इसमें साल भर तक बहुत पानी रहता है, जिससे सिरोही के लोगों को जलका बड़ा ही आराम होगया है. यह तालाब भी श्रीमान् वर्तमान महारावजी साहब ने अपनी प्रजा के आराम के लिये बनवाया है, और अपनी स्वर्गवासिनी महाराणी मानकंवर (धरमपुर वालों) के नाम पर से इसका नाम मानसरोवर रक्खा है. इनके अलावा और भी छोटे छोटे बहुत से तालाब हैं, परन्तु उनमें से एक भी वर्णन के योग्य नहीं है.

खनिजपदार्थ—सिरोही राज्य में अब तक 'जीऑलॉजिकल् सर्वे' अर्थात् खनिज पदार्थों की खोज नहीं हुई, जिससे खनिज पदार्थों का ठीक ठीक हाल मालूम नहीं हुआ. इमारती काम का पत्थर तथा पत्थर की पट्टियां कई जगह निकलती हैं. चूना बनाने का पत्थर आबूरोड़ के पास तथा दूसरी कई जगह बहुतायत से निकलता है. राजपूताना मालवा रेलवे अपनी ज़रूरत के लिये इस क़िस्म का पत्थर आबूरोड़ के पाससे लेती है. यह भी सुना गया है कि आबू पर रेलवे स्कूल से थोड़ी दूरी पर स्फटिक की खान है, जिसमें से बड़े बड़े स्फटिक निकल सकते हैं. आबू पर ऊतरज और शेरगांव के बीच पुष्कर नामक प्राचीन तीर्थस्थान के पास संगमर्मर की खान है, जहां से पहिले बहुत पत्थर निकाला

गया था. आबू पर के प्रसिद्ध देलवाड़ा के जैनमंदिरों में भी इस खान-का पत्थर कुछ कुछ काम में आया हो ऐसा अनुमान होता है. सेलवाड़ा (अनाद्रा से पश्चिम में), सेरवा तथा पेरवा की खानों से भी संगमर्मर बहुत निकलता है, जो उत्तम गिना जाता है. अभ्रक कई जगह मिलता है, और सीसा, तांबा, लोहा, गंधक, फिटकड़ी, सुरमा तथा सोमल की भी खानों का होना सुना जाता है.

वनस्पति—सिरोही राज्य का क़रीब क़रीब तीसरा भाग जंगलों से भरा हुआ है, जिनमें अनेक प्रकार के वृक्षादि पाये जाते हैं. उनमें मुख्य खैर, धव, खेजड़ा, आंवला, बैर, बबूल, पीलू, ढाक, बांस, आम, सीसम, जामन, कचनार, हलदू, बेल, टीमरू, सेमल, गूलर, धामन, नीम, रायण, पीपल, बड़, इमली, थूअर आदि हैं.

जंगली जानवर और पक्षी आदि—ऐसा सुना जाता है, कि पहिले इस राज्य में सिंह भी थे, परन्तु अब नहीं रहे. बाघ पहिले अधिकता से पाये जाते थे, जिनसे पशुओं का बड़ा नुकसान होता था, परन्तु वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) के बड़े कहत के वक्त से उनकी कमी होगई है. चीते, भेड़िये, जरख, रींछ, हिरण, सांभर, चीतल, सुअर, रोझ (नीलगाय), ख़रगोश आदि जानवर भी बहुत हैं. जंगली पक्षिओं में दो तीन क़िस्म के तीतर, बटेर, जंगली मुर्ग़ आदि जंगलों में पाये जाते हैं. मछलियां बनास नदी या तालावों के सिवाय कम मिलती हैं, और मछलियों की शिकार करनेवाले बुगले, सारस, ढींच वग़ैरा परंद

जलस्थानों के निकट ही पाये जाते हैं. गांवों के पास मोर और कबूतर बहुत होते हैं, जिनको मारने की सख्त मनाई है. बंदरों का उपद्रव सर्वत्र पाया जाता है.

आबहवा–यहां की आबहवा तन्दुरुस्ती के लिये अच्छी है. हैज़ा यहां कम होता है. गर्मी भी ज़ियादह नहीं पड़ती. मई और जून में गरम हवा जिसको 'लू' कहते हैं, चलती है, परन्तु आबू तथा दूसरे ऊंचाई वाले हिस्से ठंढे रहते हैं. सर्दी भी अधिक नहीं पड़ती और कम अर्से तक रहती है, परन्तु आबू पर खूब पड़ती है. राज्य में बरखा की औसत क़रीब १९ इंच के है, परन्तु आबू की ऊंचाई के कारण वहां की औसत ६९ इंच के क़रीब है.

बर्सात के अंत में मौसमी बुख़ार हो जाता है, और वाळा (नेरु) की बीमारी कहीं कहीं अधिकता से पाई जाती है. दूसरी बीमारियों में गुजराती, दस्त, पेचिश, तिल्ली, बादी वगैरा मुख्य हैं. शीतला की बीमारी अब बहुत कम होती है. प्लेग की बीमारी इस राज्य में ई० स० १८९६ (वि० सं० १९५३) तक नहीं हुई. उस वर्षमें बाहर से आये हुए इस बीमारी वाले ४ मनुष्य आबूरोड़ (खराड़ी) में मरे, तबसे इस बीमारी का प्रवेश इस राज्य में न हो, इसका पूरा पूरा बन्दोबस्त रक्खा गया, और बीमारीवाले स्थानों से आनेवालों के लिये कारंटाइन का बन्दोवस्त किया गया, जिससे साल भर तक राज्य भरमें शांति रही, परन्तु ई० स० १८९७ (वि० सं० १९५४) के नवम्बर महीने

में पूना से आया हुआ एक धनवान् महाजन, जो बीमार था, किसी युक्ति से तिवरी गांव में पहुंचा और दूसरे ही दिन प्लेग से मर गया. तब से ही इस राज्य में प्लेग का प्रवेश हुआ. फिर समय समय पर रोहेडा, सिरोही, शिवगंज आदि कई जगह पर प्लेग फैला.

आबादी–इस राज्य में अबतक चार बार मर्दमशुमारी हुई है. जिससे पाया जाता है, कि यहां की आबादी ई० स० १८८१ में १४२९०३. ई०स०१८९१ में १९०८३६, ई०स० १९०१ में १५४५४४ और ई०स० १९११ में १८९१७३ मनुष्यों की थी. ई०स०१९०१ में आबादी कम होने के दो कारण हुए, एक तो वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) का भारी कहत और दूसरा वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) में बुखार की बीमारी का बड़े ज़ोर से होना.

धर्म–यहां के लोगों में मुख्य धर्म तीन हैं, हिन्दु, मुसल्मान और ईसाई. पारसियों के धर्म को मानने वाले यहां बहुत ही कम हैं, और वे भी नौकरी या ब्योपार के कारण इधर रहते हैं.

जातियां–हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, चारण, माली, दर्ज़ी, सुनार, लुहार, सुथार, (बढ़ई) कुम्भार, नाई, धोबी, घांची, कुनबी, कोली, गोसांई. बेरागी, रेबारी, ढोली, ढेड़ (चमार), सरगड़े, भंगी आदि कई जातियां हैं. जंगली जातियों में यहां पर भील, गरासिये, मीणे और मोगिये हैं. मुसल्मानों में शेख़, सैय्यद और पठान मुख्य हैं.

पेशा–यहां के लोगों में से अधिकतर खेती करते हैं. कितने ही गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि जानवरों को पाल कर उन्हीं पर अपना

निर्वाह करते हैं; कई व्योपार, नौकरी, दस्तकारी या मज़दूरी करते हैं, और कितने ही बंबई आदि दक्षिण के शहरों में जाकर नौकरी या व्योपार करते हैं.

पोशाक—ब्राह्मण, राजपूत और महाजन आदि अक्सर कुरता या लंबा अंगरखा, धोती (कोई कोई पायजामा) और पाग पहिनते हैं. थोड़े बरसों से पाग की जगह साफा बांधने का प्रचार बढ़ता जाता है. देहाती लोग और भील, मीने आदि घुटनों तक मोटे कपड़े की धोती व कमरी अंगरखी पहिनते हैं और सिर पर मोटा कपड़ा, जिसको 'पोतिआ' कहते हैं, बांधते हैं तथा रेज़े का पिछेवड़ा अक्सर पास रखते हैं. पहिले खेती करनेवालों तथा देहाती लोगों में जांघिया (कछनी) पहिनने की प्रथा थी, जो अब क़रीब क़रीब उठ गयी है.

मुख्य पैदायश—यहां की पैदायश में मुख्य गेहूं, जव, मक्की, तिल, सरसूं, बाजरा, मूंग, मोठ, उड़द, कुलथ, करांग, चीना, कूरी, बरठी, कोदरा, माल, मणचा, सांवलाई, चना, गवार, सण, अंबाड़ी, गन्ना, रुई, तंबाकू आदि हैं. मूली, बैंगन, मेथी, गाजर, मिर्च, पिआज़ आदि तर्कारियां अक्सर गांवों में बोई जाती हैं. आबू, सिरोही, खराड़ी व ऐरनपुर में अब कई तरह की अंग्रेज़ी तर्कारियों तथा आलू की भी खेती होने लगी है. फलों में आम, जामुन, अमरूद, बेर, खजूर, गूंदा, महुआ, करौंदा आदि मुख्य हैं. खेतों में ककड़ियां, भींडी, तोरी आदि भी चौमासे में बोई जाती हैं और नदियों में खर-

बूजे होते हैं. आबू आदि में अब अंगूर, दाडम तथा कई तरह के अंग्रेज़ी मेवे भी होने लगे हैं.

दस्तकारी–दस्तकारी में यहां पर मुख्य तलवार है, जिसकी प्रसिद्धि हिन्दुस्तान भर में है. तलवार के अतिरिक्त कटार, छुरी, भाला, तीर और कमान भी बनते हैं. कई गांवों में रेज़े का कपड़ा बनता है और कपड़े रंगे व छापे भी जाते हैं. सोने चांदी के ज़ेवर और तलवारों की मूठों पर सोने चांदी का काम भी अच्छा होता है.

व्योपार–व्योपार के लिये प्रसिद्ध जगह खराड़ी, सिरोही, रोहेड़ा, शिवगंज और पींडवाड़ा हैं. यहां से निकास होनेवाली चीज़ों में मुख्य गेहूं, जव, मक्की, तिल, सरसूं, चमड़ा, ऊन, रूई, गूंद, शहद, मोम, घी, बैल, भेड़, बकरी आदि हैं, और बाहर से आनेवाली चीज़ों में मुख्य शक्कर, गुड़, नमक, अफ़ियून, तंबाकू, मिट्टी का तेल, हाथी-दांत, सब तरह का कपड़ा, लोहा, सीसा, तांबा, पीतल, सोना, चांदी आदि हैं, और क़रीब क़रीब दूसरी सबही आवश्यक चीजें बाहर से आती हैं. बाहर से आनेवाली चीज़ों में से अधिकतर बंबई या गुजरात की तरफ़ से आती हैं. अफ़ियून मालवा और मेवाड़ से आता है.

भाषा–यहां की भाषा गुजराती-मिश्रित मारवाड़ी है.

त्यौहार–यहां पर हिन्दुओं के त्यौहारों में मुख्य होली, राखी, दशहरा और दिवाली हैं. इनके अतिरिक्त तीज, गणगौर आदि स्त्रियों के त्यौहार हैं. मुसलमानों के त्यौहारों में मुख्य दोनों ईद व ताज़िये हैं.

मेले–इस राज्य में समय समय पर हरसाल कई जगह मेले होते हैं, जिनमें मुख्य रवाई परगने में बामणवारजी नामक जैनमंदिर का मेला है. यह फाल्गुन सुदि ७ से १४ तक रहता है और अनुमान १०००० आदमी इसमें जमा होते हैं. पहिले इस मेले में बहुतसा माल दूर दूर से बिकने को आता था, परन्तु रेलवे के जारी होने बाद उतना नहीं आता. इसके अतिरिक्त सिरोही से २ मील पर प्रसिद्ध सारणेश्वरजी महादेव का, जो देवड़ा राजपूतों के इष्टदेव हैं, मेला भादवा सुदि ११ को. खूणी परगने में गंगोपिआ महादेव का मेला मेषसंक्रांति के दिन, हणाद्र के पास कोड़ीधजजी का मेला श्रावण वदि अमावास्या को, खराड़ी के पास के हृषिकेश का मेला भादवा सुदि ११ को और आबू पर वसिष्ठजी का मेला भादवा सुदि १५ को होता है. इनमें भी लोगों की भीड़ अच्छी होती है.

रेलवे–इस राज्य में क़रीब ४० माइल 'राजपूताना मालवा रेलवे' निकली है, जिसके ८ स्टेशन-मावल, आबूरोड़ (खराड़ी), कीवरली, भीमाणा, रोहेड़ा, बनास, पींडवाड़ा और केशवगंज इस राज्य में हैं. यह रेल ता॰ ३० दिसंबर सन् १८८० ई॰ को खुली थी. इससे यहां की प्रजा को बहुत लाभ हुआ और व्यापार की सुगमता हुई. वि॰ सं॰ १९२५ (ई॰ स॰ १८६८) के क़हत के समय रेल के न होने के कारण ग़रीबों को अन्न कठिनता से हाथ आता था, परन्तु इसी रेलवे के कारण सं॰ १९५६ (ई॰ स॰ १८९९) के अकाल में, जो पहिले से भी भारी था, अन्न सुगमता से मिल सका

इतना ही नहीं, किन्तु पहिले के अकाल से लगभग २½ गुना सस्ता बिका, जिसका कारण बाहर से माल लाने का सुभीता ही था, जो इस रेलके सबब से हुआ.

सड़कें व रास्ते–आगरे से अहमदाबाद जानेवाली बड़ी सड़क, जो ई० स० १८७१ और १८७६ के बीच सर्कार अंग्रेज़ी ने बनवाई थी, ६८ मील इस राज्य में होकर निकली है. आबूरोड़ से आबू तक १८ मील लंबी कङ्कर कुटी हुई पक्की सड़क बनी है. यह सड़क † भी सर्कार अंग्रेज़ी ने बनवाई है और इसकी मरम्मत भी सर्कार की ही ओर से होती है.

राज्य की तरफ़ से बनीहुई सड़कें ये हैं:—पींडवाड़ा के स्टेशन से सिरोही तक १६ माइल, रोहेड़ा के स्टेशन से कोटड़े की छावनी को जाने वाली सड़क का इस राज्य की हद तक का हिस्सा (१७ माइल) और आबूरोड़ स्टेशन से प्रसिद्ध अंबा भवानी को जानेवाली सड़क का इस राज्य की सीमा तक का हिस्सा. ये सब कच्ची (बिना कङ्कर कुटी हुई) सड़कें हैं, जिनकी मरम्मत राज्य से होती है.

डाकखाने–इस राज्य में सर्कार अंग्रेज़ी के १२ डाकखाने–आबू, आबूरोड़, ऐरनपुर, रोहेड़ा, रोहेड़ा स्टेशन, सिरोही, पाडीव, हणाद्रा,

† इस सड़क पर बनास नदी का बड़ा पुल 'जो रजवाड़ा ब्रिज' कहलाता है, खराड़ी से थोड़े अन्तर पर बना है, जिसका आधा खर्चा सर्कार अंग्रेज़ी ने और बाक़ी का राजपूताना के रईसों ने दिया है.

जावाल, कालंद्री, मडार और पींड़वाड़ा.

तारघर—आबू, आबूरोड़, एरनपुर और सिरोही में तारघर † हैं, जिनमें से पिछले ३ डाकखानों में शामिल हैं.

मदरसे—सिरोही में एक मदरसा है, जिसमें मिडल तक अंग्रेज़ी तथा हिन्दी और उर्दू की पढ़ाई होती है. राज्य के खर्च से चलनेवाला केवल एक यही मदरसा है.

आबूरोड़ में रेलवे की तरफ़ से रेलवे के यूरोपिअन व यूरेशिअन नौकरों के लड़कों के लिये अंग्रेज़ी मदरसा और दूसरों के लिये 'ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर हाईस्कूल' है, जिसको सर्कार अंग्रेज़ी से भी सहायता मिलती है. आबू पर अंग्रेज़ सिपाहियों के लड़कों के लिये लॉरेन्सस्कूल, यूरोपिअन तथा यूरेशिअनों के लड़कों के वास्ते 'हाईस्कूल' और दूसरों के लिये एक 'वर्नाक्यूलर' स्कूल भी है.

इन मदरसों के अतिरिक्त कई गांवों में देशी पाठशालाएं भी हैं, जो लोगों की तरफ़ से चलती हैं. उनमें लड़के हिसाब तथा हिन्दी का लिखना पढ़ना सीखते हैं. सन् १९०१ की मर्दुम शुमारी से पाया जाता है, कि इस राज्य की आबादी में से १०५९० मनुष्य अर्थात् फ़ी सैकड़ा १३ मनुष्य लिखना पढ़ना जानते हैं. राजपूताने के किसी दूसरे राज्य में पढ़ना लिखना जाननेवालों की इतनी औसत नहीं है.

अस्पताल—सिरोही में 'क्रौस्थवेट हॉस्पिटल' तथा पैलेस डि-

† इनके सिवाय रेलवे के सब स्टेशनों से भी तार भेजे जा सकते हैं.

स्पेन्सरी (महलों का दवाख़ाना) है, और शिवगंज में भी एक शफ़ाख़ाना है. ये तीनों राज्य के ख़र्च से चलते हैं. इनके सिवाय आबू पर ऐडम्स मेमोरिअल हॉस्पिटल, तथा आबूरोड़ (खराड़ी) में चैरिटेबल हॉस्पिटल (धर्मादा शफ़ाख़ाना) है. ये दोनों गवर्मेंट की सहायता और चंदे से चलते हैं. इनके सिवाय आबू पर सर्कारी लश्कर का हॉस्पिटल, एरनपुर की छावनी का अस्पताल तथा आबूरोड़ पर रेलवे नौकरों का अस्पताल भी है.

टीका—इस राज्य में शीतला का टीका लगाने का काम सन् १८५६ ई० में पहिले पहिल प्रारंभ हुआ. उस समय लोग उसके फ़ायदों को न जानने के कारण उसको बुरा समझते थे और उसके डरके मारे बच्चों को छिपा देते थे, परन्तु ज्यों ज्यों उसके फ़ायदे उनके ध्यान में आने लगे, त्यों त्यों उनकी शंका मिटती गई और अब वे ख़ुशी से अपने बच्चों के टीका लगवाते हैं. अब सालभर में ४००० से अधिक बच्चों के टीका लगाया जाता है, जिसके वास्ते राज्य की तरफ़ से दो टीका लगानेवाले नियत हैं और एक तीसरा आबू की म्युनिसिपैलिटी की तरफ़ से आबू पर रहता है.

राज्यप्रबन्ध—सिरोही के राज्यकर्त्ता श्रीमान् महारावजी साहब हैं. राज्य का सब प्रबन्ध इन्हीं के हाथ में है. राज्य का मुख्य अधिकारी 'मुसाहिबे आला'† कहलाता है, जिसके दो सहायक अधिकारी

† पहिले मुख्य अधिकारी 'दीवान' और उसका मददगार 'नायब दीवान' कहलाता था, परन्तु

रहते हैं, जिनमें से एक न्यायविभाग का काम संभालता है, जो जुडीशियल ऑफ़ीसर और दूसरा माल का काम करता है, जो रेविन्यु कमिश्नर कहलाता है.

राज्यप्रबन्ध के सुभीते के लिये राज्य के १२ विभाग किये गये हैं, जिनको 'तहसील' कहते हैं. हरएक तहसील का हाकिम तहसीलदार कहलाता है. हरएक तहसीलदार के दो नायब होते हैं, जिनमें से एक अदालती तथा दूसरा माल के काम में सहायता देता है. लोगों की जान व माल की रक्षा के लिये हरएक तहसील में आवश्यकता के अनुसार पुलिस के थानेदार, सिपाही आदि रहते हैं. दीवानी और फौजदारी के काम में तहसीलदार जुडीशियल ऑफ़ीसर का मातहत समझा जाता है, परन्तु माल के काम के लिये उसका ताल्लुक़ रेविन्यु कमिश्नर से रहता है.

फौज–यहां पर कवायद करनेवाली फौज में १२० पैदलों की एक कंपनी, ५ गोलंदाज़ और ८ तोपें हैं.

पुलिस–प्रजा की रक्षा के लिये पुलिस कायम की गई है. जिसका मुख्य अधिकारी 'फौजदार' कहलाता है. उसकी मातहती में ५ नायब फौजदार, ३ जमादार, ८० थानेदार, ६० सवार और ५२६ सिपाही † हैं.

सन १९१० ई० के अक्टोबर मास से ये दोनों पद तोड़ दिये गये. अब मुख्य अधिकारी 'मुसाहिब आला' और उसका मददगार 'सेक्रेटरी मुसाहिब आला' लिखा जाता है.

† ज़रूरत के मुवाफ़िक सिपाही आदि की संख्या घटाई बढ़ाई जाती है.

पुलिस के इंतिज़ाम के लिये राज्य के ८ हिस्से किये गये हैं, जिनमें से हरएक में एक नायब फौजदार या जमादार रहता है. पुलिस के कुल थाने व चौकियां १२५ के क़रीब हैं. मुल्क पहाड़ी और मीने, भील आदि लुटेरी क़ौमों की आबादी अधिक होने के कारण पुलिस को बहुत कठिन काम करना पड़ता है. पुलिस की हफ्तेवार रिपोर्ट जुडीशियल ऑफ़ीसर के पास जाती है. पहिले हरएक तहसील में तहसीलदार की मातहती में थानेदार व सिपाही रहते थे, जो पुलिस का काम देते थे, परन्तु वह इंतिज़ाम ठीक न होने से श्रीमान् वर्तमान महारावजी साहब ने पुलिस का यह नया बन्दोवस्त किया है, जिससे चोरी व धाड़ों की संख्या में पहिले से कमी हुई है.

क़ानून व इन्साफ़—राज्य की अदालतों में अक्सर सर्कार अंग्रेज़ी के ही क़ानून वर्ते जाते हैं, लेकिन् मुल्क की ज़रूरत और रिवाज के मुवाफ़िक उनमें फेर फार किया जाता है. राज्य की तरफ़ से समय समय पर कई सर्क्यूलर व हुक्म जारी किये जाते हैं और क़ानून हदसमायत, स्टैंप, रजिस्टरी व आबकारी बनाकर जारी किये गये हैं.

कोतवाल सिरोही को दीवानी मामलों में २५) रुपये तक का दावा सुनने तथा फौजदारी मुक़द्दमों में दो हफ्ते की क़ैद व २५) रुपये जुर्माना करने का अधिकार है. हरएक तहसीलदार व खराड़ी के मजिस्ट्रेट को ३००) रुपये तक का दीवानी दावा सुनने तथा फौजदारी गुनाहों में दो मास की क़ैद व १००) रुपये जुर्माना करने की सत्ता है.

इन सब के फ़ैसल किये हुए मुक़द्दमों की अपीलें सिरोही में जुडीशियल ऑफ़ीसर की अदालत में होती हैं, जो 'सदर अदालत' कहलाती है. जुडीशियल ऑफ़ीसर को ३०००) रुपये तक का दीवानी दावा सुनने और फ़ौजदारी मुक़द्दमों में दो बरस की क़ैद तथा १०००) रुपये जुर्माना करने का अधिकार है. उसके फ़ैसले की अपील मुसाहिब आला के पास होती है, जिसको सेशन जज का अधिकार है. ३०००) रुपये से अधिक का दावा मुसाहिब आला सुनता है, परन्तु सब बड़े मुआमलों का आख़िरी हुक्म श्रीमान् महारावजी साहब देते हैं, और अपनी प्रजा में से किसी को मृत्यु की सज़ा देना हो तो उसका हुक्म भी वे ही देते हैं.

राजपूताना मालवा रेलवे लाइन की हद ‡ के भीतर के इस राज्य के अन्दर के सब मुक़द्दमे गवर्मेंट के अफ़सर ही सुनते हैं. इसी तरह आबू के सिविल स्टेशन, हणाद्रा और आबू से लगाकर आबूरोड़ स्टेशन तक की सड़क मए खराड़ी के बाजार के ताल्लुक़ के अंग्रेज़ी प्रजा के मुक़द्दमे भी अंग्रेज़ी अफ़सर तै करते हैं; परन्तु वहां के भी जिन मुक़द्दमों में दोनों फ़रीक़ सिरोही की प्रजा हो उनको सिरोही के अधिकारी ही सुनते हैं.

ज़मीन की मालिकी—इस राज्य में कुल ज़मीन की मालिकी

‡ रेलवे सड़क की हद के भीतर के मुक़द्दमों में जहां सिरोही की प्रजा का ताल्लुक़ होता है, वहां राज्य की तरफ़ का रेलवे वकील मुज्रिमों को गिरिफ़्तार करने व उनकी तलाशी लेने आदि में शामिल रहता है.

राज्य की ही समझी जाती है. काश्तकार जब तक ज़मीन को बोता और बराबर हासिल देता रहे तब तक ही अपनी ज़मीन पर काबिज़ रह सकता है. किसी किसी को हासिल माफ़ भी है, परन्तु उसके बदले में गांव की चौकीदारी या राज की कोई दूसरी नौकरी करनी पड़ती है, और उसके न करने की हालत में राज उसकी ज़मीन पर हासिल ले सकता है.

राज्य की कुल ज़मीन तीन हिस्सों में बटी हुई है, जो जागीर, शासन और ख़ालसा कहलाते हैं.

जागीर—यहां पर जागीर तीन तरह की है:—

(१) महाराव शिवसिंह के छोटे कुंवरों की जागीर—यह जागीर उनके निर्वाह के लिये इस शर्त पर दी गई थी, कि जब तक उनका वंश क़ायम रहे तब तक ही वह उनके कब्ज़े में रहे, और पुत्र न होने की हालत में वे किसी को गोद न ले सकें.

(२) पहिले के राजाओं के छोटे कुंवरों, तथा सर्दार व ठाकुरों की जागीर—यह जागीर वंशपरंपरागत है, परन्तु गोद लेने में उनको राज्य की मंजूरी की आवश्यकता रहती है.

(३) किसी ख़ास नौकरी के कारण मिली हुई जागीर—इसका हाल भी नं० २ के मुवाफ़िक है.

ये सब जागीरदार अपनी जागीर की सब तरह की आमद में से फ़ी रुपये आठ आने से चार आने तक (जैसा जिससे पहिले से लिया

जाता है) राज को बतौर ख़िराज के देते हैं, और जब नया जागीरदार अपने बापकी जागीर का मालिक होता है, उस वक़्त नज़राना हैसियत † के मुवाफ़िक़ देना पड़ता है. इनको दीवानी या फ़ौजदारी का कोई अधिकार नहीं है, सिवाय एक नींबज के ठाकुर के, जिसको अपने ठिकाने की दीवानी व फ़ौजदारी के कुछ नियत अधिकार दिये गये हैं. इन लोगों को ज़रूरत पड़ने पर नौकरी भी देनी पड़ती है, और ये अपनी जागीर की ज़मीन को बेच नहीं सकते. इस राज्य में छोटे बड़े जागीरदार बहुत हैं, जिनमें मुख्य नांदिआ, अजारी, मणादर, मंडार, पाडीव, कालंद्री, जावाल, मोटागांव, नींबज, रोहुआ, भटाणा, मांडवाडा और डबाणी के हैं.

शासन—‡ मंदिर, मठ आदि धर्मस्थानों तथा ब्राह्मण, चारण, भाट, साधु आदि को धर्मार्थ दी हुई ज़मीन को शासन या सासण कहते हैं. इनसे ख़िराज या नज़राना + नहीं लिया जाता. कितने एक

---

† नज़राने में एक साल की आमदनी तक लिया जाता है, और गोद आने वाले को औरस पुत्र की अपेक्षा कुछ अधिक देना पड़ता है.

‡ प्राचीन काल से ही इस राज्य में यह रिवाज चला आता है कि जब कोई ज़मीन शासन के तौर दी जाती है, तब उसकी सनद बहुधा तांबे के पत्रे पर खुदवा कर शासन पानेवाले को दी जाती है, और इसी आशय का एक शिलालेख खुदवा कर उस ज़मीन पर गड़वा दिया जाता है. पहिले लोग पुण्यार्थ मिली हुई (शासनिक) ज़मीन को कभी कभी बेच भी देते थे और पुण्यार्थ भी दे देते थे, परन्तु वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७६) में राज्यने सर्क्युलर जारी कर उनका ऐसा करना रोक दिया है.

+ जागीरदार महंतों से नज़राना भी लिया जाता है.

शासन के गांवों पर भी कुछ मुक़र्रर सरकारी कर भी लगा हुआ है.

ख़ालसा—राज के अधिकार में जितनी भूमि है वह 'ख़ालसा' कहलाती है. उसपर काश्तकार या उसके वारिसों का कब्ज़ा तब तक ही रहता है जब तक वे राज का हासिल बराबर देते रहें. पीवल ज़मीन के हासिल में ज़िआदातर तीसरा हिस्सा पैदावारी का लिया जाता है, परन्तु कहीं कहीं चौथा या पांचवा हिस्सा भी लिया जाता है. इस तरह कम हासिल लेने के, ज़मीन की हैसिअत आदि, कई कारण हैं. पहाड़ी इलाक़ों में भील व गरासियों से, वे चोरी न करें और काश्तकार बनें, इस कारण से भी कुछ कम हासिल लिया जाता है. जिस ज़मीन में केवल चौमासी खेती होती है उसका हासिल ⅓ से ⅛ तक लिया जाता है. पड़त ज़मीन को जुतवाने व बाहर के लोगों को राज्य में लाकर बसाने के लिहाज़ से भी शुरू में कुछ बरसों तक हासिल कम लिया जाता है. हासिल में नाज का हिस्सा लिया जाता है, परन्तु अब सेटलमेंट (बन्दोबस्त) जारी कर नाज के एवज़ में रुपये लेने का बन्दोबस्त हो रहा है. कितने ही गांवों में कुछ बरसों से महाजन, ब्राह्मण आदि को कितने ही कुए रुपये लेने की शर्त से ठेके पर भी दिये गये हैं.

आमद ख़र्च—राज्य की सालाना आमदनी इस वक्त क़रीब ५२५०००) रुपये और ख़र्च ४५००००) रुपये के हैं. आमदनी के मुख्य सीगे ज़मीन की पैदावारी, दाण (सायर) आबकारी, घरगिनती,

स्टैम्प आदि हैं, और खर्च के मुख्य सीगे अहलकारी खर्च, कमठाना (तामीरात), फौज, पुलिस, सवारी, जेल आदि हैं.

सिक्का—इस राज्य में पहिले देहली के बादशाह शाह आलम (पहिले) के भीलाड़ी रुपये चलते थे, परन्तु कल्दार रुपयों का खर्च ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों भीलाड़ी रुपयों का भाव घटता गया, जिससे श्रीमान् वर्तमान महारावजी साहब ने अपनी प्रजा को नुक़सान से बचाने के विचार से सर्कार अंग्रेज़ी से लिखापढ़ी कर ई० स० १९०३ में कल्दार रुपयों का चलन अपने राज्य में दाख़िल किया, और भीलाड़ी रुपये १२० की एवज़ में १००) रुपये कल्दार लेकर वे रुपये सर्कार अंग्रेज़ी को दे दिये. तांबे के सिक्कों में पहिले ढब्बूशाही जोधपुरी पैसे और आधे पैसे के शिवशाही सिक्के, जो सिरोही में बनते थे और जिनको ' जनाई ' कहते थे, चलते थे. आधे पैसे का यही एक तांबे का सिक्का सिरोही की टकसाल से निकला था. इन पैसों का भाव तांबे के भाव के साथ घटता बढ़ता रहता था, जिससे उनका चलन भी बंद होगया. अब कल्दार पैसे ही चलते हैं, जिससे प्रजा को बहुत सुभीता रहता है.

प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान—सिरोही राज्य में प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान इतने अधिक हैं, कि यदि उनका ब्यौरेवार हाल लिखा जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे. इसलिये यहां पर उनमें से मुख्य मुख्य का बहुत ही संक्षेप से हाल लिखा जाता है:—

सिरोही—यह शहर 'सिरणवा' नामक पर्वतश्रेणी के नीचे बसा हुआ है और सिरोही राज्य की राजधानी है. राजपूताना मालवा रेलवे के पींडवाड़ा स्टेशन से यह १६ माइल दूर है. महाराव सैंसमल ने वि० सं० १४८२ (ई० स० १४२५) में इसको बसाया था. राजमहल पहाड़ पर बने हुए हैं, जिनकी शोभा दूर दूर से दिखाई देती है. उनमें से मुख्य और पुराना हिस्सा, जो सुन्दर है, महाराव अखैराज ने बनवाया था. बाक़ी के हिस्से भिन्न भिन्न समय के बने हुए हैं. वर्तमान महारावजी साहब को कमठाने का अधिक शौक़ होने के कारण इन्होंने राजमहलों को बहुत कुछ बढ़ा दिया है. राजमहलों से नीचे थोड़ी दूर पर जैनमन्दिरों का समूह है, जो 'देरासेरी' नाम से प्रसिद्ध है. इन जैनमन्दिरों में चौमुखजी का मन्दिर मुख्य है, जो वि० सं० १६३४ † (ई० स० १५७७) मार्गशिर सुदि ५ को बना था. यहां शिव और विष्णु के मन्दिर भी कई एक हैं, परन्तु प्रशंसा के योग्य उनमें एक भी नहीं है. यहां की तलवारें प्राचीन काल से ही हिन्दुस्तान में बहुत प्रसिद्ध हैं. शहर से क़रीब १॥ माइल के अन्तर पर श्रीमान् वर्तमान महारावजी साहब का बनवाया हुआ 'केसरविलास' नाम का सुन्दर बाग़ है, जिसमें एक अच्छी कोठी भी बनी हुई है, और एक बहुत बड़ी नई कोठी

† इस मन्दिर के लेख में 'संवत् १६३४ वर्षे शाके १५०१' लिखा है, इस वास्ते या तो संवत के अङ्क में या शक के अङ्क में दो वर्ष की भूल है, क्योंकि सं० १६३४ में शक १४९९ होता है.

उक्त बाग़ से कुछ अन्तर पर बन रही है. इनके सिवाय एक और बंगला भी यहां है. शहर के निकट 'मानसरोवर' नामक बड़ा तालाब बनजाने से लोगों को जल का बड़ा सुभीता होने के सिवाय शहर की शोभा भी बढ़ गई है.

सारणेश्वरजी–सिरोही से क़रीब २ माइल उत्तर में सारणेश्वरजी का प्रसिद्ध शिवालय है. सिरोही के राजाओं के कुल देवता सारणेश्वरजी ही हैं, इसलिये राज्य के हरएक कागज़ के सिर पर 'श्रीसारणेश्वरजी' लिखा जाता है, और लोग परस्पर मिलने पर बहुधा 'जय सारणेश्वरजी की' कहते हैं. इस मन्दिर की चौतरफ़ ऊंचा कोट बना हुआ है, जिसके लिये ऐसी प्रसिद्धि है. कि मालवे का एक सुलतान यहां आया था, और यहां के एक कुंड में स्नान करने से उसका कुष्टरोग मिट गया, जिससे यह कोट उसने बनवाया था. यह मन्दिर क़रीब ५०० वर्ष का बना हुआ प्रतीत होता है. सारणेश्वर नाम की उत्पत्ति यद्यपि ठीक तौर से मालूम नहीं हुई, तो भी अनुमान होता है कि 'सिरणवेश्वर' का यह अपभ्रंश हो, क्योंकि 'सिरणवा' नाम की पर्वतश्रेणी के नीचे यह मन्दिर बना हुआ है. यह मन्दिर राज्य भर में बड़ा ही पवित्र माना जाता है और यहां पर शिवरात्रि के दिन दर्शनार्थ दूर दूर के लोग एकत्रित होते हैं. इस पवित्र मन्दिर के सामने एक अहाते के अन्दर सिरोही के राजाओं, राणियों आदि की छतरियां बनी हैं, जिनमें से कई एक में खड़ी की हुई शिलाओं पर

राजाओं के साथ सती होने वाली राणियों की मूर्त्तियां भी खुदी हुई हैं, उनके नाम आदि उनपर के लेखों से पाये जाते हैं. इन छतरियों से थोड़े फ़ासले पर मन्दिर के कोट के बाहर कितनेक सरदारों की छतरियां भी बनी हुई हैं, जो वहां पर दग्ध किये गये थे.

बामणवारजी—पींडवाड़े के स्टेशन से क़रीब ४ माइल उत्तर-पश्चिम में बामणवारजी (बाणवारजी) का प्रसिद्ध और विशाल महावीरस्वामी का जैनमन्दिर है, जहां पर दूर दूर के लोग यात्रा के लिये आते हैं. यह मन्दिर कब बना इसका पता नहीं लगता. परन्तु इसके चौतरफ़ के छोटे छोटे मन्दिरों में से एक पर सं० १५१९ (ई० स० १४६२) का लेख है. मुख्य मन्दिर उक्त संवत से पूर्व का होना चाहिये. इस मन्दिर के पास एक शिवालय भी है, जिसमें परमार राजा धारावर्ष के समय का वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) का लेख है. यहां पर फाल्गुन सुदी ७ से १४ तक मेला होता है, जिसमें सब तरह के माल की बहुत कुछ बिक्री होती है.

झाड़ोली—पींडवाड़ा के स्टेशन से दो माइल वायव्य कोण में झाड़ोली नाम का पुराना गांव है. यहां पर शान्तिनाथ † का प्राचीन

† उक्त मंदिर की दीवार में लगे हुए वि० सं० १२५५ (ई० स० ११९८) के लेख में महावीर का मंदिर लिखा है, जिससे अनुमान होता है, कि पहिले यह मंदिर महावीरस्वामी का हो, परन्तु पीछे से उसमें शांतिनाथ की मूर्त्ति स्थापित करने से वह शांतिनाथ का मंदिर कहलाने लगा हो.

जैनमन्दिर † है, जिसके लेख से पाया जाता है, कि वि० सं० १२५५ (ई० स० ११९८) में परमार राजा धारावर्ष की राणी शृंगारदेवी ने, जो नाडोल के चौहान राजा केल्हणदेव की पुत्री थी, उक्त मन्दिर को एक बाड़ी भेट की थी. गांव के बीच में एक सुन्दर पुरानी बावड़ी है. उसमें वि० सं० १२४२ (ई० स० ११८५) का एक टूटा हुआ लेख है, जिसमें उक्त परमार राजा धारावर्ष की पटराणी गीगादेवी का नाम है, जो उपर्युक्त केल्हणदेव की ही पुत्री थी. संभव है, कि यह बावड़ी गीगादेवी ने बनाई हो. नदी के तट पर त्रांबेश्वर नामक शिवालय है.

पींडवाड़ा—यह भी एक पुराना क़सबा है और पींडवाड़ा तहसील का मुख्य स्थान है. यहां पर लक्ष्मीनारायण का एक प्राचीन मंदिर है, जो पहिले सूर्य का मन्दिर था. उसमें सूर्य की सुन्दर मूर्त्ति थी, जिसको उठा कर एक तरफ़ रखदी है, और उसके स्थान में लक्ष्मी-

---

† इस मन्दिर के द्वार के बाहर चार चार थंभों की तीन पंक्तियां और उनके आगे दो स्तंभ खड़े किये गये हैं, जिनपर सुन्दर खुदाई का काम हुआ है. संगमर्मर के बने हुए ये सब स्तंभ पीछे से किसी शिवालय में से लाकर यहां पर लगाये गये हों, ऐसा पाया जाता है, क्यौंकि इनपर कोई जैनमूर्त्ति नहीं, किन्तु शिव, पार्वती, गणपति और साधु आदि की मूर्तियां बनी हुई हैं. सामने के संगमर्मर के दोनों तोरण किसी दूसरे स्थान के जैन-मन्दिर से लाये हुए हैं, क्यौंकि इनपर जैनमूर्तियां खुदी हुई हैं. ये स्तंभ और तोरण चंद्रावती से लाये गये हों तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि वहां के मन्दिरों के द्वार, स्तंभ, तोरण, मूर्तियां आदि दूर तक के मन्दिरों में लगी हुई पाई जाती हैं.

नारायण की नवीन मूर्त्ति स्थापित की है. यह सूर्य की मूर्त्ति पहिले दो स्तंभ वाले तोरण के आकार की चौखट के मध्य में स्थापित थी, जो अबतक विद्यमान है. इस चौखट पर जितनी छोटी छोटी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं वे सब सूर्य की ही हैं. इसीके मध्य में अब लक्ष्मीनारायण की मूर्ति है. इस मन्दिर को सूर्य का मन्दिर मानने का दूसरा कारण यह भी है, कि मूर्ति के सन्मुख चौक के बीच में बने हुए पत्थर के एक स्तंभ के ऊपर कमलाकृति चक्र बना हुआ है. जैसे विष्णु के मन्दिर में मूर्त्ति के सामने गरुड, शिव के नन्दि, देवी के सिंह आदि बने रहते हैं, ऐसे ही सूर्य के मन्दिरों में स्तंभ के ऊपर एक कमलाकृति चक्र बना रहता है, जो सूर्य के रथ अर्थात् वाहन का सूचक है. कहीं यह चक्र स्तंभ से चिपका हुआ रहता है और कहीं एक कीली के ऊपर फिरता हुआ मिलता है. इस राज्य में सैकड़ों सूर्य की मूर्तियां अबतक पाई जाती हैं, और ६ ठी शताब्दी से १४ वीं शताब्दी तक विद्यमान होनेवाले गांवों में से थोड़े ही ऐसे गांव होंगे, जिनमें सूर्य का मन्दिर या उसकी टूटी फूटी मूर्ति न मिले. कहीं कहीं तो एक ही जगह ५ या अधिक मूर्त्तियां देखने में आई हैं. जैसे इस समय लक्ष्मीनारायण के मन्दिर बनाने का इस राज्य में अधिक प्रचार है, वैसे ही पहिले सूर्य के मन्दिरों के बनाने का था. जितनी सूर्य की मूर्त्तियां इस राज्य में हमारे देखने में आई वे सब द्विभुज हैं. उनके सिर पर मुकुट, छाती पर कवच (बक्तर), दोनों हाथों में कमल और पैरों में लम्बे

बूट † हैं. इस मन्दिर में परमार राजा धारावर्ष के समय के २ लेख हैं. जिनमें से एक वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७६) और दूसरा वि० सं० १२५६ (ई० स० ११९९) का है. यहां के महावीरस्वामी के जैनमन्दिर की दीवार में एक शिलालेख वि० सं० १४६५ (ई० स० १४०८) का लगा हुआ है. लेखों में इस क़सबे का नाम पिंडरवाटक लिखा है. पींडवाड़े से क़रीब १ माइल पर कांटल गांव के पास के महादेव के मन्दिर के निकट परमार राजा धारावर्ष के समय का वि० सं० १२७४ (ई० स० १२१७) का टूटा हुआ शिलालेख मिला है.

अजारी—पींडवाड़े से क़रीब ३ माइल दक्षिण में अजारी नाम का गांव है. यहां पर गोपालजी का मन्दिर पुराना है, जिसकी मरम्मत पीछे से हुई है. इस मन्दिर की फ़र्श में बघेल (सोलंकी) राजा अर्जुनदेव के समय का वि० सं० १३२० (ई० स० १२६३) का शिलालेख लगा हुआ है. इस मन्दिर के बाहर एक बावड़ी के पास परमार राजा यशोधवल के समय का वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) का, चंद्रावती के राजा रणसिंह के समय का वि० सं० १२२३ (ई० स० ११६६) का, तथा परमार राजा धारावर्ष के समय का

† सिरोही राज्य में ही नहीं, किन्तु समस्त राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, मध्यहिंद तथा बंगाल आदि में जितनी सूर्य की मूर्त्तियां अब तक देखने में आईं वे सब इसी तरह की बूट वाली हैं. केवल नेपाल से मिली हुई एक सूर्य की मूर्ति का फोटो देखने में आया, जिसमें बूट नहीं हैं और मूर्त्ति के पैरों की अंगुलियां दीख पड़ती हैं.

वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९०) का लेख पड़ा हुआ मिला है. ये सब लेख उनपर सैकड़ों बरसों तक वर्षा का जल गिरने से बिगड़ गये हैं, तो भी उनमें लिखे हुए संवत् तथा राजाओं के नाम प्राचीन इतिहास के लिये बड़े उपयोगी हैं. यहां पर दूसरे भी कितनेक टूटे हुए मन्दिर हैं, जहां पर खण्डित मूर्तियां पड़ी हुई हैं. गोपालजी के मन्दिर से थोड़ी दूर पर महावीरस्वामी का जैनमन्दिर है, जिसके अन्दर की सरस्वती की मूर्ति के नीचे वि० सं० १२६९ (ई० स० १२१२) का लेख है. गांव के निकट खेतों में भी सूर्य आदि की मूर्तियां पड़ी हुई मिली हैं, जो वसन्तगढ़ से लाई गई हों ऐसा अनुमान होता है. अजारी से १ मील पर मार्कण्डेश्वर का पवित्र और प्रसिद्ध शिवालय है. लोग यहां के एक कुण्ड में मरे हुए मनुष्यों की राख और हड्डियां लाकर डालते हैं, और जिन आत्माओं की सद्गति नहीं होती उनके लिये यहां पर षोडशी आदि श्राद्ध किये जाते हैं.

वसन्तगढ़—अजारी से क़रीब ३ माइल दक्षिण में वसन्तगढ़ है, जिसको वसन्तपुर भी कहते हैं, और लोगों में यह 'वांतपरागढ़' नाम से प्रसिद्ध है, जो 'वसन्तपुरगढ़' का अपभ्रंश है. सिरोही राज्य के बहुत पुराने स्थानों में से यह एक है. अब तक इस राज्य में जितने शिलालेख मिले हैं उनमें सबसे पुराना वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) का यहीं से मिला है. मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने यहां की पहाड़ियों पर गढ़ बनवाया तब से वसन्तपुर के स्थान में

वसन्तगढ़ नाम प्रसिद्ध हुआ हो यह सम्भव है. यहां की एक पहाड़ी पर क्षेमकरी (क्षेमार्या) नामक देवी का † मन्दिर सत्यदेव नामक पुरुष ने वि॰ सं॰ ६८२ (ई॰ स॰ ६२५) में बनाया था, जिसका जीर्णोद्धार थोड़े बरसों पहिले हुआ है. उसका लेख पत्थरों के ढेर में मिल आया, जिससे पाया जाता है, कि 'यह मन्दिर बना उस समय यह प्रदेश वर्मलात राजा के अधिकार में था और आबू तथा उसके आस पास का देश उक्त राजा के सामन्त राज्जिल के आधीन था, जो वज्रभट (सत्याश्रय) का पुत्र था'. वर्मलात राजा किस वंश का था इस विषय में उक्त लेखमें कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु अनुमान होता है, कि वह चावड़ा ‡ वंश का हो, क्योंकि उसकी राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) नगर (जोधपुर राज्य में) थी, जहां के रहनेवाले ब्रह्मगुप्त नामक ज्योतिषी ने, जो जिष्णु का पुत्र था, शक संवत् ५५० वि॰ सं॰ ६८५ (ई॰ स॰ ६२८) में 'स्फुटआर्यसिद्धान्त' नामक ज्योतिष का ग्रन्थ रचा, जिसमें वह लिखता है, कि उस समय वहां पर चाप (चावड़ा) वंशी व्याघ्रमुख राजा था. संभव है, कि व्याघ्रमुख उक्त वर्मलात का उत्तराधिकारी हो. उपर्युक्त लेख से प्रसिद्ध कवि माघ का, जो भीनमाल का रहनेवाला था, समय निश्चित होता है, क्योंकि वह अपने रचे हुए 'शिशुपाल-वध' (माघ) काव्य में लिखता है, कि उसका दादा सुप्रभदेव राजा

† लोगों में इस देवी का नाम 'खीमेलमाता' प्रसिद्ध है.

‡ चावड़े राजपूत अपना परमारों की एक शाखा में होना प्रकट करते हैं.

वर्मलात का मुख्य मन्त्री (सर्वाधिकारी) था. सुप्रभदेव इस वर्मलात का, जो विक्रम संवत् ६८२ (ई० स० ६२५) में विद्यमान था, समकालीन था, अतएव सुप्रभदेव के पौत्र माघ कवि का विक्रम संवत् की ८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (ई० स० की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध) में होना स्थिर होता है. यहां से दूसरा लेख वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) का मिला है, जो परमार राजा पूर्णपाल के समय का है. उसमें उत्पलराज से पूर्णपाल तक की आबू के परमारों की वंशावली दी है, और यह भी लिखा है कि 'उक्त पूर्णपाल की छोटी बहिन लाहिनी, जिसका विवाह राजा विग्रहराज † से हुआ था, विधवा होने पर अपने भाई के यहां चली आई, और वसिष्ठपुर में रह कर उसने सूर्य के टूटे हुए मन्दिर को नया बनवाया, और लोगों के जल पीने की बावड़ी का जीर्णोद्धार करवाया'. यह बावड़ी उक्त लाहिनी के नाम से अब तक लाणवाव (लाहिनीवापी) कहलाती है, जिसपर यह लेख ‡ लगाया गया था. इस लेख में इस स्थान का नाम वटपुर और

---

† उक्त लेख में विग्रहराज की वंशावली इस तरह दी है:—योद नामक द्विज अपने ही बाहुबल से राजा बना. उसके वंश में भवगुप्त राजा हुआ, फिर उसी वंश में संगमराज हुआ, जिसका पुत्र चच और उसका पुत्र विग्रहराज था.

‡ वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८८) में मैं इस लेख की नक़ल लेने को वसन्तगढ़ गया, तो मालूम हुआ, कि कुछ वर्ष पहिले एक भील ने इसको उस बावड़ी में डाल दिया है. बावड़ी में जल बहुत गहरा होने से ऐसे बड़े पत्थर का वहां से निकाला जाना सर्वथा असम्भव था, परन्तु वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) के आषाढ़ महीने में, जब यह बावड़ी कहत के

वसिष्ठपुर लिखा मिलता है. वसन्तपुर नाम वसिष्ठपुर से पड़ा हो. जिस सूर्य के मन्दिर का जीर्णोद्धार लाहिनी ने करवाया था, वह अब बिलकुल टूट गया है. उसके निकट ही एक ब्रह्मा का मन्दिर है, जिसमें एक खड़ी हुई ब्रह्मा की बड़ी मूर्ति है. यहीं वटेश्वर का मन्दिर भी है. यहां पर सरस्वती नामक छोटी नदी सदा बहने के कारण बड़ के वृक्ष बहुत हैं, जिनपर से वटेश्वर और वटपुर नामों की उत्पत्ति होनी चाहिये. पहिले यहां पर अच्छी आबादी थी और कई एक मन्दिर थे, जो इस समय टूटे हुए पड़े हैं. यहां के एक टूटे हुए जैनमन्दिर के तहखाने में से कई एक मूर्तियां थोड़े वर्ष पहिले निकली थीं, जिनमें से १ बड़ी मूर्ति पर विक्रम संवत् १५०७ (ई० स० १४५१) माघ सुदि ११ का मेवाड़ के महाराणा कुम्भकर्ण के समय का लेख है †. यहां से कितनीक पीतल की जैनमूर्तियां भी निकली थीं, जिनमें से २

कारण बिलकुल सूख गई तब मैंने श्रीमान वर्तमान महारावजी साहिब से पींडवाड़ा के स्टेशन पर निवेदन किया, कि 'ऐसा उपयोगी लेख कई बरसों से बावड़ी में पड़ा हुआ है, और इस समय उस बावड़ी के सूख जाने के कारण वह निकल सकता है'. श्रीमान महारावजी साहिब को प्राचीन वस्तुओं का शौक होने के कारण इन्होंने उसी समय वहां के 'फॉरेस्ट रेंजर' राठोड़ अचलसिंह को बुलवा कर आज्ञा दी, कि 'कलका कल यह लेख बावड़ी में से निकलवा कर सिरोही पहुंचा देना'. जिससे दूसरे ही दिन यह लेख वहां से निकलवा कर सिरोही भेजदिया गया. केवल महारावजी साहिब की गुणग्राहकता के कारण परमारों के प्राचीन इतिहास का यह परम उपयोगी लेख साक्षर वर्ग को फिर उपलब्ध हुआ.

† सं० १५०७ वर्षे माघसुदि ११ बुधे राणाश्रीकुंभकर्णराज्ये वसन्तपुरचैत्ये……………

बड़ी मूर्तियां उपर्युक्त पींडवाड़े के जैन मन्दिर में रक्खी हुई हैं, जिन पर विक्रम संवत् ७४४ (ई० स० ६८७) के लेख हैं. यहां पर एक बड़ा तालाब भी था. लोगों में ऐसी प्रसिद्धि है, कि गुजरात के सुलतान महमूद बेगड़े ने उस तालाब को तोड़ डाला और वसन्तगढ़ को ऊजड़ कर दिया था. फिर भी यह कुछ आबाद हुआ था, परन्तु अब तो बहुधा खेती करनेवाले भील, गरासिये आदि लोग ही यहां रहते हैं.

नांदिआ—पींडवाड़ा के स्टेशन से क़रीब ५ माइल पश्चिम में नांदिआ नाम का पुराना गांव है, जिसकी चोतरफ़ ऊंची ऊंची पहाड़ियां आगई हैं. इस गांव की उत्तर में एक बड़ा जैनमन्दिर है, जिसकी बहार की दीवार में लगे हुए एक लेख में, जो विक्रम संवत् ११३० (ई० स० १०७३) का है, उक्त मन्दिर (नंदीश्वरचैत्य) के आगे एक बावड़ी बनाये जाने का उल्लेख है. गांव के भीतर विष्णु (श्यामलाजी) का एक मन्दिर है, जो क़रीब ६०० वर्ष पूर्व का हो, ऐसा अनुमान होता है. उसीके पास एक शिवालय भी है. वह भी उसी समय का बना हुआ हो.

कोजरा—नांदिआ से क़रीब ३ माइल अग्निकोण में कोजरा गांव है. यह गांव सिरोही के महाराव सुरताण ने वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) में अपने पुरोहितों को दान में दिया था. यहां पर परशुराम का एक प्रसिद्ध विष्णुमन्दिर है, जिसका जिर्णोद्धार क़रीब २०० वर्ष पहिले हुआ था. परशुराम के मन्दिर इधर बहुत ही कम मिलते हैं. यहां पर सम्भव-

नाथ का जैनमन्दिर भी है, जिसके भीतर एक स्तंभ पर वि० सं० १२२४ (ई० स० ११६७) का लेख है, जिसमें इसको पार्श्वनाथ का मन्दिर लिखा है, अतएव संभव है, कि वास्तव में यह मन्दिर पार्श्वनाथ का हो और पीछे से इसमें संभवनाथ की मूर्ति स्थापित होने के कारण उक्त नाम से प्रसिद्ध होगया हो.

रोहेड़ा—राजपूताना मालवा रेलवे के रोहेड़ा स्टेशन से ४ माइल दक्षिण-पूर्व में रोहेड़ा नामक क़सबा है, जो तहसील रोहेड़े का मुख्य स्थान है. यह क़सबा पहिले नदी के तट पर आबाद था, जहांपर इसके खंडहरों के निशान पाये जाते हैं. इसके पूर्व में ' राजेश्वर ' नामक शिवमन्दिर है, जो परमार राजा धारावर्ष के समय बना था. इस मंदिर के पास उसी समय की बनी हुई एक बावड़ी है, जिसका थोड़े वर्ष पहिले जीर्णोद्धार हुआ है. जीर्णोद्धार के समय उसमें से एक शिलालेख धारावर्ष राजा के समय का निकला था, परन्तु उसका ऊपर का हिस्सा टूट जाने से संवत् का अंक जाता रहा. राजेश्वर के मन्दिर से पश्चिम में गांव की दक्षिणी सीमा पर रामचन्द्र का मन्दिर है, जिसमें इस समय विष्णु की मूर्ति स्थापित है, परन्तु पहिले यह सूर्य का मन्दिर था, क्योंकि उसकी परिक्रमा में पीछे (पश्चिम) के ताक़ में सूर्य की मूर्ति अबतक विद्यमान है, जो इसको सूर्य का मन्दिर होना प्रकट करती है. ५०—६० वर्ष पूर्व एक साधु ने इसकी मरम्मत करवाई तथा मन्दिर के आस पास मकान और धर्मशाला बनवाई. यहां पर पर-

मार राजा धारावर्ष के समय का वि० सं० १२७१ (ई० स० १२१४) का एक लेख है, जिसको किसी ने तोड़कर ४ टुकड़े कर डाले हैं. इन मन्दिरों के सिवाय सुग्रीव और सोमनाथ के शिवालय तथा दो लक्ष्मीनारायण के मन्दिर और राणेश्वरी नामक देवी का मन्दिर भी यहां है.

वासा—रोहेड़ा से १½ माइल उत्तर-पूर्व में वासा गांव है, जिसमें एक विशाल सूर्य का मन्दिर है, जो वि० सं० १२६१ (ई० स० १२०४) में बना था. इसके सभामण्डप के मध्य में एक चतुरस्र स्तंभ पर सूर्य का कमलाकृति चक्र कीली के ऊपर घूमता हुआ है, जिसको वहां पर खेलनेवाले लड़के घुमाया करते हैं. उक्त मन्दिर के पास एक बड़ी बावड़ी है, जो उसी मन्दिर के साथ की बनी हुई प्रतीत होती है. यहां पर जगदीश नामक शिवालय भी है, जिसके द्वारपर जैनमूर्ति बनी हुई है. इस मन्दिर के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है, कि यह मन्दिर जैनमूर्ति के लिये बनाया गया था, परन्तु पीछे से ब्राह्मणों और महाजनों में उसके लिये झगड़ा हुआ और अन्त में शिव की मूर्ति उसमें स्थापित हुई. यह भी संभव है, कि यह वास्तव में जैनमन्दिर हो, परन्तु पिछले बखेड़ों के समय उसकी मूर्ति तोड़डाली गई हो और विना मूर्ति के पड़ा रहने से ब्राह्मणों ने उसमें शिवलिङ्ग की स्थापना करदी हो, जैसे कि सांतपुर का शिवमन्दिर विना मूर्ति के पड़ा रहा, जिससे वहां के महाजनों ने उसमें जैनमूर्ति की स्थापना कर दी. वासा से क़रीब २

माइल पर पहिले कछागरा नामक एक गांव था और वहांपर पार्श्वनाथ का जैनमन्दिर भी था, परन्तु अब उस गांव और मन्दिर का कुछ भी अंश नहीं रहा, केवल कहीं कहीं घरों के निशानमात्र पाये जाते हैं. वहां से एक शिलालेख वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) का मिला है, जिससे पाया जाता है, कि उक्त संवत् में चन्द्रावती का राजा आल्हण-सिंह था. उक्त गांव तथा मन्दिर का पता भी उसी लेख से चलता है. वासा से क़रीब २ माइल उत्तर में जमदग्नि नामक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है. प्राचीनकाल में जमदग्नि ऋषि का यहांपर आश्रम होना लोग मानते हैं. जिस मंदिर को जमदग्नि का मंदिर कहते हैं वह शिवालय है. यहां के कुंड पर भी, जो मंदाकिनी नाम से प्रसिद्ध है, मृत मनुष्यों की आत्मा की सद्गति के निमित्त मार्कण्डेश्वर की नांई लोग श्राद्ध करते हैं और ज्येष्ठ शुक्ल ११ को दूर दूर के लोग जमदग्नि के दर्शनार्थ आते हैं. इस मन्दिर के बाहर पड़ी हुई दो मूर्तियों पर वि० सं० १३०३ (ई० स० १२४६) के लेख हैं, अतएव यह मन्दिर उक्त समय के पूर्वका होना चाहिये. इसकी मरम्मत समय समय पर होती रही है.

नीतोरा—रोहेड़ा के स्टेशन से क़रीब ४ माइल उत्तर-पश्चिम में नीतोरा गांव है. यहां पर नदी के तट पर केदार नामक शिवालय और बद्रीनाथ का विष्णु मन्दिर दोनों एक ही अहाते के अन्दर हैं, जिनका जीर्णोद्धार थोड़े वर्ष पहिले हुआ है. इनके सामने सूर्य का मन्दिर उसी अहाते में है, जिसके बाहर एक स्तंभ के ऊपर सूर्य का

कमलाकृति चक्र बना हुआ है. यह मन्दिर ई० स० की १२वीं शताब्दी का बना हुआ प्रतीत होता है.

कायद्रां—कीवरली के स्टेशन से क़रीब ४ माइल उत्तर में आबू के निकट कायद्रां गांव है. यह भी एक पुरानी जगह है, जिसका नाम प्राचीन शिलालेखों में 'कासहृद' मिलता है. गांव से दक्षिण में कासेश्वर नामक शिवमन्दिर अनुमान आठवीं सदी के आस पास का बना हुआ है, जिसको लोग 'काशीविश्वेश्वर' कहते हैं. यह मन्दिर इस समय खण्डित स्थिति में है. उक्त मन्दिर के सामने एक चतुरस्र-स्तंभ पर चार पुरुषों की मूर्तियां खुदी हुई हैं, जिनके नाम उस पर खुदे हुए हैं, जो नवीं शताब्दी के आस पास की लिपि के हैं. इस मन्दिर के पास १ शिलालेख वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) का परमार राजा धारावर्ष के समय का तथा दूसरा वि० सं० १३०१ (ई० स० १२४४) का पड़ा है. गांव से पश्चिम में अरुणेश्वर नामक पंचायतन शिवालय है, जिसके मुख्य मन्दिर में एक विशाल शिवकी त्रिमूर्ति है. ऐसी त्रिमूर्तियां चित्तोड़ के क़िले पर, बंबई के निकट समुद्र के अंदर घारापुरी की गुफा में तथा अन्यत्र कहीं कहीं देखने में आती हैं, परन्तु इस राज्य में आबू के चौतरफ़ के प्रदेश में ऐसी त्रिमूर्तियां †

† त्रिमूर्ति के तीन सिर होने के कारण यहां के लोग ऐसी मूर्तियों को बहुधा त्रिकमर्जी (त्रिविक्रम) की मूर्ति कहा करते हैं और कोई कोई उनको ब्रह्मा की मूर्ति भी मानते हैं, परन्तु ये न तो त्रिविक्रम (विष्णु) की मूर्तियां हैं और न ब्रह्मा की हैं. ये मूर्तियां शिव की ही

कई जगह अब तक विद्यमान हैं, जिनसे अनुमान होता है, कि यहां पर प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) संप्रदाय की प्रबलता होनी चाहिये. जितनी त्रिमूर्तियां यहां पर देखने में आई हैं वे बहुधा बड़ी उत्तमता के साथ बनीहुई हैं, और ११ वीं शताब्दी के पूर्व की अनुमान की जा सकती हैं. गांव के भीतर एक प्राचीन जैनमन्दिर भी है, जिसका थोड़े बरसों पहिले जीर्णोद्धार हुआ है. उसमें मुख्य मन्दिर के चौतरफ़ के छोटे छोटे जिनालयों में से एक के द्वारपर वि० सं० १०९१ (ई० स० १०३४) का लेख है. यहांपर एक दूसरा भी प्राचीन जैनमन्दिर था, जिसके पत्थर आदि यहां से लेजाकर रोहेड़ा के नवीन बनेहुए जैनमन्दिर में लगादिये गये हैं. यहांपर इधर उधर सूर्य आदि की कितनीक मूर्त्तियां पड़ी हुई हैं. इस प्राचीन स्थान के खंडहर दूर दूर तक नज़र आते हैं. यहां पर हिजरी सन् ५७४ (वि० सं० १२३५=ई० स० ११७८) में सुलतान शहाबुद्दीन गोरी गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़े (पाटन) पर चढ़ाई करने को जाता हुआ घायल हुआ और

है. शिव की त्रिमूर्ति के ६ हाथ, जटासहित तीन सिर और तीन मुख होते हैं, जिनमें से एक रोता हुआ होता है, जो शिव के 'रुद्र' कहलाने का सूचक है. उसके मध्य के दो हाथों में से एक में बीजोरा नामक फल तथा दूसरे में माला, दाहिनी तरफ़ के दो हाथों में से एक में सर्प और दूसरे में खप्पर और बाईं ओर के दो हाथों में से एक में पतले छोटे दंड सी कोई वस्तु और दूसरे में ढाल की आकृति की कोई छोटीसी गोल चीज़ बहुधा देखने में आती है. पिछली दोनों वस्तु वास्तव में क्या हैं, यह जानने में नहीं आया. त्रिमूर्ति वेदी के ऊपर दीवार से सटी रहती है और उसमें छाती से कुछ नीचे तक का ही हिस्सा होता है, परन्तु कद बड़ा होता है. त्रिमूर्ति के सामने बहुधा शिवलिंग पाया जाता है.

उसको हारकर लौटना पड़ा था. यहीं हि० स०५९३ (वि० सं० १२५३= ई० स० ११९६) में गुजरात पर चढ़ाई करनेवाले कुतबुद्दीन ऐबक से फिर लड़ाई हुई, जिसमें धारावर्ष आदि हारे थे.

ओर—कीवरली के स्टेशन से क़रीब ४ माइल दक्षिण पूर्व में 'ओर' नामक गांव है, जिसके पास ही एक चटानवाली ऊंची कुरसी पर 'बतरिया' नामक नाले के ऊपर विठलाजी (विट्ठल) का प्रसिद्ध विष्णु-मन्दिर है. एक ही अहाते में यहां पर एक दूसरे से मिले हुए तीन मन्दिर हैं, जिनके मध्य में विठलाजी का मन्दिर है और इसके दोनों तरफ़ दो शिवालय हैं. इन मन्दिरों का मुख्य द्वार एक है, जो संगम-मेर का बना हुआ है और जिसपर सुन्दर खुदाई का काम है. उसके ऊपर जैनमूर्ति होने से स्पष्ट है, कि वह दरवाज़ा किसी जैनमन्दिर से लाकर यहां लगाया गया है. वहां के एक वृद्ध पुरुष से मालूम हुआ, कि पहिले यहां दरवाज़ा न था, परन्तु वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में इन मन्दिरों की मरम्मत हुई उस वक्त यह दरवाज़ा चंद्रावती से लाकर यहां लगाया गया था. इस मन्दिर में एक शिलालेख वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२) भाद्रवा सुदि ११ का लगा हुआ है, जिसमें लड़की के विवाह में दो फदिये * पीरोजी † तथा धारेचे

* फदिया (फ़दैया)—मुसल्मानों का चलाया हुआ चांदी का सिक्का, जिसका मूल्य दो आना था. अब तक सिरोही राज्य में दो आने को ' फदिया ' ही कहते हैं.

† पीरोजी (फ़ीरोज़ी)—पहिले यहां पर चलने वाले मुसल्मान बादशाहों के सिक्के 'पीरोजे' (फ़ीरोज़े) कहलाते थे. संभव है, कि फ़ीरोज़शाह के नाम से फ़ीरोज़े कहलाये हों.

(नाता; विधवाविवाह) में १ फदिया उक्त मन्दिर के भेट करने का उल्लेख है. दक्षिण की ओर के शिवालय की दक्षिणी दीवार के बाहरी ताक में एक बहुत ही सुन्दर लकुलीश * की मूर्ति है, जो चन्द्रावती से लाकर यहां पर लगाई गई हो ऐसा अनुमान होता है. लकुलीश की ऐसी सुन्दर मूर्तियां कम देखने में आती हैं. उन तीन मन्दिरों के पास दूसरे भी

* लकुलीश या लकुटीश शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है. प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था, और अब तक सारे राजपूताना, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिण आदि में लकुलीश की मूर्तियां पाई जाती हैं. लकुलीश की मूर्ति के सिर पर जैन मूर्तियों के समान केश होते हैं, जिसपर से कोई कोई उसको जैनमूर्ति मान लेते हैं, परन्तु वह जैन नहीं, किन्तु शिव के एक अवतार की मूर्ति है. वह द्विभुज होती है. उसके बायें हाथ में लकुट (दंड) रहता है, जिसपर से लकुलीश और लकुटीश नाम पड़े, और दाहिने हाथ में बीजोरा नामक फल होता है, जो शिव की त्रिमूर्तियों के मध्य के दो हाथों में से एक में पाया जाता है. वह मूर्त्ति पद्मासन से बैठी हुई होती है, और किसी किसी में उसके नीचे नंदी और कहीं कहीं दोनों तरफ एक एक जटाधारी साधु भी बना हुआ होता है. लकुलीश ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खलित न हुआ हो) माना जाता है, जिसका चिह्न (ऊर्ध्वलिंग) मूर्ति पर स्पष्ट होता है. इस समय इस प्राचीन सम्प्रदाय को माननेवाला कोई नहीं रहा, परन्तु प्राचीन काल में इसके मानने वाले बहुत थे, जिनमें मुख्य साधु होते थे. माधवाचार्यरचित 'सर्वदर्शनसंग्रह' में इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का कुछ हाल पाया जाता है, और इसका विशेष वृत्तान्त प्राचीन शिला लेखों तथा विष्णुपुराण आदि से मिलता है. इस सम्प्रदाय के साधु कनफड़े (नाथ) होते हों, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि मेवाड़ के प्रसिद्ध एकलिंगजी के मन्दिर के महन्त भी पहिले इसी सम्प्रदाय के साधु थे, और जिस हारीतराशि नामक साधु की कृपा से गुहिलोतों को राज्य प्राप्त हुआ वह भी इसी सम्प्रदाय का था. उसकी लेख सहित मूर्ति एकलिंगजी में है, जिससे उसका कनफड़ा होना सिद्ध होता है.

कितनेक छोटे छोटे मन्दिर हैं, जिनमें दो सूर्य की मूर्तियां रक्खी हुई हैं. गांव के मध्य पार्श्वनाथ का जिनालय भी है, जिसके भीतर की दो खड़ी मूर्तियों पर वि० सं० १२४० (ई० स० ११८३) वैशाख सुदि ११ के लेख हैं, जिनमें इस मन्दिर को 'महावीरचैत्य' लिखा है, और इस गांव का नाम भी लिखा है, जिससे पाया जाता है, कि पहिले यह महावीर का मन्दिर था.

हृषीकेश—आबूरोड़ (खराड़ी) के स्टेशन से क़रीब २ माइल उत्तर-पश्चिम में आबू पर्वत के नीचे ही हृषीकेश का प्राचीन और प्रसिद्ध विष्णुमन्दिर है, जिसके विषय में यह प्रसिद्धि है, कि राजा अंबरीश ने, जिसकी राजधानी अमरावती नगरी थी, यह मन्दिर पहिले बनवाया था. यहां के लोग ऐसा मानते हैं, कि हृषीकेश से लेकर ऊमरली के परे तक पहिले अमरावती नगरी बसती थी, उसीपर से इस गांव का ऊमरली नाम पड़ा, जो हृषीकेश से क़रीब आधा माइल दक्षिण में है.

खराड़ी—आबूरोड़ स्टेशन के पास बनास नदी के निकट खराड़ी का क़सबा है, जो सिरोही राज्य में सबसे अधिक आबादी वाला है, और राजपूताना मालवा रेलवे के आबू डिविज़न (विभाग) का हेडक्वार्टर अर्थात् मुख्य स्थान है. पहिले यहां पर एक छोटासा गांव बसता था, परन्तु राजपूताना मालवा रेलवे के खुलने तथा यहां से आबू जाने वाली नई सड़क के बनने पर यहां की आबादी बढ़ती गई, और

व्योपार की तरक्की होती रही, जिससे दूर दूर के व्योपारी यहां आकर आबाद हो गये. सिरोही राज्य के बड़े हिस्से के अतिरिक्त उसके पड़ोस के दांता, ईडर तथा मेवाड़ के इलाकों के लोग भी अपनी ज़रूरत का सामान बहुधा यहां से खरीदते हैं. यहां पर श्रीमान् वर्तमान महारावजी साहब ने एक सुन्दर बाग़ तथा कोठी बनवाई है, और राज्य की तरफ से एक मजिस्ट्रेट रहता है. यहां पर 'केसर ‡ शुगर मैन्युफैक्चरिंग् कंपनी' का चीनी बनाने का कारखाना भी है, जहां पर गुड़ से चीनी बनाई जाती है.

चन्द्रावती—आबूरोड़ स्टेशन से करीब ४ माइल दक्षिण में चन्द्रावती नामक प्रसिद्ध और प्राचीन नगरी के खंडहर दूर दूर तक नज़र आते हैं. यह नगरी पहिले आबू के परमार राजाओं की राजधानी थी और बड़ी ही समृद्धि वाली थी, जिसकी साक्षी यहां के अनेक टूटे हुए मन्दिरों के निशान तथा जगह जगह पड़े हुए संगमर्मर के ढेर अब तक दे रहे हैं. आबू पर देलवाड़े के प्रसिद्ध नेमीनाथ के मन्दिर (लूणवसही) के बनानेवाले मन्त्री वस्तुपाल की धर्मपरायणा स्त्री अनुपमदेवी यहां के रहनेवाले पोरवाड़ महाजन गागा के पुत्र धरणिग की पुत्री थी. परमारों के बाद सिरोही बसने तक यह देवड़ों की भी राजधानी रही. ऐसी प्रसिद्धि है, कि जब जब मुसल्मानों की फौज

‡ इस कम्पनी का नाम सिरोही के वर्तमान महारावजी श्रीकेसरीसिंहजी के नाम से रक्खा गया है.

इधर होकर निकली, इस धनाढ्य नगरी को बराबर लूटती रही. इसी आपत्ति से यह ऊजड़ हो गई और यहां के रहने वाले बहुधा गुजरात में जा बसे. यहां पर संगमर्मर के बने हुए बहुत से मन्दिर थे, जिनमें से कई एक के द्वार, तोरण, मूर्त्तियां आदि लोगों ने उखाड़ कर दूर दूर के मन्दिरों में लगादीं और बचे कुचे मन्दिर राजपूताना मालवा रेलवे के ठेकेदारों ने तोड़ डाले. ई० स० १८२२ (वि० सं० १८७९) में राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल टॉड साहब यहां आये थे. उन्होंने 'ट्रेवल्स इन् वेस्टर्न् इन्डिया' नामक अपनी पुस्तक में यहां के बचे हुए कुछ मन्दिरादि के चित्र दिये हैं, जिनसे उनकी कारीगरी, सुन्दरता आदि का अनुमान हो सकता है. ई० स० १८२४ (वि० सं० १८८१) में सर चार्ल्स कॉल्विल साहिब अपने मित्रों सहित यहां आये, उस समय संगर्मर के बने हुए २० मन्दिर यहां पर बचे हुए थे, जिनकी सुन्दरता की प्रशंसा उक्त साहिब ने की है. इस समय यहां पर एक भी मन्दिर अच्छी स्थिति में नहीं रहा. यहां के रहनेवाले एक वृद्ध राजपूतने वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८८) में यहां के मन्दिरों के विषय में मुझे यह कहा कि "रेल (राजपूताना मालवा रेलवे) के निकलने के पहिले तो यहां पर संगमर्मर के बने हुए बहुत से मन्दिर थे, परन्तु जब रेलवे के ठेकेदारों ने यहां के पड़े हुए पत्थर लेजाने का ठेका लिया उस उक्त उन्होंने खड़े हुए मन्दिरों को भी तोड़ डाला और वे उनका बहुतसा संगमर्मर भी उठा ले गये. जब यह

हाल राज को मालूम हुआ, तब उनका पत्थर लेजाना रोक दिया गया, जिससे उनके जमा किये हुए संगमर्मर के ढेर चन्द्रावती और मावल के बीच जगह जगह अब तक पड़े हुए हैं और कुछ पत्थर सांतपुर के पास भी पड़े हैं". इस प्रकार इस प्राचीन नगरी के महत्त्व का खेदजनक अंत हुआ. अब तो उन अनुपम मन्दिरों के दर्शन महानुभाव कर्नल टॉड के दिये हुए सुन्दर चित्रों के सिवाय किसी प्रकार से नहीं हो सकते.

मूंगथला—खराड़ी से क़रीब ४ माइल पश्चिम में मूंगथला गांव है, जहां पर पहिले ब्राह्मण, महाजन आदि की अच्छी आबादी थी, परन्तु अब तो उनका एक भी घर नहीं रहा. यहां पर मुद्गलेश्वर नामक शिवमन्दिर वि॰ सं॰ ८९५ (ई॰ स॰ ८३८) में बना था, जिसमें उक्त संवत् का एक शिलालेख दो बड़ी २ शिलाओं पर खुदा हुआ लगा है. इस मन्दिर के बाहर के दक्षिण की तरफ़ के ताक़ में लकुलीश की मूर्त्ति रक्खी हुई है. यहां पर एक विशाल जैन मन्दिर भी है, जिसमें सब से पुराना लेख वि॰ सं॰ १२१६ (ई॰ स॰ ११५९) का है. यहां पर एक सूर्य का भी मन्दिर था, जो अब बिलकुल नष्ट होगया है, और सूर्य की मूर्त्ति एक मकान के पीछे पड़ी हुई है. यहां से क़रीब १ माइल उत्तर-पश्चिम में मधुसूदन नामक विष्णु का मन्दिर है, जो लोगों में 'मदुआजी' नाम से प्रसिद्ध है. इसके बाहर परमार राजा धारावर्ष के समय का वि॰ सं॰ १२४२ (ई॰ स॰ ११८५) का लेख है. यह मन्दिर उक्त लेख से पूर्व का बना हुआ है.

गिरवर—मधुसूदन से क़रीब ४ माइल पश्चिम में गिरवर नाम का पुराना गांव है. यहां पर एक प्राचीन जैन मन्दिर था, जो अब टूटा हुआ पड़ा है. यहां से थोड़ी दूर पर पाटनारायण नाम का विष्णु मन्दिर है. इस मन्दिर के सभामंडप में ब्रह्मा, विष्णु यशोदा आदि की मूर्त्तियां रक्खी हुई हैं, जो चन्द्रावती से लाई हुई हों. इसका संगमर्मर का दरवाज़ा भी वहीं के किसी जैन मन्दिर से लाकर यहां लगाया हो ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि उसके ऊपर जैन मूर्त्ति खुदी हुई हैं. इस मन्दिर में दो शिला लेख हैं, जिनमें से एक (वि० सं० ११८१ (ई० स० ११२४) का और दूसरा वि० सं० १३४३ (ई० स० १२८७) का है. यह पिछला लेख परमारों के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है, क्योंकि इसमें लिखा है, कि 'वसिष्ठ ऋषि ने आबू पर्वत पर मंत्रद्वारा धूमराज नामक परमार को उत्पन्न किया. उसके वंश में धारावर्ष हुआ, जिसका पुत्र सोमसिंह हुआ. उस (सोमसिंह) का पुत्र कृष्णराज और उसका प्रतापसिंह हुआ, जिसने जैत्रकर्ण को जीतकर शत्रु के हाथ में गई हुई चन्द्रावती का उद्धार किया. उसके ब्राह्मण मन्त्री देल्हण ने पाटनारायण के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया.' इस लेख में लिखा हुआ जैत्रकर्ण शायद मेवाड़ का राजा जैत्रसिंह हो, जो रावल मथनसिंह का पौत्र और पद्मसिंह का पुत्र था.

दताणी—गिरवर से ६ माइल उत्तर-पश्चिम में दताणी गांव है. मेवाड़ में जैसे हलदी घाटी रणखेत के नाम से प्रसिद्ध है वैसे ही

सिरोही राज्य में दताणी प्रसिद्ध है. यहां पर वि० सं० १६४० (ई० स० १५८३) काती सुद ११ के दिन सिरोही के प्रसिद्ध वीर महाराव सुरताण और देहली के बादशाह अकबर की सेना के बीच बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें महाराव सुरताण की विजय † हुई थी. बादशाह अकबर की यह सेना मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के भाई जगमाल को सिरोही का आधा राज्य दिलाने को सिरोही पर चढ़ आई थी, जिसका मुख्य सेनापति जोधपुर के महाराव चन्द्रसेन का पुत्र राठौड़ रायसिंह था. इसी रणखेत में राठौड़ रायसिंह, सीसोदिया जगमाल आदि कितने ही प्रसिद्ध पुरुष मारेगये और शाही फौज हारकर यहां से लौट गई थी. इसी लड़ाई

† महाराव सुरताण के समय से लगाकर अब तक सिरोही राज्य के रहने वाले चारण जब सिरोही के महारावजी को सलाम करते हैं, उस समय इस रणखेत की विजय का स्मरण कराने वाला नीचे लिखा हुआ वाक्य बोला करते हैं:—

' नंदीगिरिनरेश कटारबंध चहुआण दताणी खेतरा जेत जुहार '.

भावार्थ—दताणी के रणखेत में जय पानेवाले कटारबंध आबू के चौहान राजा को प्रणाम.

नंदीगिरि — नंदिवर्द्धन पर्वत अर्थात् आबू. आबू का दूसरा नाम नंदिवर्द्धन होने के कारण सिरोही के राजा ' नंदीगिरिनरेश ' कहलाते हैं.

प्राचीन काल से ही चौहानों का राज्य चिन्ह कटार होना पाया जाता है. नाडोल के चौहान महाराजाधिराज केल्हणदेव के वि० सं० १२२३ (ई० स० ११६६) के ताम्रपत्र में उक्त राजा के हस्ताक्षर के पूर्व कटार का चिन्ह बना हुआ है. नाडोल के चौहानों के वंशज बूंदी के राजाओं का भी यही चिन्ह रहा, जो वहां के महाराव रामसिंह के सिक्कों पर मिलता है, और सिरोही के राज्य चिन्ह में भी कटार पाया जाता है.

में प्रसिद्ध देवड़ा समरा भी मारा गया था, जिसकी छत्री यहां पर सिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर के सामने बनी हुई है. यह लड़ाई दताणी गांव से पूर्व थोड़ी दूरी पर आबू की दक्षिण-पश्चिमी पर्वतश्रेणी के नीचे ही हुई थी. दताणी गांव में एक जैनमन्दिर, एक देवी का टूटा हुआ मन्दिर तथा सिद्धेश्वर नाम का प्रसिद्ध शिवालय भी है. उक्त शिवालय के भीतर के एक शिला लेख में लिखा है, कि 'वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) फाल्गुन सुदि २ के दिन खारद्रेचा सूजा ने सिद्धेश्वर के आगे कमलपूजा † की और उसकी स्त्री सुजानदेवी उसके साथ सती हुई'. दताणी से क़रीब ३ माइल पश्चिम में मकावल गांव से थोड़ी दूरी पर एक छोटे से तालाब के किनारे पर संगमर्मर का एक अठपहलू मोटा स्तंभ खड़ा हुआ है, जिसपर परमार राजा धारावर्ष के समय का वि० सं० १२७६ (ई० स० १२१६) श्रावण सुदि ३ का लेख खुदा हुआ है. धारावर्ष के समय के अब तक मिले हुए लेखों में यह सब से पिछला है, और इसीसे निश्चय होता है, कि धारावर्ष ने कम से कम ५६ वर्ष राज किया था, क्योंकि उसके

---

† अपने ही हाथ से अपना सिर काटकर शिव या देवी के अर्पण करने को 'कमल पूजा करना' कहते हैं. ऐसा सुनने में आया है, कि कमल पूजा करने के लिये प्राचीन काल में एक खास शस्त्र रहता था, जिसकी आकृति अर्द्धचन्द्र के समान होती थी और जिसके दोनों किनारों में एक रस्सी बांधी जाती थी. कमल पूजा करनेवाला मूर्त्ति के सामने बैठकर उस शस्त्र को अपनी गर्दन के पीछे रखना और उस डोरी को पैरों में लगाकर ज़ोर के साथ दोनों पैरों से झटका लगाता, जिससे उसका सिर कटकर मूर्त्ति के सामने गिर जाता था.

समय का कायद्रां से मिला हुआ लेख वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) का है.

नींबोरा—दताणी से क़रीब ६ माइल उत्तर-पश्चिम में नींबोरा गांव है, जिससे आधमील के अन्तर पर नदी के तट पर एक शिव की त्रिमूर्ति का मन्दिर है. यह मन्दिर टूट गया है, परन्तु मूर्ति वहां पर अब तक विद्यमान है.

वर्माण—नींबोरा से ६ माइल पश्चिम में वर्माण नामक गांव है. यह स्थान बहुत प्राचीन है और पहिले एक अच्छा क़सबा होना चाहिये. इसका नाम शिलालेखों में 'ब्रह्माण' मिलता है, जिसका अपभ्रंश वर्माण हुआ है. यहां पर संगमर्मर का बना हुआ 'ब्रह्माणस्वामी' नामक विशाल सूर्य का मन्दिर है. हिन्दुस्तान भर में सूर्य का ऐसा सुन्दर मन्दिर शायद ही दूसरा मिले. यह मन्दिर ई० स० की सातवीं शताब्दी के आस पास का बना हुआ प्रतीत होता है. इस मन्दिर के थंभों पर ६ लेख खुदे हुए हैं, जिनमें से एक परमार राजा धुंधुक के पुत्र पूर्णपाल के समय का है, जिसमें लिखा है, कि वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) जेष्ठ सुदी ३० (पूर्णमासी) बुधवार के दिन पडिहार वंशी सारम के पुत्र णाचक ने ब्रह्माणस्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया. दूसरा लेख वि० सं० १०७६ (ई० स० १०१९) का है, जिसमें सोहप नामक पुरुष ने दो खेत इस मन्दिर को भेट किये जिसका उल्लेख है. तीसरा लेख राजा विक्रमसिंह के समय का वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९)

जेठ वदि ५ का है. बाक़ी के ३ लेख वि० सं० १३१५, १३३० और १३४२ (ई० स० १२५८, १२७३ और १२८५) के हैं. इस मन्दिर में बड़ी कारीगरी का काम है. मुख्य मन्दिर तथा सभामंडप अबतक विद्यमान हैं, परन्तु बाक़ी का हिस्सा टूटगया है. यहां पर जो संगमर्मर के ढेर पड़े हुए हैं, उनपर से इस मन्दिर के महत्त्व का विचार हो सकता है. इसमें अब मूर्त्ति नहीं है, परन्तु परिक्रमा में पीछे (पश्चिम) के ताक़ में मूर्त्ति का आसन विद्यमान है, जिस पर सुन्दर सात घोड़े बने हुए हैं, जिनसे स्पष्ट है, कि उसपर सूर्य की मूर्त्ति थी. इस मन्दिर के चौतरफ़ पड़े हुए पत्थरों में सूर्य की कई टूटी हुई मूर्त्तियां भी पड़ी हुई हैं. यहां से कुछ दूर एक नाले के निकट वर्मेश्वर का मन्दिर है, जिसमें शिव की त्रिमूर्त्ति है. इस मन्दिर के चौक में एक लक्ष्मी की मूर्त्ति भी पड़ी हुई है, जो वास्तव में कारीगरी का उत्तम नमूना है. इसकी दीवारों में सूर्य आदि की कई एक मूर्त्तियां जीर्णोद्धार के समय चुनदी गई हैं. यहां से क़रीब एक माइल पर 'कानवट' नामक एक बहुत ऊंचा तथा विस्तृत वड़ का वृक्ष है, जिसकी सैंकड़ों शाखाएं ज़मीन में जम गई हैं. दूर से देखने वालों को यह बड़ एक हरे छत्र सा मालूम होता है. इस राज्य में ऐसा बड़ दूसरा कोई नहीं है. इस के नीचे शेषशायी विष्णु का मन्दिर था, जिसको इस (बड़) ने तोड़ डाला है. इसके कुछ पत्थर बड़ की शाखाओं के बीच पड़े हुए पाये जाते हैं. शेषशायी विष्णु की मूर्त्ति अब तक वहां पर मन्दिर के कुछ

पत्थरों सहित विद्यमान है. लोग इस मूर्ति को कानजी (कृष्ण) की मूर्ति मानते हैं, इसीपर से इस बड़ का नाम कानवट पड़ा है. गांव के अन्दर एक विशाल और प्राचीन जैनमन्दिर है, जिसकी दीवार में भी एक सूर्य की मूर्ति चुनी हुई है.

कूसमा—वर्मांण से ४ माइल पश्चिम में कूसमा गांव है. यहां पर ई० स० की आठवीं शताब्दी के आस पास का बना हुआ रामचन्द्रजी का बड़ा ही विशाल मन्दिर है, जिसका कितनाक हिस्सा गिरगया है. यह मन्दिर विष्णु का नहीं किन्तु शिव का है, जिसमें सुन्दर त्रिमूर्ति और शिवलिंग हैं. इसके सभामण्डप में शेषशायी नारायण, विष्णु आदि की कई एक मूर्तियां रक्खी हुई हैं, जो पास के टूटे हुए मन्दिरों की होनी चाहियें. इसके चौक में शिवलिंग, लकुलीश, विष्णु आदि की टूटी हुई मूर्तियां पड़ी हुई हैं और उसके एक कौने पर एक बहुत बड़ी और सुन्दर गणपति की मूर्ति है, जिससे थोड़ी दूर पर सूर्य की टूटी हुई मूर्ति पड़ी हुई है. इस मन्दिर से कुछ अंतर पर ब्रह्मा का एक टूटा हुआ मन्दिर तथा एक टूटी हुई बावड़ी है. वर्मांण के ब्रह्माणस्वामी तथा कूसमा के रामचन्द्रजी के मन्दिरों की समानता करनेवाला, इतने प्राचीन काल का बना हुआ, और कोई मन्दिर इस राज्य में नहीं है. फोटोग्राफरों तथा पुरातत्ववेत्ताओं के लिये इन दोनों स्थानों में बहुत सामान है.

हणाद्रा—आबू की पश्चिम में उक्त पर्वत से करीब १ माइल

पर यह गांव है. आबू पर देलवाड़ा गांव में बनेहुए वस्तुपाल के प्रसिद्ध मन्दिर के शिलालेख में, जो वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३१) का है, इस गांव का नाम हंडाउद्रा मिलता है. यहां पर एक जैनमन्दिर है और उसके पास ही लक्ष्मीनारायण का विष्णुमन्दिर है, जो पहिले सूर्य का मन्दिर था. सूर्य की मूर्ति को वहां से उठा कर एक कोने में रखदी है और उसके स्थान पर लक्ष्मीनारायण की नवीन मूर्ति स्थापित की गई है. पहिले आबू पर जाने का मुख्य मार्ग हणाद्रे से ही था और राजपूताना के राजाओं के वकीलों के डेरे भी यहीं बने थे, जहां उनकी सवारियां, नौकर वगैरा रहा करते थे, जिससे यहां पर आबादी और व्यापार की तरक्की थी, परन्तु अब यहां की आबादी बहुत घट गई है. यहां से क़रीब दो माइल पर आबू के नीचे की एक पहाड़ी पर प्रसिद्ध क्रोड़ीधज का मन्दिर है. यह मन्दिर सूर्य का है. इस में जो श्याम पत्थर की बनी हुई सूर्य की मूर्ति है उसके देखने से अनुमान होता है, कि यह उस मन्दिर के बनने से बहुत पीछे की है. सभामण्डप के पास ही एक और सूर्य का छोटासा मन्दिर है, जिस- में सूर्य की मूर्ति है और उसके द्वार के पास संगमर्मर की बनी हुई एक सूर्य की बड़ी मूर्ति रक्खी हुई है, जो प्राचीन है. वह इस मन्दिर की पहिले की मूर्ति होनी चाहिये. उसके खण्डित हो जाने के कारण उसको उठा कर उसके स्थान में यह नवीन मूर्ति स्थापित की गई हो. मन्दिर के सभामण्डप के बीच एक स्तंभ पर सूर्य का सुन्दर कमलाकृति

चक्र घूमता हुआ रक्खा है. सभामण्डप के स्तंभों पर दो लेख वि० सं० १२०४ (ई० स० ११४७) के खुदे हुए हैं. यहां पर छोटे छोटे और भी मन्दिर हैं, जिनमें देवी, सूर्य आदि की मूर्तियां हैं. सभामण्डप से कुछ नीचे एक टूटा हुआ शिवमन्दिर है, जिसमें शिवलिंग के पास सूर्य, शेषशायी नारायण, विष्णु, हरगौरी आदि की कई एक मूर्तियां रक्खी हुई हैं, जो उक्त पहाड़ी के नीचे की आबादी से या लाखावती से लाई गई हों. इस पहाड़ी के नीचे दूर दूर तक मकानों के निशान हैं और इधर उधर देवियों आदि की कितनीक मूर्त्तियां पड़ी हुई हैं. एक चरावाहे से दर्याफ्त करने पर उसने कहा, कि 'पहिले कोड़ीधज के नीचे झोरापाटन नाम का शहर था, जिसके ये निशान हैं'. यहां से आधे मील पर लाखाव (लाखावती) नाम की पुरानी नगरी के निशान हैं, जहांपर बड़ी बड़ी ईंटें तथा पुरानी मूर्त्तियां पाई जाती हैं. ब्रह्मा की एक बड़ी मूर्त्ति को कई बरसों पहिले हाथल गांव के ब्राह्मणों ने वहां से लाकर अपने गांव में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के साम्हने रक्खा था, परन्तु पीछे से उनको कुछ संदेह होजाने के कारण वह मूर्ति वहां से उठाकर पीछी लाखावती में रखदी गई. यहांसे क़रीब एक माइल पर आबू के नीचे सघन वन और बांस की झाड़ीतले एक नाले के ऊपर देवांगणजी का प्राचीन मन्दिर कुछ ऊंचाई पर है. इस मन्दिर की सीढ़ियां टूट-जाने के कारण वहां पर चढ़ने में कुछ कठिनता रहती है. मन्दिर छोटा है, जिसमें बड़े क़द की खड़ी हुई विष्णु की मूर्त्ति है, जो उक्त मन्दिर

जितनी पुरानी मालूम नहीं देती. मन्दिर के चौक में दीवारों के पास कई एक मूर्त्तियां रक्खी हुई हैं, जिनमें दो नरसिंह अवतार की, कितनीक देवियों (मातृकाओं) की तथा एक कमलासन पर बैठी हुई विष्णु के बुद्ध अवतार की सुन्दर मूर्त्ति है, जिसके दो हाथ जैन मूर्त्तियों के समान पद्मासन पर रक्खे हुए हैं, और ऊपर के दो हाथों में कमल और शंख हैं. इस मन्दिर के सामने नाले की दूसरी तरफ़ थोड़ी ऊंचाई पर शिव की त्रिमूर्त्ति का मन्दिर था, जो बिलकूल टूटगया है, परन्तु विशाल त्रिमूर्त्ति अबतक वहांपर मौजूद है.

धांधपुर—हणाद्रे से करीब दो माइल दक्षिण-पश्चिम में धांधपुर गांव है. इस गांव का नाम शिलालेखों में धंधुकपुर मिलता है, जिससे अनुमान होता है कि परमार राजा धुंधुक ने अपने नाम से इसे बसाया हो. यहां १२ वीं और १३ वीं सदी के कितनेक लेख पड़े हुए मिले, परन्तु वे यहां तक बिगड़ गये हैं, कि अब वे साफ़ साफ़ पढ़े नहीं जाते. एक स्मारक पत्थर पर हाथ में भाला धारण कर घोड़े पर चढ़े हुए पुरुष की मूर्त्ति के नीचे तीन पंक्तियों का एक लेख खुदा है, जिसमें वि० सं० १३४७ (ई० स० १२९०) परमार पातलसी सुत अर्जुन लिखा है. ' पातलसी ' प्रतापसिंह का अपभ्रंश होने से अनुमान होता है, कि इस लेख का अर्जुन, परमार राजा प्रतापसिंह का, जिसके समय का पाटनारायण का लेख वि० सं० १३४३ (ई० स० १२८६) का है, पुत्र हो, और वह किसी लड़ाई में मारा गया हो. लेखों से पाया जाता है,

कि देवड़े जालोर की तरफ़ से मुल्क दबाते चले आते थे और आबू की पश्चिम का कितनाक इलाक़ा वे इस समय से पूर्व अपने अधिकार में कर चुके थे, इसलिये अर्जुन देवड़ों के साथ लड़कर मारा गया हो तो आश्चर्य नहीं.

हाथल—हणाद्रे से ढाई माइल उत्तर-पश्चिम में हाथल गांव है, जिसको १५ वीं शताब्दी के लेखों में ब्रह्मस्थान † लिखा है. यह गांव परमार राजाओं के समय ब्राह्मणों को दान में मिला था और इसकी चौतरफ़ की सीमा में थोड़े थोड़े अन्तर पर जो पत्थर वि० सं० १२१५ (ई० स० ११५८) में गड़वाये गये उनपर कहीं शिवलिंग और कहीं बछड़ों सहित गायें खुदवाई थीं, जिनकी कारीगरी बहुत ही अच्छी है. गांव की सीमा पर इस प्रकार के अनेक पत्थर गड़े हुए दूसरी जगह कहीं देखने में नहीं आये. यहां पर गांव के पास ही एक ब्रह्मा का और एक सूर्य का मन्दिर है. ये दोनों ऊंची कुर्सी पर संगमर्मर के बने हुए थे, परन्तु अब टूट गये हैं और इनकी टूटी हुई मूर्तियां वहां पर पड़ी हुई हैं.

असावा—हणाद्रे से क़रीब ६ माइल उत्तर-पूर्व में असावा गांव है, जो 'ब्रह्महत्या का स्थान' नाम से प्रसिद्ध है. सिरोही के महाराव जगमाल का छोटा भाई हंमीर बड़ा ही चालाक था. उसने अपने लिये अच्छी जागीर निकलवाली थी, परन्तु उसपर उसको सन्तोष

† ब्रह्मस्थान=ब्राह्मणों को दान में दिया हुआ गांव.

न हुआ और वह शासन के गांवों को जबरन् छीनने लगा. असावा गांव के छीनने में उसने कितने ही ब्राह्मणों को मार डाला, जिसपर उनकी स्त्रियां जीवित जलमरीं. फिर इस हत्याकांड के प्रायश्चित्त के लिये हंमीर के भाइयों, बहिनों आदि ने मिलकर वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में यह गांव बहुत बड़ी सीमा के साथ उन ब्राह्मणों के वंशजों को पीछा दिला दिया. सिरोही के राजा इस गांव का जल नहीं पीते. यहां पर एक हनुमान की विशाल मूर्त्ति है, जो वि० सं० १३५५ (ई० स० १२९७) वैशाख सुदि १० को स्थापित की गई थी. उसके पास गोगादेव की मूर्ति है, जिसकी स्थापना भी उसी दिन हुई थी. यह घोड़े पर चढ़े हुए वीर पुरुष की मूर्ति है, जिसको लोग गोग चहुआन बतलाते हैं. असावा से दो मील पूर्व में देवखेत्र (देवक्षेत्र) नामक तीर्थस्थान है. देवखेत्र का मन्दिर संगमर्मर का बना हुआ है, जिसमें शिव की विशाल त्रिमूर्ति बनी हुई है और उसके आगे शिवलिंग स्थापित है. यहां पर एक टूटा हुआ लेख परमार राजा सोमसिंह के समय का वि० सं० १२९३ (ई० स० १२३६) का है. इस मन्दिर के अहाते में कई एक छोटे छोटे मन्दिर हैं और एक टूटी हुई सुन्दर सूर्य की मूर्ति भी पड़ी हुई है, जो इन छोटे मन्दिरों में से किसी एक की होनी चाहिये. मन्दिर के सामने एक बावड़ी है.

टोकरां—असावा से दो माइल दक्षिण में टोकरां नाम का पुराना गांव है, जो अब ऊजड़सा है. पहिले यहां पर अच्छी आबादी

होने के निशान पाये जाते हैं. इसके पास एक नाले के ऊपर सोना-धारी का प्रसिद्ध शिवमन्दिर है, जिसकी मरम्मत थोड़े ही बरसों पहिले हुई है. इस मन्दिर के अहाते में ३ छोटे छोटे मन्दिर और भी हैं, जिनमें से एक के स्तंभपर वि० सं० १३३३ (ई० स० १२७७) फाल्गुन वदि ६ का एक लेख है, जिससे पाया जाता है, कि उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा राव बीजड़ ने की थी. सिरोही के देवड़ों (चौहानों) के लेखों में यह लेख सबसे पहिला है. इसपर से अनुमान होता है, कि उक्त संवत् के पूर्व देवड़े आबू से पश्चिम की ओर का मुल्क अपने आधीन करते हुए आबू की तलहटी तक पहुंच गये थे.

सणपुर—हणाद्रे से १२ माइल उत्तर-पूर्व में सणपुर नामक पुराना गांव है. इस छोटे से गांव की चौतरफ़ प्राचीन समय का बना हुआ बड़े बड़े पत्थरों का कोट था, जिसका कितनाक हिस्सा अबतक मौजूद है. यहां पर एक जैनमन्दिर ई० स० की १२ वीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ है, जिसकी मरम्मत थोड़े बरसों पहिले हुई है. यहां पर हनुमान के मन्दिर के पास पड़ा हुआ वि० सं० १३३३ (ई० स० १२७६) का एक लेख मिला, जो जालौर के चौहान राजा चाचिगदेव के समय का है. इस लेख के ऊपर के हिस्से में घोड़े पर चढ़े हुए एक पुरुष की मूर्त्ति छत्रसहित खुदी हुई थी, जिसको किसी-ने तोड़ डाला है और लेख का एक तरफ़ का नीचे का हिस्सा भी टूटा

हुआ है. इस लेख से पाया जाता है, कि उक्त संवत् में यहांतक जालोर के चौहानों का राज्य † था.

एरनपुर–राजपूताना मालवा रेलवे के 'एरनपुरा रोड' स्टेशन से क़रीब ६ माइल उत्तर-पश्चिम में जवाई नदी के तटपर अंग्रेज़ी सर्कार की एरनपुर की छावनी है. ता० ६ जनवरी स० १८१८ ई० (वि० सं० १८७४) में जोधपुर राज्य का सर्कार अंग्रेज़ी के साथ देहली में अहदनामा हुआ, जिसकी ८ वीं शर्त में एक बात यह भी थी, कि 'आवश्यकता के समय जोधपुर राज्य सर्कार अंग्रेज़ी को १५०० सवार देगा.' इस शर्त के अनुसार ई० स० १८३२ (वि० सं० १८८६) में जोधपुर राज्य की तरफ़ से जो सवार सर्कार अंग्रेज़ी की सेवामें भेजे गये वे काम के लायक़ न निकले, जिससे फिर वि० सं० १८९२ पोस सुदि २ (ता० ७ दिसम्बर स०

† सिरोही से क़रीब १२ माइल उत्तर-पूर्व में पालड़ी गांव के जैनमन्दिर में चौहान राजा केल्हणदेव के कुंवर जैतसिंह के समय का वि० सं० १२३९ (ई० स० ११८२) का, पालड़ी से २ माइल उत्तर-पूर्व में ऊथमण गांव के उथमेश्वर महादेव के मन्दिर में राजा सामंतसिंह के समय का वि० सं० १३(?)५६ (ई० स० १२(?)९९) का तथा पालड़ी से क़रीब २ माइल उत्तर में वागीण गांव के जैनमन्दिर में चौहान राजा सामंतसिंह के समय का वि० सं० १३५९ (ई० स० १३०२) का लेख है. इन लेखों से पाया जाता है, कि परमारों के राज्य समय भी वर्तमान सिरोही शहर से उत्तर का हिस्सा चौहानों के ही आधीन था. सिरोही से क़रीब १२ माइल पूर्व में और झाड़ोली से क़रीब ३ माइल उत्तर में सांवेरा गांव है, जहां के शांतिनाथ के जैनमन्दिर में देवड़ा विजयसिंह के समय का वि० सं० १२८९ (ई० स० १२३२) का लेख भी मिला है.

१८३५) में यह तै हुआ, कि इन सवारों के बदले में जोधपुर राज्य की तरफ़ से ११५०००) रुपये कल्दार सालाना सर्कार को दिये जावें. इसपर सर्कार अंग्रेज़ी की तरफ़ से ई० स० १८३६ (वि० सं० १८९३) में कप्तान डाउनिंग ने 'जोधपुर लिजिअन' † नामक सेना अजमेर में भरती की और उसके लिये यह जगह पसंद की, जो सिरोही के महाराव शिवसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक सर्कार अंग्रेज़ी को उस सेना के रहने के लिये दी, जिससे ई० स० १८३७ (वि० सं० १८९४) में यहां पर छावनी क़ायम हुई. उस सेना के अफ़सर मेजर डाउनिंग ने अपनी जन्मभूमी के टापू 'एरन' के नाम पर से इस जगह का नाम 'एरनपुर' (एरनपुरा) रक्खा. पहिले यहां पर आबादी बिलकुल न थी, परन्तु इस वक्त यहां पर फौज की लाइनें, अस्पताल, गिरजा, डाकबंगला, अंग्रेज़ अफ़सरों के मकान तथा बाज़ार बन जाने से यह एक रौनक़दार जगह बन गई है और यहां पर अच्छी आबादी हो गई है. यहां की फौज़ में १०० सवार और आठ पैदल पलटनें हैं, जिनमें विशेष कर जोधपुर तथा सिरोही राज्य के भील व मीने भरती किये गये हैं. इस सेना ने समय समय पर राजपूताने में बहुत अच्छा काम दिया है.

---

† ई० स० १८६० (वि० सं० १९१७) में इस फौज का नाम 'एरनपुरा इरेग्युलर फोर्स' रक्खा गया था. पहिले यह फौज फॉरिन् डिपार्टमेंट के मातहत थी, परन्तु ई० स० १८९७ (वि० सं० १९५४) से यह 'कमाण्डर इन चीफ़' (जंगी लाट) के अधिकार में होगई, जिसके बाद ई० स० १९०३ (वि० सं० १९६०) में इसका नाम '४३ वीं (एरनपुरा) रेजिमेंट' रक्खा गया है.

शिवगंज—एरनपुर की छावनी क़ायम होने बाद महाराव शिवसिंह ने उसके पास ही अपने नाम पर से शिवगंज नामक क़सबा वि॰ सं॰ १९१० (ई॰ स॰ १८५४) में आबाद किया, जिसकी तरक्क़ी के लिये उन्होंने केवल सवा रुपया लेकर एक एक मकान की ज़मीन का पट्टा कर देने की आज्ञा दी और ब्यौपारियों से माल के हासिल की चौथाई छोड़ दी, जिससे पाली आदि दूर दूर के ब्यौपारी यहां पर आबाद हुए. इस समय यह क़सबा शिवगंज तहसील का मुख्य स्थान और ब्यौपार की जगह है, जहांसे दूर दूर के गांवों के रहनेवाले अपनी ज़रूरत का सामान बहुधा ख़रीदते हैं.

आबू—सिरोही राज्य के दक्षिण-पूर्वी हिस्से में आबू पर्वत है. यह पर्वत आड़ावला (अर्वली) पर्वत से अलग खड़ा हुआ है, तो भी इससे सम्बन्ध रखनेवाली छोटी छोटी पर्वतश्रेणियां आड़ावला (अर्वली) से मिलजाती हैं. इसका ऊपर का हिस्सा लंबाई में १२ माइल और चौड़ाई में २ से ३ माइल तक है. इसकी अधिक से अधिक ऊंचाई ५६५० फीट (गुरुशिखर पर) है, परन्तु ऊपर की समानभूमि की ऊंचाई क़रीब ४००० फीट है. इसके चौतरफ़ के ढलाव अनेक प्रकार के सघन वृक्षों से भरे हुए हैं, जिनकी शोभा अनुपम है. पक्षियों का मनोहर शब्द यहांपर निरंतर सुनाई देता है. चातुर्मास में हरियाली तथा विविध प्रकार के पुष्पों का मनोहर दृश्य एवं झरनों का बहाव आबू पर चढ़नेवाले के चित्त को प्रफुल्लित कर देता है. यहीं ईश्वर की

अगाध लीला का कुछ भास होता है. प्राचीन काल से ही यह पर्वत पवित्र माना जाता है और यहां पर शैव, शाक्त, वैष्णव और जैनों के तीर्थस्थान होने के कारण हजारहा यात्री हरसाल यात्रा के लिये यहां आते हैं. पहिले इसपर चढ़ने के मार्ग † बहुत विकट थे, जिससे यात्रियों को बड़ी कठिनाई पड़ती थी. वि० सं० १६०२ (ई० स० १८४५) में सिरोही के महाराव शिवसिंह ने सर्कार अंग्रेज़ी को यहां पर सेनिटेरियम (स्वास्थ्यदायक स्थान) बनाने के लिये १५ शर्तों के साथ ज़मीन दी, और राजपूताना के एजंट गवर्नर जनरल साहब का मुख्य निवासस्थान यहीं नियत हुआ, जिससे सर्कार अंग्रज़ी की तरफ़ से यहां के रास्ते की दुरुस्ती होने लगी और राजपूताना मालवा रेलवे के आबूरोड़ (खराड़ी) के स्टेशन से यहां तक १८ माइल लंबी सड़क बन जाने से अब मोटरगाड़ियां, बग्गियां, तांगे, इक्के और बैलगाड़ियां आसानी से ऊपर जासकती हैं. यहां पर अब रेजीडेन्सी, सरकारी अफ़सरों के बंगले, सरकारी दफ़तर, गिरजाघर, क्लबघर, पोलो आदि खेल के स्थान, मदरसे, अस्पताल, अंग्रेज़ी सिपाहियों की बारकें, राजपूताना के राजाओं, वकीलों तथा धनाढ्य पुरुषों के बंगले, होटल, बाज़ार और जगह २ सड़क बनजाने से यहां

† मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण के वि०सं० १५०६ (ई०स० १४४९) के लेख से पाया जाता है, कि उस समय घोड़े तथा लदे हुए बैल आबूपर चढ़ते थे, और जैनलोगों में ऐसी प्रसिद्धि है, कि देलवाड़े के मंदिरों के लिये बड़े बड़े पत्थर हाथियों पर रखकर इस पहाड़ पर चढ़ाये गये थे.

की शोभा बहुत बढ़ गई है. उष्णकाल के लिये यह स्थान स्वर्ग समान माना जाता है. उन दिनों यहां की आबादी बहुत बढ़ जाती है और कितने ही राजा, धनाढ्य लोग, युरोपियन अफ़सर आदि यहां के शीतल सुगंधमय वायु का सेवन करते हैं. यहां की प्राकृतिक शोभा ऐसी उत्तम है, कि बिना देखे उसका अनुमान हो ही नहीं सकता. नखी तालाब ने छोटा होने पर भी यहां की रमणीयता को और भी बढ़ा दिया है.

इस पर्वत की उत्पति के विषय में ऐसी कथा मिलती है, कि वशिष्ठ नामक ऋषि इस देश में रहते थे, जिनकी गौ उत्तङ्क मुनि के खोदे हुए अगाध गढ़े में गिर गई, जिससे वशिष्ठ ऋषि ने हिमालय से प्रार्थना कर उसके नंदिवर्धन नामक एक शिखर को अर्बुद नाम के सर्प द्वारा यहां लाकर उस गढ़े को पूर्ण किया, तबसे नंदिवर्धन, अर्बुद (आबू) नामसे प्रसिद्ध हुआ. राजपूत लोग ऐसा मानते हैं, कि यहीं पर रहनेवाले वशिष्ठ ऋषि ने अपने अग्निकुण्ड में से परमार, पड़िहार, सोलंकी और चौहान नामक चार पुरुषों को उत्पन्न किया, जिनके वंशज दूर २ के प्रदेशों के राजा हुए. आबू पर प्राचीन स्थान इतने अधिक हैं, कि उन सबका विवरण यहां लिखा जावे, तो यह प्रकरण बहुत बढ़ जावे, इसलिये हम थोड़े से मुख्य मुख्य स्थानों का ही संक्षिप्त हाल यहां पर लिखते हैं:—

अर्बुदादेवी—नखी तालाब से अचलेश्वर की तरफ़ जाते हुए पहिले अर्बुदादेवी का मन्दिर आता है. यह छोटासा मन्दिर एक ऊंची

पहाड़ी के अध बीच में है, जहां से दूर २ की शोभा नज़र आती है. ४५० सीढियां चढ़ने पर मन्दिर में पहुंचते हैं. इस मन्दिर में अंबिका की प्रसिद्ध मूर्ति है, जिसको लोग अर्बुदादेवी या अधरदेवी कहते हैं. यह स्थान बहुत प्राचीन माना जाता है और यहां पर एक गुफा भी है.

देलवाड़ा—अर्बुदादेवी से क़रीब एक माइल उत्तर-पूर्व में देलवाड़ा नामक गांव है, जो देवालयों के लिये ही प्रसिद्ध है. यहां के मन्दिरों में से आदिनाथ और नेमिनाथ के जैनमन्दिर कारीगरी की उत्तमता के लिये संसार भर में अनुपम हैं. ये दोनों मन्दिर संगमर्मर के बने हुए हैं. इनमें भी पुराना और कारीगरी की दृष्टि से कुछ अधिक सुन्दर, विमलशाह नामक पोरवाड़ महाजन का बनाया हुआ विमलवसही नाम का आदिनाथ का जैनमन्दिर है, जो वि० सं० १०८८ (ई०स०१०३१) में समाप्त हुआ था. इसमें करोड़ों रुपये लगे होंगे. आबू पर परमार वंश का राजा धंधुक उस समय राज्य करता था. वह गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव का सामंत हो ऐसा अनुमान होता है. उसके और भीमदेव के बीच अनबन हो जाने पर वह मालवा के परमार राजा भोजदेव के पास चला गया, जो उस समय प्रसिद्ध चित्तौड़ के क़िले (मेवाड़ में) पर रहता था. भीमदेव ने विमलशाह को अपनी तरफ़ से दंडनायक (सेनापति) नियत कर आबू पर भेज दिया, जिसने अपनी बुद्धिमानी से धंधुक को चित्तौड़ से बुलाया और उसीके द्वारा भीमदेव को प्रसन्न करवा

दिया. फिर धंधुक से ज़मीन लेकर उसने यह मन्दिर बनवाया. इसमें मुख्य मन्दिर के सामने विशाल सभामंडप है और चौतरफ़ छोटे २ कई एक जिनालय हैं. इस मन्दिर में मुख्य मूर्ति ऋषभदेव (आदिनाथ) की है, जिसकी दोनों तरफ़ एक एक खड़ी हुई मूर्ति है. और भी यहां पर पीतल तथा पाषाण की मूर्तियां हैं, जो सब पीछे की बनी हुई हैं. मुख्य मन्दिर के चौतरफ़ के छोटे छोटे जिनालयों में अलग २ समय पर अलग २ लोगों ने मूर्तियां स्थापित की थीं, ऐसा उनपर के लेखों से पाया जाता है. मंदिर के सन्मुख हस्तिशाला बनी है, जिसमें दरवाज़े के सामने विमलशाह की अश्वारूढ पत्थर की मूर्ति † है, जिस-पर चूने की घुटाई होने से उसमें बहुत ही भद्दापन आगया है. विमल शाह के सिर पर गोल मुकुट है, और घोड़े के पास एक पुरुष लकड़ी का बना हुआ छत्र लिये हुए खड़ा है. हस्तिशाला में पत्थर के बने हुए दस हाथी हैं, जिनमें से ६ वि० सं० १२०५ (ई० स० ११४६) फाल्गुन सुदि १० के दिन नेढक, आनन्दक, पृथ्वीपाल, धीरक, लहरक और मीनक नामक पुरुषों ने बनवाकर यहां रक्खे थे, जिन सबको महा-मात्य (बड़े मन्त्री) लिखा है. बाक़ी के हाथियों में से एक पंवार

† हमारी राय में विमलशाह की यह मूर्ति मन्दिर के साथ की बनी हुई नहीं, किन्तु पीछे की बनी हुई होनी चाहिये, क्योंकि यदि उस समय की बनी हुई होती, तो वह ऐसी भद्दी कभी न होती. हस्तिशाला भी पीछे से बनाई गई हो ऐसा पाया जाता है, क्योंकि वह संगमर्मर की बनी हुई नहीं है और न उसमें खुदाई का काम है. उसके अन्दर के सब हाथी भी पीछे के ही बने हुए हैं.

(परमार) ठाकुर जगदेवने और दूसरा महामात्य धनपाल ने वि० सं० १२३७ (ई० स० ११८०) आषाढ सुदि ८ को बनवाया था. एक हाथी के लेख के ऊपर चूना लग जाने से वह पढ़ा नहीं जासका और एक महामात्य धवलक ने बनवाया था, जिसपर का संवत् का अङ्क चूने के नीचे आ गया है. इन सब हाथियों पर पहिले मूर्तियां बनी हुई थीं, परन्तु इस वक्त उनमें से केवल तीन पर ही हैं, जो चतुर्भुज हैं. हस्तिशाला के बाहर परमारों से आबू का राज्य छीनने वाले चौहान महाराव लुंढा (लुंभा) के दो लेख हैं, जिनमें से एक वि० सं० १३७२ (ई० स० १३१६) चैत्र वदि ८ और दूसरा वि० सं० १३७३ (ई० स० १३१७) चैत्र वदि ....का है. इस अनुपम मन्दिर का कुछ हिस्सा मुसल्मानों ने तोड़ डाला था, जिससे वि० सं० १३७८ (ई० स० १२२१) में लल्ल और वीजड़ नामक दो साहूकारों ने चौहान महाराव तेजसिंह के राज्य समय इसका जीर्णोद्धार करवाया और ऋषभदेव की मूर्ति स्थापित की, ऐसा लेख आदि से पाया जाता है †. यहां पर एक लेख बघेल (सोलंकी) राजा सारंगदेव के समय का वि० सं० १३५० (ई० स० १२९४)

---

† जिनप्रभसूरि ने अपनी 'तीर्थकल्प' नामक पुस्तक में लिखा है, कि म्लेच्छों (मुसल्मानों) ने इन दोनों (बिमलशाह और तेजपाल के) मन्दिरों को तोड़ डाला, जिसपर शक सं० १२४३ (वि० सं० १३७८=ई० स० १३२१) में पहिले का उद्धार महणसिंह के पुत्र लल्ल ने करवाया और चण्डसिंह के पुत्र पीथड़ ने दूसरे (तेजपाल के) मन्दिर का उद्धार करवाया.

माघ सुदि १ का एक दीवार में लगा हुआ है. इस मन्दिर की कारीगरी की जितनी प्रशंसा की जावे थोड़ी है. स्तंभ, तोरण, गुंबज़, छत, दरवाज़े आदि पर जहां देखा जावे वहीं कारीगरी की सीमा पाई जाती है. राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहासलेखक कर्नल टॉड साहब, जो आबूपर चढ़नेवाले पहिले ही यूरोपिअन थे, इस मन्दिर के विषय में लिखते हैं, कि हिन्दुस्तान भर में यह मन्दिर सर्वोत्तम है और ताजमहल के सिवाय कोई दूसरा स्थान इसकी समानता नहीं कर सकता. इसके पास ही लूणवसही नामक नेमिनाथ का मन्दिर है, जिसको लोग वस्तुपाल तेजपाल ‡ का मन्दिर कहते हैं. यह मन्दिर प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपाल ने अपने पुत्र लूणसिंह तथा अपनी स्त्री अनुपमदेवी के कल्याण के निमित्त करोड़ों रुपये लगा कर वि॰ सं॰ १२८७ (ई॰ स॰ १२३१) † में बनवाया था. यहीं एक दूसरा मन्दिर है, जो कारीगरी में उपरोक्त विमलशाह के मन्दिर की समता करसकता है. इसके विषय में भारतीय शिल्प सम्बन्धी विषयों के प्रसिद्ध लेखक फर्गसन साहब ने अपनी ' पिक्चरस इलस्ट्रे-

‡ वस्तुपाल और उसका छोटा भाई तेजपाल गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़े (पाटन) के रहने वाले पोरवाड़ महाजन अश्वराज (आसराज) के पुत्र और गुजरात के धोलका प्रदेश के सोलंकी (बघेल) राणा वीरधवल के मन्त्री थे. जैन धर्मस्थानों के निमित्त उनके समान द्रव्य खर्च करने वाला दूसरा कोई पुरुष नहीं हुआ.

† यहां के शिलालेख में वि० सं० १२८७ दिया है, परन्तु तीर्थकल्प में १२८८ लिखा है.

शन्स ऑफ एन्श्यंट आर्किटेक्चर इन् हिन्दुस्तान' नाम की पुस्तक में लिखा है, कि इस मन्दिर में, जो संगमर्मर का बना हुआ है, अत्यन्त परिश्रम सहन करनेवाली हिन्दुओं की टांकी से फ़ीते जैसी बारीकी के साथ ऐसी मनोहर आकृतियां बनाई गई हैं, कि उनकी नक़ल कागज़ पर बनाने को कितने ही समय तथा परिश्रम से भी मैं शक्तिवान् नहीं हो सकता.' यहां के गुंबज़ की कारीगरी के विषय में कर्नल टॉड साहिब लिखते हैं, कि ' इसका चित्र † तय्यार करने में लेखिनी थक जाती है और अत्यन्त परिश्रम करने वाले चित्रकार की कलम को भी महान् श्रम पड़ेगा.' गुजरात के प्रसिद्ध इतिहास 'रासमाला' के कर्ता फार्बस साहब ने विमलशाह और वस्तुपाल तेजपाल के मन्दिरों के विषय में लिखा है, कि 'इन मन्दिरों की खुदाई के काम में स्वाभाविक निर्जीव पदार्थों के चित्र बनाये हैं इतना ही नहीं, किन्तु सांसारिक जीवन के दृश्य, व्यौपार तथा नौकाशास्त्र सम्बन्धी विषय एवं रणखेत के युद्धों के चित्र भी खुदे हुए हैं.' इन मन्दिरों की छतों में जैनधर्म की

† कर्नल टॉड साहब के विलायत पहुंचने के पीछे मिसिज़ विलियम हंटर ब्लैर नाम की एक मैम ने अपना तय्यार किया हुआ वस्तुपाल तेजपाल के मंदिर के गुंबज़ का चित्र टॉड साहब को दिया, जिसपर उनको इतना हर्ष हुआ और उस मैम साहिबा की इतनी कदर की, कि उन्होंने अपनी 'ट्रॅवल्स इन वेस्टर्न इन्डिया' नामक पुस्तक उसीको अर्पण कर दी, और उसे कहा, कि 'तुम आबू गई इतना ही नहीं, किन्तु आबू को इङ्गलैंड में ले आई हो', और वही सुंदर चित्र उन्होंने अपनी उक्त पुस्तक के प्रारंभ में दिया है.

अनेक कथाओं के चित्र भी खुदे हुए हैं. यह मन्दिर भी विमलशाह के मन्दिर की सी बनावट का है. इसमें मुख्य † मन्दिर, उसके आगे गुंबज़दार सभामंडप और उनके अगल बगल पर छोटे छोटे जिनालय तथा पीछे की ओर हस्तिशाला है. इस मन्दिर में मुख्य मूर्ति नेमिनाथ की है, और छोटे छोटे जिनालयों में अनेक मूर्तियां हैं. यहां पर दो बड़े बड़े शिलालेख हैं, जिनमें से एक धोलका के राणा वीरधवल के पुरोहित तथा 'कीर्तिकौमुदी', 'सुरथोत्सव' आदि काव्यों के रचयिता प्रसिद्ध कवि सोमेश्वर का रचा हुआ है. उसमें वस्तुपाल तेजपाल के वंश का वर्णन, अर्णोराज से लगाकर वीरधवल तक की बघेल राणाओं की नामावली, आबू तथा यहां के परमार राजाओं का वृत्तान्त, इस मन्दिर की प्रशंसा तथा हस्तिशाला का वर्णन आदि हैं. यह ७४ श्लोकों का एक छोटा सा सुन्दर काव्य है. इसीके पासके दूसरे शिलालेख में, जो बहुधा गद्य में लिखा है, विशेष कर इस मन्दिर के वार्षिकोत्सव आदि की जो व्यवस्था की गई थी उसका वर्णन है. इसमें आबूपर के तथा उसके नीचे के अनेक गांवों के नाम लिखे गये हैं, जहांके महाजनों ने प्रतिवर्ष नियत दिनों पर यहां उत्सव करना स्वीकार किया था, और इसीसे सिरोही राज्य की उस समय की उन्नत

† मुख्यमंदिर=मंदिर का मुख्य भाग अर्थात् जहां पर मुख्य मूर्ति स्थापित की जाती है. यहां पर जैन लोग उसको 'गंभारा' और शैव, वैष्णव आदि 'निज मंदिर' कहते हैं. हमने इस पुस्तक में उसके लिये 'मुख्यमंदिर' शब्द का ही प्रयोग किया है.

दशा का बहुत कुछ परिचय मिलता है. इन लेखों के अतिरिक्त छोटे छोटे जिनालयों में से बहुधा प्रत्येक के द्वारपर भी सुन्दर लेख खुदे हुए हैं. इस मन्दिर को बनवाकर तेजपाल ने अपना नाम अमर किया इतना ही नहीं, किन्तु उसने अपने कुटुंब के अनेक स्त्री पुरुषों के नाम भी अमर कर दिये, क्योंकि जो छोटे छोटे ५२ जिनालय यहां पर बने हैं उनके द्वार पर उसने अपने सम्बन्धियों के नाम के सुन्दर लेख खुदवा दिये हैं. प्रत्येक छोटा जिनालय उनमें से किसी न किसी के निमित्त बनवाया गया था. मुख्य मन्दिर के द्वार की दोनों ओर बड़ी कारीगरी से बने हुए दो ताक हैं, जिनको लोग 'देराणी जेठाणी के आळिये'† कहते हैं और ऐसा प्रसिद्ध करते हैं, कि इनमें से एक वस्तुपाल की स्त्री ने तथा दूसरा तेजपाल की स्त्री ने अपने अपने खर्च से बनवाया था, और महाराज शांतिविजय की बनाई हुई 'जैनतीर्थ गाइड' नामक पुस्तक में भी ऐसा ही लिखा है, जो स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि ये दोनों आले (ताक) वस्तुपाल ने अपनी दूसरी स्त्री सुहडादेवी के श्रेय के निमित्त बनवाये थे. सुहडादेवी पत्तन (पाटण) के रहने वाले मोढ जाति के महाजन ठाकुर (ठक्कुर) जाल्हण के पुत्र ठाकुर आसा की पुत्री थी, ऐसा उनपर खुदे हुए लेखों से पाया जाता है. इस समय गुजरात में पोरवाड़ और मोढ जाति के महाजनों में परस्पर विवाह

† आळिया=(आळ्या) आलय, ताक.

नहीं होता, परन्तु इन लेखों † से पाया जाता है, कि उस समय उनमें परस्पर विवाह होता था.

इस मन्दिर की हस्तिशाला में बड़ी कारीगरी से बनाई हुई संगमर्मर की १० हथनियां एक पंक्ति में खड़ी हैं, जिनपर चंडप, चंडप्रसाद, सोमसिंह, अश्वराज, लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल,

---

† इन दोनों ताकों पर एक ही आशय के (मूर्तियों के नाम अलग अलग होंगे) लेख खुदे हुए हैं, जिनमें से एक की नकल नीचे लिखी जाती है:—

ॐ संवत् १२९० वर्षे वैशाखवदि १४ गुरौ प्राग्वाटज्ञातीयचंडपचंडप्रसादमहं श्रीसोमान्वये महं श्रीआसराजसुत महं श्रीतेजःपालेन श्रीमत्पत्तनवास्तव्यमोढज्ञातीयठ० जाल्हणसुतठ० आससुतायाः ठकुराज्ञीसँतोषाकुक्षिसंभूताया महं श्रीतेजःपालद्वितीयभार्या महं श्रीसुहडादेव्याः श्रेयोर्थ............यहां से आगे का हिस्सा टूट गया है परन्तु दूसरे ताक के लेख में वह इस तरह है 'एत—त्रिगदेवकुलिका खत्तकं श्रीअजितनाथबिंबं च कारितं ॥

इस लेख में जाल्हण और आस को ठ० (ठक्कुर, ठाकुर) लिखा है, जिसका कारण यह अनुमान किया जाता है, कि वे जागीरदार हों. दूसरे लेखों में वस्तुपाल के पिता आसराज वगैरा को भी ठ० (ठाकुर) लिखा है. राजपूताने में अब तक जागीरदार चारण, कायस्थ आदि को लोग ठाकुर ही कहते हैं.

यहां के लेखों में कई नामों के पहिले 'महं०' लिखा मिलता है, जो 'महत्तम' के प्राकृत रूप 'महंत' का संक्षिप्तरूप होना चाहिये. 'महत्तम' (महंत) एक खिताब होना अनुमान होता है, जो प्राचीन काल में मंत्रियों (प्रधानों) आदि को दिया जाता हो. राजपूताने में अब तक कई महाजन 'मूंता' और 'महता' कहलाते हैं, जिनके पूर्वजों को यह खिताब मिला होगा, जो पीछे से वंशपरम्परागत होकर वंश के नाम का सूचक हो गया हो. 'मूंता' और 'महता' ये दोनों 'महत्तम' (महंत) के अपभ्रंश होने चाहिये .

जैत्रसिंह और लावण्यसिंह (लूणसिंह) † की बैठी हुई मूर्तियां थीं, परन्तु अब उनमें से एक भी नहीं रही. इन हथिनियों के पीछेकी पूर्व की दीवार में १० ताक बने हुए हैं, जिनमें इन्हीं १० पुरुषों की स्त्रियों सहित पत्थर की खड़ी हुई मूर्तियां बनी हैं ‡, जिन सबके हाथों में पुष्पों की माला हैं और वस्तुपाल के सिरपर पाषाण का छत्र भी है. प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री का नाम मूर्ति के नीचे खुदा हुआ है. अपने कुटुंब भर का इस प्रकार का स्मारकचिन्ह बनाने का काम यहां के किसी दूसरे पुरुष ने नहीं किया. यह मन्दिर शोभनदेव नाम के शिल्पी

† इन सब का परस्पर क्या सम्बन्ध था यह नीचे दिये हुए वंशवृक्ष से विदित होगा:—
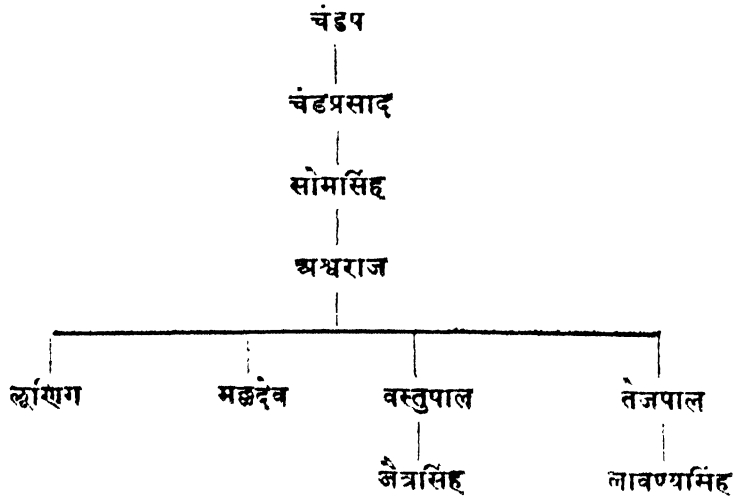
‡ पहिले ताक में ४ मूर्तियां खड़ी हुई हैं, जिनमें पहिली आचार्य उदयसेन की, दूसरी आचार्य विजयसेन की, तीसरी चंडप की, और चौथी चंडप की स्त्री चांपलदेवी की है. उदयसेन विजयसेन का शिष्य था. ये नागेन्द्र गच्छ के साधु और वस्तुपाल के कुल के गुरु थे. वस्तुपाल के इस मन्दिर की प्रतिष्ठा उक्त विजयसेन ने ही कराई थी.

ने बनाया था. मुसल्मानों ने इसको भी तोड़ † डाला, जिससे इसका जीर्णोद्धार ‡ पेथड़ (पीथड़) नाम के संघपति ने करवाया था. जीर्णोद्धार का लेख एक स्तंभपर खुदा हुआ है, परन्तु उसमें संवत् नहीं दिया. वस्तुपाल के मन्दिर से थोड़े अंतर पर भीमासाह का, जिसको लोग भैंसासाह कहते हैं, बनवाया हुआ मन्दिर है, जिसमें १०८ मन तोल की पीतल (सर्वधात) की बनी हुई आदिनाथ की मूर्ति है, जो वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६९) फाल्गुन सुदि ७ को गूर्जर श्रीमाल जाति के मन्त्री मंडन के पुत्र मन्त्री सुन्दर तथा गंदा ने वहां पर स्थापित की थी. इन मन्दिरों के सिवाय देलवाड़े में श्वेतांबर जैनों के दो मन्दिर और हैं (चौमुखजी का तिमंज़िला मन्दिर और शांतिनाथ का मन्दिर) तथा एक दिगंबर जैनमन्दिर भी है.

इन जैन मन्दिरों से कुछ दूर गांव के बाहर कितनेक टूटे हुए पुराने मंदिर और भी हैं, जिनमें से एक को लोग 'रसिया वालम' का

---

† आबू के इन मन्दिरों को किस मुसल्मान सुलतान ने तोड़ा यह मालूम नहीं हुआ. तीर्थकल्प में, जो वि० सं० १३४९ (ई० स० १२९२) के आस पास बनना शुरू हुआ और वि० सं० १३८४ (ई० स० १३२७) के आस पास समाप्त हुआ था, मुसल्मानों का इन मन्दिरों को तोड़ना लिखा है, जिससे अनुमान होता है, कि अलाउद्दीन खिलजी की फ़ौज ने जालोर के चौहान राजा कान्हड़देव पर वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) के आस पास चढ़ाई की उस वक्त यहां के मन्दिरों को तोड़ा हो.

‡ जीर्णोद्धार में जितना काम बना है वह सब का सब भद्दा है.

मंदिर कहते हैं. इस टूटे हुए मंदिर में गणपति की मूर्ति के निकट एक हाथ में पात्र धरे हुए एक पुरुष की खड़ी हुई मूर्ति है, जिसको लोग 'रसिया वालम' की और दूसरी स्त्री की खड़ी हुई है, जिसको 'कुंवारी कन्या' की मूर्ति बतलाते हैं. कोई कोई 'रसिया वालम'† को ऋषि वाल्मीक अनुमान करते हैं. यहां पर वि० सं० १४५२ (ई०स०१३९५) का एक लेख भी खुदा हुआ है.

अचलगढ़—देलवाड़े से अनुमान ५ माइल उत्तर-पूर्व में अचलगढ़ नाम का प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान है. पहाड़ के नीचे समान भूमि पर अचलेश्वर महादेव का, जो आबू के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं, प्राचीन मन्दिर है. आबू के परमार राजाओं के ये कुल देवता माने जाते थे और जब से वहां पर चौहानों का अधिकार हुआ तब से

† यहां के लोग ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि 'रसिया वालम' जो करामाती पुरुष था, आबू के राजा की कन्या से अपना विवाह करना चाहता था, परन्तु राजा उसको स्वीकार नहीं करता था. अन्त में राजाने कहा कि 'सायंकाल से लग कर मुर्गे के बोलने तक रात्रि भर में ही तुम आबू के नीचे से ऊपर तक ४ रास्ते बना दो, तो मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम से कर दूं.' इसपर उसने अपना काम शुरू किया और मुर्गे के बोलने के समय से पहिले वह उसको समाप्त करने वाला ही था, ऐसे में उस लड़की की माता ने, जो उसके साथ अपनी लड़की का विवाह होना नहीं चाहती थी, मुर्गे का सा शब्द कर दिया, जिससे निराश होकर उसने अपना काम छोड़ दिया, परन्तु जब उसको यह भेद मालूम हुआ तब उसने शाप दिया, जिससे वह लड़की और उसकी माता दोनों पत्थर की हो गई. माता की मूर्ति तोड़ डाली गई और उस पर पत्थरों का ढेर कर दिया गया, जो अब तक वहां पड़ा हुआ है. फिर वह (वालम) भी विषपान कर मर गया. उसकी मूर्ति के हाथ में जो पात्र है उसको लोग विष का पात्र बतलाते हैं.

चौहानों के भी इष्टदेव माने जाने लगे. अचलेश्वर का मन्दिर बहुत पुराना है और कई बार इसका जीर्णोद्धार हुआ है. इसमें शिवलिंग नहीं, किन्तु शिव के पैर के अंगूठे का चिन्ह मात्र ही है, जिसका पूजन होता है. इस मन्दिर में अष्टोत्तरशत शिवलिंग † के नीचे एक बहुत बड़ा शिलालेख वस्तुपाल तेजपाल का खुदवाया हुआ है. उसपर जल गिरने के कारण वह बहुत ही बिगड़ गया है, तो भी उसमें गुजरात के सोलंकियों और आबू के परमारों का वृत्तान्त तथा वस्तुपाल तेजपाल के वंश का विस्तृत वर्णन पढ़ने में आ सकता है ‡, जिससे अनुमान होता है, कि तेजपालने इस मन्दिर का + जीर्णोद्धार करवाया हो अथवा यहां पर कुछ बनवाया हो. वस्तुपाल तेजपाल ने जैन होने पर भी कई शिवालयों का उद्धार करवाया था, जिसका उल्लेख मिलता है.

---

† ये १०८ शिवलिंग बहुत छोटे छोटे हैं और एक ही शिला को काट कर उसीपर बनाये गये हैं. यह शिला एक चबूतरे के ऊपर है, जिसके नीचे लेख लगा हुआ है.

‡ इस लेख के बिगड़ जाने से संवत् का अंक पढ़ने में नहीं आता, परन्तु इससे पाया जाता है, कि उस समय आबू का राजा परमार सोमसिंह था और उसका पुत्र कृष्णराज युवराज था. इसी तरह गुजरात का राजा सोलंकी भीमदेव था और उसका सामंत राणा वीरधवल विद्यमान था. इसपर से निश्चय के साथ कहा जा सकता है, कि यह लेख वि० सं० १२९४ (ई० स० १२३७) से कुछ पूर्व का होना चाहिये.

+ यह लेख इसी मन्दिर का है ऐसा मानने का कारण यह है, कि इसके प्रारंभ में अचलेश्वर को नमस्कार किया है.

मन्दिर के पास ही मठ में एक बड़ी शिलापर मेवाड़ के महारावल समरसिंह का वि॰ सं॰ १३४३ (ई॰ स॰ १२८६) का लेख है, जिसमें बापा रावल से लगाकर समरसिंह तक मेवाड़ के राजाओं की वंशावली तथा उनका कुछ वृत्तान्त भी है. इस लेख से पाया जाता है, कि समरसिंह ने यहां के मठाधिपति भावशंकर की, जो बड़ा तपस्वी था, आज्ञा से इस मठ का जीर्णोद्धार करवाया, अचलेश्वर के मन्दिर पर सुवर्ण का दंड (ध्वजदंड) चढ़ाया और यहां पर रहनेवाले तपस्वियों के भोजन की व्यवस्था की थी. तीसरा लेख चौहान महाराव लुंभा का वि॰ सं॰ १३७७ (ई॰ स॰ १३२०) का मन्दिर के बाहर एक ताक़ में लगा हुआ है, जिसमें चौहानों की वंशावली तथा महाराव लुंभा ने आबू का प्रदेश तथा चन्द्रावती को विजय किया जिसका उल्लेख है. मन्दिर के पीछे की बावड़ी में महाराव तेजसिंह के समय का वि॰ सं॰ १३८७ (ई॰ स॰ १३२१) माघ सुदि ३ का लेख है. मन्दिर के सामने पीतल का बना हुआ विशाल नन्दि है, जिसकी चौकीपर वि॰ सं॰ १४६४ (ई॰ स॰ १४०७) चैत्र सुदि ८ का लेख है. नन्दि के पास ही प्रसिद्ध चारण कवि दुरसा आढा की बनवाई हुई उसीकी पीतल की मूर्ति है, जिसपर वि॰ सं॰ १६८६ (आषाढादि†) (ई॰ स॰

† आषाढादि=गुजरात की गणना के अनुसार आषाढ (राजपूताना के हिसाब से श्रावण) से प्रारंभ होने वाला वर्ष या संवत्.

इस लेख के वि॰ सं॰ १६८६ को आषाढादि मानने का कारण यह है, कि लेख में वि॰

१६३०) वैशाख सुदि ५ का लेख है. नंदी से कुछ दूर लोह का बना हुआ एक बहुत ही बड़ा त्रिशूल है, जिसपर वि० सं० १४६८ (ई० स० १४१२) फाल्गुन सुदि १५ का लेख है. यह त्रिशूल राणा लाखा, ठाकुर मांडण तथा कुंवर भादा ने घांणेराव गांव में बनवाकर अचलेश्वर को अर्पण किया था. लोह का ऐसा बड़ा त्रिशूल दूसरे किसी स्थान में देखने में नहीं आया.

अचलेश्वर के मन्दिर के अहाते में छोटे छोटे कई एक मन्दिर हैं, जिनमें विष्णु आदि अलग अलग देवताओं की मूर्तियां हैं. मंदाकिनी की तरफ़ के कोने पर महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) का बनवाया हुआ कुंभस्वामी का सुन्दर मन्दिर है. अचलेश्वर के मन्दिर के बाहर मंदाकिनी † नाम का बड़ा कुंड है, जिसकी लंबाई ९०० फीट और चौड़ाई २४० फीट के क़रीब है. इसके तटपर पत्थर की बनी हुई परमार राजा धारावर्ष की धनुष सहित सुन्दर मूर्ति ‡ है, जिसके आगे पूरे

सं० के साथ शक संवत् १५८२ लिखा है, जिससे स्पष्ट है, कि यह मूर्ति चैत्रादि वि० सं० १६८७ (आषाढादि १६८६) में बनी थी.

† चित्तौड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में महाराणा कुंभा का आबू पर कुंभस्वामी का मन्दिर तथा उसके पास कुंड बनवाना लिखा है. कुंभस्वामी के मन्दिर के पास यही कुंड (मंदाकिनी) है, जिससे सम्भव है, कि कुंभा ने इसका जीर्णोद्धार करवाया हो.

‡ यह मूर्ति कब बनी यह निश्चित नहीं है. इसके धनुष पर एक लेख वि० सं० १५३३ (ई० स० १४७७) फाल्गुन वदि ६ का है, परन्तु मूर्ति प्राचीन मालूम देती है, अतएव संभव है, कि

कद्के तीन भैंसे एक दूसरे के पास खड़े हुए हैं, जिनके शरीर के आर-पार एक एक छिद्र है, जिसका आशय यह है, कि धारावर्ष ऐसा पराक्रमी था, कि पास पास खड़े हुए तीन भैंसों को एक ही बाण से बींध डालता था, जैसा कि पाटनारायण के लेख में उसके विषय में लिखा मिलता है. इस मंदाकिनी के तट के निकट सिरोही के महाराव मानसिंह का मन्दिर है, जो एक परमार राजपूत के हाथ से आबू पर मारे गये और यहां पर दग्ध किये गये थे. यह शिवमन्दिर उनकी माता धार-बाई ने वि॰ सं॰ १६३४ (ई॰ स॰ १५७७) में बनवाया था. इसमें मानसिंह की मूर्ति पांच राणियों सहित शिव की आराधना करती हुई खड़ी है. ये पांचों राणियां उनके साथ सती हुई होंगी.

इस मन्दिर से थोड़ी दूर पर शांतिनाथ का जैनमन्दिर है, इसको जैन लोग गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल † का बनवाया हुआ बतलाते हैं. इसमें तीन मूर्तियां हैं, जिनमें से एक पर वि॰ सं॰ १३०२ (ई॰ स॰ १२४५) का लेख है.

अचलेश्वर के मन्दिर से थोड़ी दूर जाने पर अचलगढ़ के पहाड़

धनुषवाला हिस्सा, जो मूर्ति के साथ जुड़ा हुआ है पीछे से नया बनाया गया हो (पहिले का टूट जाने के कारण). यह मूर्ति क़रीब ५ फ़ीट ऊंची है और देलवाड़े के मन्दिरों में जो वस्तु-पाल आदि की मूर्तियां हैं उनसे मिलती हुई है. संभव है, कि यह उसी समय के आस पास की बनी हुई हो.

† तीर्थकल्प में कुमारपाल का आबू पर एक जैनमन्दिर बनवाना लिखा है.

के ऊपर चढ़ने का मार्ग है. इस पहाड़ पर गढ़ बना हुआ है, जिसको अचलगढ़ कहते हैं. गणेशपोल के पास से यहां की चढ़ाई शुरू होती है. मार्ग में लक्ष्मीनारायण का मन्दिर और उसके आगे फिर कुंथुनाथ का जैनमन्दिर आता है, जिसमें उक्त तीर्थंकर की पीतल की मूर्ति है, जो वि० सं० १५२७ (ई० स० १४७०) में बनी थी. यहां पर एक पुरानी धर्मशाला तथा महाजनों के थोड़े से घर भी हैं. यहां से फिर ऊपर चढ़ने पर पहाड़ के शिखर के निकट बड़ी धर्मशाला तथा पार्श्वनाथ, नेमिनाथ और आदिनाथ के मन्दिर आते हैं, जिनमें आदिनाथ का मन्दिर, जो चौमुख है, मुख्य और प्रसिद्ध है. यह दो मंज़िला बना है और इसके नीचे तथा ऊपर की मंज़िलों में चार चार पीतल की बनी हुई बड़ी बड़ी मूर्तियां हैं. यहां के लोग इस स्थान को 'नवंताजोध' कहते हैं. दूसरी मंज़िल की छत पर चढ़ने से सारे आबू तथा आबू की तलहटी के दूर दूर के गांवों का सुन्दर दृश्य नज़र आता है. इन मन्दिरों में पीतल की १४ मूर्तियां हैं, जिनका तोल १४४४ मन होना जैनों में माना जाता है. इनमें सब से पुरानी मूर्ति मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) में बनी थी.

यहां से कुछ ऊपर 'सावन भादवा' नामक दो जलाशय हैं, जिनमें साल भर तक जल रहता है और पर्वत के शिखर के पास अचलगढ़ नाम का टूटा हुआ किला है, जो मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण

(कुंभा) ने * वि० सं० १५०९ (ई० स० १४५२) में बनवाया था. यहां से कुछ नीचे की ओर पहाड़ को काटकर बनाई हुई दो मंज़िल-वाली गुफ़ा है, जिसके नीचे के हिस्से में दो तीन कमरे भी बने हुए हैं. लोग इस स्थान को पुराणप्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का निवा-सस्थान बतलाते हैं. यहां पहिले साधु भी रहते होंगे, क्योंकि उनकी दो धूनियां यहांपर हैं.

ओरिआ—अचलगढ़ से दो माइल उत्तर में ओरिआ गांव है, जहांपर कनखल नामक तीर्थस्थान है. यहां के शिवालय का, जिसको कोटेश्वर (कनखलेश्वर) कहते हैं, वि० सं० १२६५ (ई० स० १२०८) में दुर्वासाराशि के शिष्य केदारराशि नामक साधु ने जीर्णोद्धार करवाया था. उस समय आबू का राजा परमार धारावर्ष था, जो गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे) का सामंत था ऐसा यहां के लेख से, जो वि० सं० १२६५ (ई० स० १२०८) वैशाख सुदि १५ का है, पाया जाता है.

यहां पर महावीर स्वामी का जैनमन्दिर भी है, जिसमें मुख्य मूर्त्ति उक्त तीर्थंकर की है और उसकी एक ओर पार्श्वनाथ की और दूसरी ओर शांतिनाथ की मूर्त्ति है. ओरिआ में एक डाकबंगला भी है.

---

* चित्तोड़ के किले पर के महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के बनवाये हुए कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में अचलदुर्ग (अचलगढ़) बनवाना लिखा है, परन्तु लोगों का मानना यह है, कि यहां का किला परमारों ने बनाया था. संभव है, कि कुंभा ने परमारों के बनाये हुए किले का जीर्णोद्धार करवाया हो.

गुरुशिखर—ओरिआ से तीन माइल पर गुरुशिखर नामक आबू का सब से ऊंचा शिखर है, जिसपर दत्तात्रेय (गुरु दत्तात्रेय) के चरणचिन्ह बने हैं, जिनको यहां के लोग 'पगल्या' कहते हैं. उनके दर्शनार्थ बहुतसे यात्री प्रतिवर्ष जाते हैं. यहां पर एक बड़ा घंट लटक रहा है, जिसपर वि० सं० १४६८ (ई० स० १४११) का लेख है. इस ऊंचे स्थान पर से बहुत दूर दूर के स्थान नज़र आते हैं और देखनेवाले को अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है. यहां का रास्ता बहुत ही विकट और बड़ी चढ़ाईवाला है.

गौमुख (वशिष्ठ)—आबू के बाज़ार से अनुमान १½ माइल दक्षिण में जानेपर हनुमान का मंदिर आता है, जहां से क़रीब ७०० सीढ़ियां नीचे उतरने पर वशिष्ठ ऋषि का आश्रम आता है, जो बड़ा ही रमणीय स्थान है. यहांपर पत्थर के बने हुए गौ के मुख में से एक कुण्ड में सदा जल गिरता रहता है, इसी से इस स्थान को गौमुख कहते हैं. यहांपर वशिष्ठ का प्राचीन मंदिर है, जिसमें वशिष्ठ की मूर्ति है और उसकी एक तरफ़ रामचन्द्र की और दूसरी ओर लक्ष्मण की मूर्ति है. यहां पर वशिष्ठ की स्त्री अरुंधती की तथा पुराणप्रसिद्ध नन्दिनी नामक कामधेनु की बछड़े सहित मूर्ति भी है. मंदिर के सामने एक पीतल की खड़ी हुई मूर्ति है, जिसको कोई इन्द्र की और कोई परमार राजा धारावर्ष की बतलाते हैं. यहीं वशिष्ठ ऋषि का प्रसिद्ध अग्निकुण्ड है, जिसमें से परमार, पड़िहार, सोलंकी और

चौहान वंशों के मूलपुरुषों का उत्पन्न होना लोगों में माना जाता है. वशिष्ठ के मंदिर के पास वराह अवतार, शेषशायी नारायण, सूर्य, विष्णु, लक्ष्मी आदि की कई एक मूर्त्तियां रक्खी हुई हैं. मंदिर के द्वार के पास की दीवार में एक शिलालेख वि० सं० १३९४ (ई० स० १३३७) वैशाख सुदि १० का लगा हुआ है, जो चंद्रावती के चौहान राजा तेजसिंह के पुत्र कान्हडदेव के समय का है. इसीके नीचे महाराणा कुंभा का वि० सं० १५०६ (ई० स० १४४९) का लेख खुदा है.

गौतम—वशिष्ठ के मंदिर से अनुमान ३ माइल पश्चिम में जाने बाद कई सीढ़ियां उतरने पर गौतम ऋषि का आश्रम आता है. यहां पर गौतम का एक छोटासा मंदिर है, जिसमें विष्णु की मूर्ति के पास गौतम तथा उनकी स्त्री अहिल्या की मूर्तियां हैं. मंदिर के बाहर एक लेख लगा हुआ है. जिसमें लिखा है, कि महाराव उदयसिंह के राज्य समय वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५७) वैशाख सुदि ३ को बाई पार्वती तथा चंपाबाई ने यहां की सीढ़ियां बनवाई.

वास्थानजी—आबू के उत्तर की तरफ़ के ढलाव में शेरगांव की तरफ़ बहुत नीचे उतरने पर 'वास्थानजी' * नामक रमणीय स्थान आता है. जहांपर १८ फीट लंबी, १२ फीट चौड़ी और ६ फीट ऊंची

* आबू पर से वास्थानजी जाने का मार्ग बड़ा ही विकट है. यहां जाने के लिये सुगम मार्ग आबू के नीचे के ईसरां गांव के पास से है. वहां से थोड़ी चढ़ाई चढ़ने से इस स्थान में पहुंच जाते हैं. यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है और प्रतिवर्ष हज़ारों मनुष्य यहां पर दर्शनार्थ जाते हैं.

गुफ़ा के भीतर एक विष्णु की मूर्ति है. उसके निकट शिवलिंग, पार्वती तथा गणपति की मूर्तियां हैं. गुफ़ा के बाहर गणेश, भैरव, वराह अवतार, ब्रह्मा आदि की मूर्तियां हैं.

उपरोक्त स्थानों के सिवाय आबू पर्वत पर तथा उसके ढलावों में अनेक पवित्र धर्मस्थान हैं, जहांपर प्रतिवर्ष बहुत से लोग यात्रा के निमित्त जाते हैं.

आबू के सिवाय सिरोही राज्य में मीरपुर, गोळ, ऊथमण, पालड़ी, वागीण, जावाल, कालंद्री आदि अनेक ऐसे स्थल हैं, जहांपर प्राचीनकाल के बने हुए मंदिर तथा १२ वीं शताब्दी से लगाकर १४ वीं शताब्दी तक के शिलालेख मिलते हैं, परन्तु उन सब का विवरण इस छोटे से प्रकरण में लिखना उचित नहीं समझा गया.

प्रकरण दूसरा.
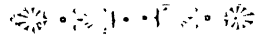
प्राचीन राजवंश.

सिरोही राज्य के वर्तमान राजा देवड़ा वंश के चौहान राजपूत हैं. देवड़ों का इस राज्य पर पूरा अधिकार वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) के आसपास हुआ, जिसके पहिले यहांपर किस किस का राज्य रहा यह जानना आवश्यक समझकर जिन जिन राजवंशों का यहां पर अधिकार रहना पाया जाता है उनका बहुत ही संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है:—

मौर्य (मोरी) वंश.

मौर्य (मोरी) वंश की उत्पत्ति के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है, कि नंदवंश के राजा महानन्द की मुरा नामक शूद्र (नाई) जाति की राणी से चंद्रगुप्त उत्पन्न हुआ, जो अपनी माता के नाम पर से मौर्य (मोरी) कहलाया, और उसका वंश मौर्य (मोरी) वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ, परन्तु इस कथा का उल्लेख पुराण, महावंश, कथासरित्सागर, मुद्राराक्षस नाटक आदि ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता, अतएव

संभव है, कि इस कथा की प्रसिद्धि पीछे से हुई हो. हम इस कथा पर विश्वास नहीं कर सकते. वेदधर्मावलम्बियों ने मौर्यों को शूद्र लिखा है, जिसका कारण यह अनुमान किया जाता है, कि मौर्यों ने ब्राह्मणों का विरोध कर बौद्धधर्म की सहायता की, जिससे ब्राह्मणों को बड़ी हानि पहुंची, इसीसे उन्होंने उनको शूद्र लिख दिया हो. प्राचीन बौद्ध ग्रन्थकारों के लेखों से पाया जाता है, कि मौर्यों का वंश वही वंश था जिसमें बुद्धदेव का जन्म हुआ था. इससे तो मौर्यों का शाक्यवंशी अर्थात् सूर्यवंशी होना पाया जाता है. बौद्ध ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है, कि चंद्रगुप्त का पिता हिमालय प्रदेश के एक छोटेसे राज्य का स्वामी था, जो (राज्य) मोर पक्षियों की अधिकता के कारण मौर्यराज्य कहलाता था. राजपूतों के आचरण के विरुद्ध मौर्यों में मोर पक्षी को खाने का रिवाज अधिकता के साथ होना पाया जाता है, जो उक्त लेखकी पुष्टि करता है. अशोक ने हिंसा करना निषेध किया उस समय भी वह मोर का मांस प्रति दिन खाता था, ऐसा पहाड़ी चटानों पर खुदवाई हुई उसकी पहिली आज्ञा से पाया जाता है. ऐसी दशा में मुरा की कथा विश्वासयोग्य मानी नहीं जा सकती.

ई० स० पूर्व ३२१ (वि० सं० पूर्व २६४) के आसपास मौर्य (मोरी) वंश का संस्थापक महाप्रतापी राजा चंद्रगुप्त नन्दवंश को नष्ट कर क्रमशः सिन्धु से गंगा के मुख तक और हिमालय से लगाकर विन्ध्याचल के दक्षिण तक के देश का अर्थात् सारे उत्तरी हिन्दु-

स्तान का स्वामी बना. सारा राजपूताना * भी इस के राज्य के अंतर्गत था. पाटलीपुत्र (पटना) नगर इसकी राजधानी थी. इस राजा का मुख्य सहायक चाणक्य नामक ब्राह्मण था. इसने पाटलीपुत्र का राज्य छीनने के बाद पंजाब आदि से यूनानियों † को निकालकर उन देशों को अपने आधीन किया. सिकंदर बादशाह के देहान्त के पीछे ई० स० से पूर्व ३०५ (वि० सं० से पूर्व २४८) के आस पास सीरिआ का यूनानी बादशाह सेल्युकस निकेटार हिन्दुस्तान की सीमापर चढ़ आया, परन्तु चंद्रगुप्त से लड़ने में हानि देख कर सिन्धु के उत्तर का हिन्दूकुश पर्वत के आस पास का सारा देश इस (चद्रगुप्त) को दे कर अपनी बेटी का विवाह इसके साथ कर दिया और उसके बदले में ५०० हाथी लेकर लौट गया. फिर उसने अपनी तरफ़ से मैगेस्थ-

---

* राजपूताने में जयपुर राज्य के वैराट नामक प्राचीन नगर में, काठियावाड़ में जूनागढ़ के पास एक चटान पर, बंबई से ३७ माइल उत्तर में सोपारा नामक स्थान में और माइसोर राज्य के उत्तरी विभाग के सिद्धापुर नामक स्थान में चंद्रगुप्त के पौत्र अशोक के लेख मिल चुके हैं, जो मौर्यराज्य की दक्षिणी सीमा प्रकट करते हैं. गिरनार पर्वत के पास के उक्त चटान पर ही खुदे हुए क्षत्रप वंश के राजा रुद्रदामा के लेख से, जो शक संवत ८० (वि० सं० २१५=ई० स० १५८) के आस पास का है, स्पष्ट पाया जाता है, कि जूनागढ़ के पास का सुदर्शन तालाब मौर्यवंशी राजा चंद्रगुप्त के राज्य समय में बना था.

† यूनान के प्रसिद्ध बादशाह सिकंदर ने ई० स० पूर्व ३२६ (वि० सं० पूर्व २६९) में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर पंजाब तथा सिन्ध का कितनाक हिस्सा अपने आधीन किया था, जिसपर उसने अपनी तरफ़ के यूनानी हाकिम (सत्रप) नियत किये थे.

नीज़ नामक पुरुष को अपना राजदूत बना कर चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा, जिसने हिन्दुस्तान का उस समय का बहुत कुछ वृत्तान्त लिखा था. परन्तु खेद की बात है, कि उसका लिखा हुआ वह अमूल्य ग्रन्थ, जिसका नाम 'इंडिका' था, नष्ट होगया. अब केवल उसमें से उद्धृत किये हुए फ़िकरे ही अन्य लेखकों की पुस्तकों में मिलते हैं. ई० स० पूर्व २९७ (वि० सं० पूर्व २४०) के आस पास चंद्रगुप्त का देहान्त हुआ और उसका पुत्र बिन्दुसार उसके राज्य का स्वामी बना.

बिन्दुसार के स्थान पर पुराणों में भद्रसार या वारिसार नाम भी लिखा मिलता है. सीरिआ के बादशाह ऐंटिऑकस सोटर ने अपने राजदूत डेमेकस को तथा मिसर के बादशाह टॉलमी फिलाडे-ल्फ़स ने अपने राजदूत डायोनिसिअस को इस राजा के दरबार में भेजा था. इसके कई पुत्र थे, जिनमें से अशोक ई० स० पूर्व २७२ (वि० सं० पूर्व २१५) के आस पास इसका उत्तराधिकारी हुआ.

मौर्यवंशी राजाओं में अशोक सबसे अधिक प्रतापी और क़रीब क़रीब सारे हिन्दुस्तान का राजा हुआ. इसने बौद्धधर्म ग्रहण कर उसकी उन्नति के लिये तन, मन और धन से पूर्ण यत्न किया. इसने अपनी धर्मसम्बन्धी आज्ञाएं प्रजा की जानकारी के निमित्त पहाड़ी चटानों पर तथा पत्थर के बड़े बड़े स्तंभों पर कई स्थानों में खुदवाई थीं, जिनमें से शहबाज़गिरी (पंजाब के ज़िले यूसफ़ज़ई में), मान्सेरा (सिंधु के पूर्व—पंजाब में), खालसी (देहरादून ज़िले में), देहली,

बैराट (जयपुर राज्य में), लोरिआ अरराज अथवा राधिआ और लोरिआ नवंदगढ़ अथवा मथिया (बंगाल के चंपारन ज़िले में), रामपूर्वा (तराई, ज़िला चंपारन में), बैराट (नेपाल की तहसील बहादुरगंज में), अलाहाबाद, सहस्राम (बंगाल के ज़िले शाहाबाद में), रूपनाथ (जबलपुर ज़िले में), सांची (भोपाल राज्य में), गिरनार (काठियावाड़ में), सोपारा, धौली (उड़ीसा के ज़िले कटक में), जौगड़ (मद्रास इहाते के गंजाम ज़िले में) तथा सिद्धापुर (माइसोर राज्य में) आदि स्थानों में मिलचुकी हैं. इन्हीं से इसके राज्य के विस्तार का अनुमान हो सकता है. इन आज्ञाओं से पाया जाता है, कि "अशोक ने अपने रसोड़े में जहां प्रतिदिन सहस्रों जानवर भोजनार्थ मारे जाते थे, जिनको जीवदान देकर केवल दो मोर और एक मृग प्रतिदिन मारने की आज्ञा दी, अपने राज्य भर में मनुष्यों तथा पशुओं के वास्ते औषधालय स्थापित किये; सड़कों पर जगह जगह कुएं खुदवाये, वृक्ष लगवाये और धर्मशालाएं बनवाईं; अपनी प्रजा में माता पिता की सेवा करने, मित्र, परिचित, सम्बन्धी, ब्राह्मण तथा श्रमणों (बौद्ध साधुओं) का सन्मान करने, जीवहिंसा, फ़ज़ूल खर्च तथा परनिन्दा को रोकने, दया, सत्यता, पवित्रता, आध्यात्मिक ज्ञान तथा धर्मोपदेश का प्रचार कराने का प्रबन्ध किया, तथा धर्ममहामात्र नामक अधिकारी नियत किये, जो प्रजा के हित तथा सुख का यत्न करते, शहर, गांव, राजमहल, ज़नाना आदि सब स्थानों में जाकर धर्मोपदेश क-

रते तथा धर्मसम्बन्धी सब कामों को देखते रहते थे. इसने कई एक दूत (प्रातिवेदिक) भी नियत किये थे, जो प्रजासम्बन्धी ख़बरें इसके पास पहुंचाया करते थे, जिनपर से प्रजा के लिये योग्य प्रबंध किया जाता था. पशुओं को मारकर यज्ञ करने की राज्यभर में मनाई करदी गई थी; चौपाये, पक्षी, जलचर एवं बच्चेवाली भेड़ी, बकरी और सुअरी को, तथा छः मास से कम अवस्थावाले उनके बच्चों को मारने की मनाई कीगई थी. अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा अन्य नियत दिनों पर सब प्रकार की जीवहिंसा करने और बैलों को आंकने तथा बैल, बकरे, मींढे और सुअरों को अख़्ता करने, जंगलों में आग लगाने तथा जीवहिंसा से संबंध रखनेवाले बहुधा सब कामों को रोक दिया था. यह राजा सर्वधर्मावलम्बियों का सन्मान करता, मनुष्य के लिये सृष्टि का उपकार करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है ऐसा मानकर उसी के लिये परिश्रम करता, क्रोध, निर्दयता, अभिमान तथा ईर्षा को पाप मानता, ब्राह्मणों तथा श्रमणों के दर्शनों को लाभदायक समझता, प्रजा की भलाई का सदा यत्न करता और दंड देने में दया करता था". यह राजा अपने दादा चंद्रगुप्त से भी अधिक प्रतापी हुआ. इसकी मैत्री दूर दूर के विदेशी राजाओं से भी थी, जिनमें से ऐंटिऑकस (दूसरा, सीरिआ का), टॉलमी (फ़िलाडेल्फ़स, मिसर का), ऐंटिगॉनस (मकदूनिआ का), मेगस (सीरीन का) और अलेग्ज़ैंडर (इपीरस का) के नाम इसकी पहाड़ी चटानों पर खुदी हुई धर्माज्ञाओं में मिलते हैं. कलिंग (उड़ीसा) देश

को विजय करने में लाखों मनुष्य इसके हाथ से मारे गये तब से इस-को जीवहिंसा की तरफ़ घृणा हुई हो, ऐसा अनुमान होता है. इसने जीवहिंसा रोकने तथा बौद्धधर्म का प्रचार कराने के निमित्त दूर दूर के देशों में उपदेशक भेजे थे. इसने बौद्धधर्म की बड़ी उन्नति की और असंख्य स्तूप बनवाये, जिनका उल्लेख चीनी यात्री फाहियान तथा हुएन्त्संग आदि ने अपनी यात्रा की पुस्तकों में स्थल स्थल पर किया है. इस राजा का नाम हिन्दुस्तान के अतिरिक्त सिंहलद्वीप (लंका), ब्रह्मदेश, स्याम, चीन, जापान, कोरिआ आदि जिन जिन देशों में बौद्ध-धर्म का प्रचार रहा वहां के लोगों में बड़ा ही प्रसिद्ध था. इसके कई पुत्र थे जिनमें से कुनाल इसके राज्य का स्वामी हुआ.

कुनाल के विषय में बौद्धग्रन्थकारों का यह लिखना है, कि "तिष्यरक्षिता नामक अशोक की एक राणी ने इसकी सुन्दरता पर मोहित होकर इससे दुष्ट वांछना पूर्ण करना चाहा, परन्तु इस धर्मात्मा ने अधर्म से बचना पसंद कर उसकी वांछना पूर्ण न की, जिसपर उसने नाराज़ हो एक दिन इसकी आंखें फोड़ डालने की आज्ञा लिखवा कर गुप्त रीति से उसपर अशोक की मुहर करदी. उस आज्ञा के पहुंचने पर इसकी आंखें नि-काल डाली गईं, परन्तु घोष नामक साधुने अपनी योगशक्ति से इस-को फिर सूझता कर दिया". इसपर से कितनेक विद्वानों का यह अनु-मान है, कि कुनाल अंधा होने के कारण राज्य करने न पाया हो और अशोक के पीछे कुनाल का पुत्र दशरथ राजा हुआ हो, परन्तु

वायुपुराण तथा ब्रह्मांडपुराण में अशोक के पीछे कुनाल* का राजा होना लिखा है, जो अधिक विश्वासयोग्य है. बौद्धलेखक इसकी फूटी हुई आंखों के दुरुस्त होने का कारण घोष नामक साधु की करामात बतलाते हैं, जिसपर से अनुमान होता है, कि तिष्यरक्षिता ने इसे अंधा करने की कोशिश की हो, परन्तु उसमें उसको सफलता प्राप्त न हुई हो.

कुनाल के पीछे उसका पुत्र दशरथ मौर्य महाराज्य का स्वामी बना, जिसके समय के लेख बिहार प्रदेश में गया के निकट नागार्जुनी नामकी गुफा में खुदे हुए हैं, जिनसे इसका बौद्ध होना पाया जाता है. जैन लोग ऐसा मानते हैं, कि 'कुनाल के पीछे उसका पुत्र संप्रति राजा हुआ, जिसने जैनधर्म का बहुत कुछ प्रचार किया और अनार्य देशों में भी अनेक विहार बनवाये'. वे उसकी राजधानी उज्जैन मानते हैं, जिससे अनुमान होता है, कि कुनाल के दो पुत्र हों, जिनमें से बड़ा दशरथ अपने पिता के राज्य का स्वामी हुआ हो और छोटे संप्रति को मालवा, गुजरात, राजपूताना आदि मौर्य राज्य के पश्चिमी इलाके जागीर में मिले हों. सिरोही राज्य के कई प्राचीन जैनमन्दिर राजा संप्रति के बनवाये हुए हैं और कई जैनमूर्तियां उसी की स्थापित की हुई हैं ऐसा यहां के जैनधर्मावलंबी मानते हैं और ऐसा ही राजपूताना

* विष्णुपुराण तथा भागवत में कुनाल के स्थानपर सुयशा नाम लिखा मिलता है, जो या तो कुनाल का दूसरा नाम हो वा उसका खिताब हो.

के अन्य विभागों के और काठियावाड़, गुजरात, मालवा आदि के कई प्राचीन जैनमन्दिरों तथा मूर्तियों के विषय में वहां के जैन प्रसिद्ध करते हैं, परन्तु वे मन्दिर और मूर्तियां इतनी प्राचीन नहीं हैं, कि जिनको ई० स० पूर्व की तीसरी शताब्दी की मानसकें, तो भी उनके उक्त कथन से यह माना जा सकता है, कि इन देशों में संप्रति का राज्य रहा हो और कितनेक जैनमन्दिर उसने अपने समय में बनावाये हों.

संप्रति के पीछे * का इधर के मौर्यों का कुछ भी हाल नहीं मिलता. उधर दशरथ से अनुमान ३२ वर्ष पीछे मौर्यों के मुख्य राज्य की भी समाप्ति होगई और अंतिम राजा बृहद्रथ को मारकर उसका सेनापति पुष्यमित्र उसके महाराज्य का स्वामी बन बैठा.
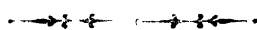
* संप्रति के पीछे के इधर के मौर्यराजाओं का कुछ भी शृंखलाबद्ध वृत्तान्त नहीं मिलता. चित्तौड़ के किले से कुछ दूर मानसरोवर नामक तालाब पर से एक शिलालेख वि० सं० ७७० (ई० स० ७१३) का कर्नल टाड साहब को मिला था, जिसमें माहेश्वर, भीम, भोज और मान इन चार मौर्य राजाओं के नाम होना टाड साहिब ने लिखा है. कोटा से करीब ३ माइल पर कंसवा (कणस्वा) के शिवमंदिर के बाहर एक शिलालेख मालव (विक्रम) संवत ७९५ (ई० सन ७३८) का लगा हुआ है, जिसमें मौर्यवंशी राजा धवल का नाम है. इन लेखों से अनुमान होता है, कि मौर्यों का अधिकार राजपूताने में ई० सन की ८ वीं शताब्दी तक किसी प्रकार बना रहा था.

क्षत्रप वंश.

'क्षत्रप' शब्द हिन्दुस्तान के क्षत्रपवंशी राजाओं के संस्कृत लेखों में तथा उसीके प्राकृतरूप 'खतप', 'छत्रप' और 'छत्रव' उनके प्राकृत लेखों में मिलते हैं. उनके शिलालेखों तथा सिक्कों के अतिरिक्त 'क्षत्रप' शब्द संस्कृत के साहित्य भर में कहीं नहीं मिलता. यह शब्द संस्कृत शैली का प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में यह शब्द संस्कृत नहीं, किन्तु ईरानी भाषा के 'सत्रप' शब्द पर से घडंत किया हुआ संस्कृत रूप है. ईरान की प्राचीन भाषा में ज़िले के हाकिम को 'सत्रप' कहते थे. पिछले संस्कृत के विद्वानोंने जैसे मुसल्मानों के राज्य समय 'सुल्तान' को 'सुरत्राण' और 'अमीर' को 'हंमीर' बनाकर संस्कृत साहित्य में स्थान दिया वैसे ही पहिले के विद्वानों ने 'सत्रप' को 'क्षत्रप' बना दिया.

क्षत्रपवंशी राजा शक जाति के थे और ईरान के उत्तरी प्रदेश से इधर आये हों ऐसा अनुमान होता है. इनका प्रबलराज्य मालवा, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ तथा राजपूताना के बड़े हिस्से पर रहा था. इनके थोड़े से शिलालेख और हज़ारों सिक्के मिले हैं. सिरोही राज्य में से इनके १२ चांदी के सिक्के, जो 'द्रम्म' कहलाते थे, हमको मिले हैं, जो प्राचीन काल में यहां चलते होंगे. इन राजाओं के वंशवृक्ष से इनमें एक ऐसी रीति का होना पाया जाता है, कि एक राजा के

जितने पुत्र हों वे सब अपने पिता के पीछे क्रमशः राज्य के स्वामी होते थे. उनके पीछे यदि ज्येष्ठ पुत्र का बेटा विद्यमान हो, तो वह राज्य का मालिक होने पाता था. इनमें राजपूतों की नांई सदा ज्येष्ठ पुत्र के वंश में ही राज्य नहीं रहता था. जो स्वतंत्र राजा होता वह 'महाक्षत्रप' पद धारण करता और जो ज़िले का हाक़िम या किसी राजा का सामंत होता वह खाली 'क्षत्रप' कहलाता था. इन्होंने 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' आदि हिन्दू राजाओं के ख़िताब कभी धारण नहीं किये. इनके सिक्कों में बहुधा सिर के पीछे शक संवत् का अंक पाया जाता है. सिक्कों तथा लेखों के आधार से इनका वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार मिलता है:—

भूमक—सिक्कों के आधार से इसको सबसे पहिला क्षत्रप मान सकते हैं.

नहपान—शक संवत् ४१—४२ (वि० सं० १७६—१७७=ई० स० ११९—२०) तक तो यह क्षत्रप ही था, परन्तु श० सं० ४६ (वि० सं० १८१=ई० स० १२४) में इसके नाम के साथ महाक्षत्रप ख़िताब मिलता है, जिससे अनुमान होता है, कि यह उस समय स्वतंत्र राजा बन गया हो. इसकी पुत्री दक्षमित्रा का विवाह शक जाति के उषवदात (ऋषभदत्त) नामक पुरुष से, जो दीनीक का पुत्र था, हुआ था. उषवदात नहपान का सेनापति होना चाहिये. उसने अपने श्वसुर के राज्य में दौरा करते समय कई तीर्थस्थानों में दान पुण्य

किये, बनास नदी पर घाट बनवाया तथा सुवर्ण दान किया और पुष्कर में स्नान कर ३००० गौ तथा एक गांव दान किया ऐसा नाशिक के पास के त्रिरश्मि पर्वत में खुदी हुई गुफाओं (पांडव गुफा) में से एक के लेख से पाया जाता है. नहपान ने दक्षिण के आंध्रभृत्य (सातवाहन) वंशियों से बहुतसा देश छीन लिया था. इसके आधीन राजपूताना व मालवे का बड़ा हिस्सा, गुजरात, काठियावाड़, खानदेश और कितनाक हिस्सा दक्षिण का होना चाहिये. इसके देहान्त के आसपास आंध्रभृत्य (सातवाहन) वंश के राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी ने इस (नहपान) के वंश को नष्टकर अपने वंश का गया हुआ राज्य फिर ले लिया, इतना ही नहीं, किन्तु नहपान के आधीन का कितनाक प्रदेश भी अपने राज्य में मिला लिया.

चष्टन–यह घ्समोतिक का पुत्र था. इसने क्षत्रपों का राज्य फिर जमाया. इसके आधीन मालवा, गुजरात, कच्छ और बहुतसा हिस्सा राजपूताने का था. इसने स्वतंत्र राजा बनकर महाक्षत्रप पद धारण किया था. इसका पुत्र जयदामा इसकी विद्यमानता में ही मरगया, जिससे इसका पौत्र रुद्रदामा इसका उत्तराधिकारी हुआ.

महाक्षत्रप रुद्रदामा इन क्षत्रप राजाओं में सबसे प्रतापी हुआ. इसके समय का एक शिलालेख जूनागढ़ (काठियावाड़ में) के पास के अशोक के लेखवाले चटान पर पीछे की ओर खुदा हुआ है, जिससे पाया जाता है, कि "इसके आधीन आकर*, अवन्ती, अनूप, आनर्त,

* आकर=मालवे का पूर्वी हिस्सा. अवंती=मालवे का पश्चिमी हिस्सा. आनर्त=काठियावाड़

सुराष्ट्र, श्वभ्र, मरु, कच्छ, सिंधु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त और निषाद आदि देश थे. इसने वीरता का अभिमान रखनेवाले यौद्धेय * लोगों को नष्ट किया और दक्षिण के राजा शातकर्णी † को दो बार जीता. परन्तु निकट का सम्बन्धी होने के कारण उसे प्राणदण्ड नहीं दिया. यह राजा विद्वान् और शस्त्रविद्या में भी निपुण था और अनेक स्वयंवरों में राजकन्याओं ने इसे वरमालाएं पहिनाई थीं." इसकी राजधानी उज्जैन नगरी थी और काठियावाड़ आदि इसके राज्य के अलग अलग ज़िलों पर इसकी तरफ़ के अधिकारी रहते थे. इसके ६ शिलालेख मिले हैं. इसके दो पुत्र दामजद और रुद्रसिंह थे.

महाक्षत्रप दामजद अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ. इसके दो पुत्र सत्यदामा और जीवदामा थे. इसके पीछे इसका छोटा भाई

का उत्तरी हिस्सा. सुराष्ट्र=सोरठ: काठियावाड़ का दक्षिणी हिस्सा. श्वभ्र=साबरमती नदी के तट का देश; उत्तरी गुजरात. मरु=मारवाड़. सिरोही का राज्य अर्थात् अर्बुद देश भी पहिले मरु देश के अन्तर्गत माना जाता था. सिंधु=सिंध. सौवीर=सिंध का उत्तरी हिस्सा. अपरान्त=पश्चिमी समुद्र तट का प्रदेश; माही नदी से गोवा के उत्तर तक का देश. निषाद=भील लोगों से बसा हुआ देश.

* यौद्धेय एक बड़ी ही वीर जाति थी. राजपूताने में यौद्धेयों के सिक्के मिलते हैं और इनका एक लेख बयाने के क़िले से मिला है. अब ये लोग पंजाब में पाये जाते हैं और 'जोहिया' कहलाते हैं.

† शातकर्णी आंध्रभृत्य वंश का कोई राजा हो. संभव है, कि वह गौतमीपुत्र यज्ञश्री-शातकर्णी हो.

रुद्रसिंह राजा हुआ, जिसके सिक्के शक सं० १०३ से ११८ (वि० सं० २३८ से २५३=ई० स० १८१ से १९६) तक के मिले हैं, जिनमें इसको महाक्षत्रप लिखा है. इसके तीन पुत्र रुद्रसेन, संघदामा और दामसेन थे.

रुद्रसिंह के पीछे उसके बड़े भाई दामजद का दूसरा पुत्र जीवदामा राजा हुआ, जिसके महाक्षत्रप खिताबवाले सिक्के शक संवत् ११९ और १२० (वि० सं० २५४ और २५५=ई० स० १९७ और १९८) के मिले हैं. इसका उत्तराधिकारी इसका चचेरा भाई रुद्रसेन, जो रुद्रसिंह का ज्येष्ठपुत्र था, हुआ.

रुद्रसेन के महाक्षत्रप पदवाले सिक्के शक सं० १२२ से १४४ (वि० सं० २५७ से २७९=ई० स० २०० से २२२) तक के मिले हैं. इसके दो पुत्र पृथ्वीसेन और दामजद थे, जो क्षत्रप ही रहे और स्वतंत्र राज्य करने नहीं पाये. इसके पीछे इसका छोटा भाई संघदामा इसके राज्य का स्वामी हुआ.

संघदामा के महाक्षत्रप खिताबवाले सिक्के शक सं० १४४ और १४५ (वि० सं० २७९ और २८०=ई० स० २२२ और २२३) के मिले हैं. इसका क्रमानुयायी इसका छोटा भाई दामसेन हुआ, जिसके महाक्षत्रप पदवाले सिक्के शक सं० १४५ से १५८ (वि० सं० २८० से २९३= ई० स० २२३ से २३६) तक के मिल चुके हैं. इसके ४ पुत्र वीरदामा, यशोदामा, विजयसेन और दामजद थे, जिनमें से दूसरा यशोदामा क्षत्रपों के महाराज्य का स्वामी बना,

यशोदामा के महाक्षत्रप खिताबवाले सिक्के शक सं० १६१ (वि० सं० २९६=ई० स० २३९) के ही मिले हैं. इसके पीछे इसका छोटा भाई विजयसेन राज्य पाया, जिसके सिक्कों से पाया जाता है, कि इसने शक सं० १६३ से १७२ (वि० सं० २९८ से ३०७=ई० स० २४१ से २५०) तक स्वतंत्रतापूर्वक राज्य किया था. इसका क्रमानुयायी इसका छोटा भाई दामजद (दूसरा) हुआ. इसके महाक्षत्रप पदवाले सिक्के श० सं० १७२ से १७६ (वि० सं० ३०७ से ३११=ई० स० २५० से २५४) तक के मिले हैं. इसके पीछे क्षत्रपों के उपरोक्त रिवाज के अनुसार इसके सबसे बड़े भाई वीरदामा का पुत्र रुद्रसेन (दूसरा) राजा हुआ.

रुद्रसेन (दूसरे) के सिक्के श० सं० १७८ से १९४ (वि० सं० ३१३ से ३२९=ई० स० २५६ से २७२) तक के मिले हैं. इसके दो पुत्र विश्वसिंह और भर्तृदामा थे, जिनमें से विश्वसिंह इसका क्रमानुयायी हुआ, जिसके पीछे भर्तृदामा राजा हुआ, जिसके महाक्षत्रप खिताब वाले सिक्के श० सं० २०३ से २१७ (वि० सं० ३३८ से ३५२=ई० स० २८१ से २९५) तक के मिले हैं. इसका पुत्र विश्वसेन था, जो क्षत्रप ही रहा.

चष्टन से लगाकर भर्तृदामा तक शृंखलाबद्ध वंशावली मिलती है. फिर आगे की नामावली इस तरह पाई जाती है:—

स्वामीजीवदामा, उसका पुत्र रुद्रसिंह और पौत्र यशोदामा ये तीनों क्षत्रप ही रहे. अबतक यह मालूम नहीं हुआ कि ये तीनों

किस राजा के आधीन रहे थे. फिर स्वामीरुद्रदामा के नाम के साथ महाक्षत्रप ख़िताब मिलता है, जिससे स्पष्ट है, कि स्वामीरुद्रदामा फिर स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करने पाया हो. यह किसका पुत्र था यह लिखा हुआ नहीं मिला. संभव है, कि यह स्वामीजीवदामा का पुत्र या वंशज हो. इसके पीछे इसका पुत्र स्वामीरुद्रसेन क्षत्रप महाराज्य का स्वामी हुआ, जिसके महाक्षत्रप पदवाले सिक्के श० सं० २७० से ३०० (वि० सं० ४०५ से ४३५=ई० स० ३४८ से ३७८) तक के मिले हैं. इसका उत्तराधिकारी इसका दोहिता स्वामीसिंहसेन हुआ, जिसका श० सं० ३०४ (वि० सं० ४३९=ई० स० ३८२) का सिक्का महाक्षत्रप ख़िताब सहित मिला है. इसका क्रमानुयायी इसका पुत्र स्वामीरुद्रसेन (दूसरा) हुआ. फिर स्वामीसत्यसिंह का महाक्षत्रप होना पाया जाता है, परन्तु इसका स्वामीरुद्रसेन (दूसरे) से क्या सम्बन्ध था यह मालूम नहीं होसका (शायद यह स्वामीसिंहसेन का भाई हो). स्वामीसत्यसिंह के बाद उसका पुत्र स्वामीरुद्रसिंह राजा हुआ, जिसके श० सं० ३१० (वि० सं० ४४५=ई० स० ३८८) के सिक्के मिल चुके हैं. गुप्तवंश के प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरे) ने, जिसका प्रसिद्ध ख़िताब विक्रमादित्य था, इसका सारा राज्य छीन कर क्षत्रपों के महाराज्य को उठा दिया.

ये क्षत्रपवंशी राजा बौद्ध तथा वैदिक दोनों मतों के अनुयायी हों ऐसा अनुमान होता है.

गुप्त वंश.

गुप्तवंशी राजा चंद्रवंशी क्षत्रिय थे ऐसा इनके पिछले लेखों से पाया जाता है. गुप्तवंशियों का प्रताप बहुत ही बढ़ा और एक समय ऐसा था, कि आसाम से द्वारिका तक तथा पंजाब से नर्मदा तक का सारा प्रदेश इनके आधीन था और नर्मदा के दक्षिण के देशों में भी इन्होंने विजय प्राप्त की थी. इन्होंने वि० संवत् ३७७ (ई० स० ३२०) से अपना संवत् चलाया, जो गुप्त संवत् के नाम से क़रीब ६०० वर्ष तक चलता रहा और गुप्तों का राज्य नष्ट होने बाद वही संवत् वल्लभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ. अशोक के समय से ही वैदिक-धर्म की अवनति और बौद्धधर्म की उन्नति होने लगी थी, परन्तु गुप्त-वंशियों ने वैदिकधर्म की पीछी जड़ जमा दी और इनके समय से बौद्ध-धर्म की अवनति होने लगी. चिरकाल से न होने वाला अश्वमेध यज्ञ भी इनके राज्य में फिर होने लगा. इनके कई शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्के मिले हैं, जिनसे इनका वृत्तान्त इस तरह मिलता हैः—

श्रीगुप्त या गुप्त—इसके नाम से इसका वंश ' गुप्तवंश ' नाम से प्रसिद्ध हुआ. इसका पुत्र घटोत्कच हुआ. इन दोनों का ख़िताब 'महाराज' मिलता है, जिससे अनुमान होता है, कि ये दोनों किसी बड़े राजा के सामन्त हों. घटोत्कच का पुत्र चंद्रगुप्त गुप्तवंश में पहिला प्रतापी राजा हुआ, जिसने वि० संवत् ३७७ (ई० स० ३२०) में अपने

राज्याभिषेक से एक नया संवत् चलाया, जो गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ (उक्त संवत् के लिये देखो प्राचीन लिपिमाला पृ० ३४ से ३६ तक). इसका विवाह लिच्छिवी वंशी किसी राजा की पुत्री कुमारदेवी से हुआ था, जिससे महाप्रतापी राजा समुद्रगुप्त का जन्म हुआ. इस (चन्द्रगुप्त) के सुवर्ण के सिक्के मिले हैं, जिनपर एक तरफ़ इसकी और इसकी राणी की मूर्त्तियां बनी हैं. इन सिक्कों से कितने एक विद्वान् यह अनुमान करते हैं, कि चंद्रगुप्त को उसके श्वसुर का राज्य मिला हो. इसका राज्य संपूर्ण बिहार, संयुक्तप्रान्तों के पूर्वी भाग और अवध के अधिकांश पर होना चाहिये. पुराणों में गुप्तवंशियों के आधीन गंगा-तट का प्रदेश, प्रयाग, अयोध्या तथा मगध का होना लिखा है, जो इस राजा के समय की राज्यस्थिति प्रकट करता है. इसकी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) नगर थी. इसके पीछे इसका पुत्र समुद्रगुप्त राजा हुआ.

समुद्रगुप्त गुप्त राजाओं में बड़ा ही प्रतापी हुआ. प्रयाग के किले के भीतर खड़े हुए अशोक के लेखवाले विशाल स्तंभ पर इस राजा का एक लेख खुदा हुआ है, जिससे पाया जाता है, कि "यह राजा स्वयं विद्वान् और कवि था और विद्वानों के साथ रहने में आनंद मानता था. इसने अपने ही बाहुबल से अच्युत और नागसेन राजाओं को पराजित किया. इसका शरीर अनेक शस्त्रों के घावों से सुशोभित था. इसने कोशल * के राजा महेन्द्र, महाका-

* कोशल या कोसल नाम के दो देश थे, उत्तर कोसल (अयोध्या) और दक्षिण कोशल.

न्तार * के व्याघ्रराज, केरल † के मंत्रराज, पिष्टपुर ‡ के महेन्द्र, कोट्टूर × के स्वामिदत्त, एरंडपल्ल + के दमन, कांची ÷ के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी ⁂ के हस्तिवर्मा, पालक्क ⁑ के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर और कुस्थलपुर के धनंजय आदि दक्षिणापथ ⁕ के

यहांपर कोशल शब्द का प्रयोग दक्षिण कोशलदेश के वास्ते हुआ है. दक्षिण कोशल देश मे मध्यप्रदेश का दक्षिण-पूर्वी हिस्सा अर्थात रायपुर और छत्तीसगढ के आसपास का प्रदेश होना चाहिये. दूसरे देशों की नांई इसकी सीमा भी समय समय पर घटती बढ़ती रही थी. राजा ययाति केसरी के समय उड़ीसा देश भी महाकोशल के राजा शिवगुप्त के राज्य के अंतर्गत था. इसकी प्राचीन राजधानी श्रीपुर (सिरपुर) रायपुर ज़िले में महानदी के तटपर थी.

* महाकांतार अर्थात बड़ा जंगल, इसमें दक्षिणकोशल से पश्चिम का मध्यप्रदेश का हिस्सा होना चाहिये.

† केरल—कावेरी नदी से उत्तर का पश्चिमीघाट और समुद्र के बीच का देश.

‡ पिष्टपुर—इस समय 'पिट्ठापुरम' नाम से प्रसिद्ध है और मद्रास इहाते के गोदावरी ज़िले में है.

× [illegible]र—शायद मद्रास इहाते के कोइंबाटूर ज़िले का कोट्टूर नाम का प्राचीन शहर हो.

+ एरंडपल्ल—शायद बम्बई इहाते के खान देश ज़िले का एरंडोल हो (?).

÷ कांची—मद्रास इहाते का प्रसिद्ध नगर कांजीवरम.

⁂ वेंगी—पूर्वी समुद्र तट पर गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच वेंगी राज्य था. इसके लिये देखो 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास' प्रथम भाग, पृष्ठ १३५.

⁑ पालक्क- शायद मलबार के दक्षिण का 'पालक्कडु' (पालघाट) नामक प्राचीन नगर हो.

⁕ दक्षिणापथ—नर्मदा नदी से दक्षिण का सारा देश.

सब राजाओं को कैद किया, परन्तु अनुग्रह के साथ उनको पीछा छोड़कर अपनी कीर्त्ति बढ़ाई. रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नंदी, बलवर्मा आदि आर्यावर्त्त÷ के अनेक राजाओं को नष्टकर अपना प्रभाव बढ़ाया. सब आटविक * (जंगल के स्वामी) राजाओं को अपना सेवक बनाया; समतट †, डवाक, कामरूप ‡, नैपाल, कर्तृपुर × आदि सीमान्त प्रदेश के राजाओं को तथा मालव, अर्जुनायन, यौद्धेय, माद्रक, अभीर, प्रार्जुन, सनकानिक, काक, खर्परिक आदि जातियों को अपने आधीन कर उनसे कर लिया. इसने राज्यच्युत राजवंशियों को फिर राजा बनाया. देवपुत्र शाही शहानुशाही +, शक, मुरुंड तथा सिंहल आदि सब द्वीप निवासी इसके पास उपस्थित होते और लड़कियां भेट करते थे. यह राजा दयालु था, सहस्रों गौ दान करता था और इसका समय कंगाल, दीन, अनाथ और दुखियों की सहायता में व्यतीत होता था. गांधर्वविद्या में यह बड़ा ही निपुण था और काव्य रचने में 'कविराज' कहलाता था."

÷ आर्यावर्त—विंध्याचल तथा हिमालय के बीच का देश.

* आटविक—जंगल वाले देश; विंध्याचल से उत्तर के जंगल वाले देश.

† समतट—गंगा और ब्रह्मपुत्रा की धाराओं के बीच का समुद्र से मिला हुआ प्रदेश, जिसमें जिला जेस्सोर तथा कलकत्ता आदि हैं.

‡ कामरूप—आसाम का कितनाक हिस्सा.

× कर्तृपुर—राज्य में गढ़वाल, कमाऊं और अलमोड़ा जिलों का समावेश हो सकता है.

+ देवपुत्र, शाही, शहानुशाही ये तीनों कुशन (तुर्क) वंशी कनिष्क आदि राजाओं के खिताब थे, अतएव ये कुशनवंशियों के सूचक हों.

दूसरे लेखों से पाया जाता है, कि " इसके अनेक पुत्र और पौत्र थे. चिरकाल से न होनेवाला अश्वमेध यज्ञ भी इसने किया था". इसके कई प्रकार के सोने के सिक्के मिले हैं, जिनसे इसके अनेक कामों का पता लगता है. इन सिक्कों में गुप्तों के पूर्व राज्य करनेवाले कुशन (तुर्क) वंशी राजाओं के सिक्कों का अनुकरण पाया जाता है. इसकी राणी दत्तदेवी से चन्द्रगुप्त (दूसरे) का जन्म हुआ, जो इसका उत्तराधिकारी हुआ.

चंद्रगुप्त (दूसरे) ने अनेक ख़िताब धारण किये थे, जिनमें विक्रमाङ्क, विक्रमादित्य, श्रीविक्रम, अजितविक्रम, प्रवरविक्रम और विक्रमाजित आदि मुख्य हैं. इसने बंगाल से लगाकर बिलोचिस्तान तक के देश विजय किये तथा गुजरात, काठियावाड़, मालवा, कच्छ, राजपूताना आदि देशों पर राज्य करनेवाले शक जाति के क्षत्रप राजाओं का राज्य छीनकर वि० सं० ४५० (ई० स० ३९३) के क़रीब भारतवर्ष में से शकों के राज्य की समाप्ति कर दी. इसने अपने पिता से भी अधिक देश अपने राज्य में मिलाये और अपने राज्य के पश्चिमी विभाग की राजधानी उज्जैन क़ाइम की. यह विद्वानों का आश्रयदाता था. कितने एक विद्वानों का यह भी अनुमान है, कि उज्जैन का प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य, जो शकारी नाम से प्रसिद्ध है यही होना चाहिये और उनका यह कथन निर्मूल नहीं है. यह राजा विष्णु का परमभक्त था. देहली की प्रसिद्ध लोह की लाट (कीली, जो देहली से ९ मील पर मेहरोली गांव में कुतुबमीनार के पास एक

प्राचीन मन्दिर के बीच खड़ी हुई है) इसी राजाने बनवाकर विष्णु-पद नामी पहाड़ी पर किसी विष्णुमन्दिर के आगे ध्वजस्तंभ के तौरपर खड़ी करवाई थी, जहां से तंवरों ने लाकर उसे देहली में खड़ी की. इसके सोने, चांदी तथा तांबे के कई प्रकार के सिक्के मिले हैं और इसके समय के तीन लेख भी मिले हैं, जो गुप्त संवत् ८२, ८८ और ९३ (वि० सं० ४५८, ४६४ और ४६९=ई० स० ४०१, ४०७ और ४१२) के हैं. इसके राजत्वकाल में चीनीयात्री फ़ाहियान हिन्दुस्तान में आया और उसने उत्तरी हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह इस राजा के समय की देशस्थिति प्रकट करता है, क्योंकि उस समय उक्त सारे प्रदेश का महाराजाधिराज यही था. इसकी राणी ध्रुवदेवी (ध्रुवस्वामिनी) से दो पुत्र कुमारगुप्त और गोविन्दगुप्त उत्पन्न हुए थे, जिनमें से कुमारगुप्त इसके पीछे राज्यसिंहासन पर बैठा.

कुमारगुप्त का प्रसिद्ध ख़िताब महेन्द्रादित्य था. इसके सोने, चांदी और तांबे के सिक्के मिलते हैं. मोर के चिन्हवाले इसके दो चांदी के सिक्के हमको सिरोही राज्य में भी मिले हैं, जो बहुत ही घिसे हुए हैं. ये सिक्के पहिले यहांपर चलते होंगे. इसके समय के पांच लेख मिले हैं, जिनमें से सब से पहिला गुप्त संवत् ९६ (वि० सं० ४७२= ई० स० ४१५) का और सबसे पिछला गुप्त सं० १२९ (वि० सं० ५०५=ई० स० ४४८) का है. इसके दो पुत्र स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त हुए. इस राजा के अन्तिम समय गुप्त राज्यपर पुष्यमित्र जाति के

लोगों ने हमला किया और संभव है, कि उस लड़ाई में यह मारा गया हो. इसके पीछे इसका बेटा स्कंदगुप्त राजा हुआ.

स्कंदगुप्त ने बड़ी वीरता के साथ तीन मास तक लड़कर पुष्यमित्रों के राजा को परास्त कर अपनी कुलश्री को, जो अपने पिता का देहान्त होने से विचलित हो रही थी, स्थिर की. फिर इसके राज्यपर हूणों ने आक्रमण किया, जिनको भी इसने परास्त किया. इसके समय के तीन लेख मिले हैं, जिनमें से सबसे पहिला गुप्त सं० १३६ (वि० सं० ५१२=ई० स० ४५५) का और सबसे पिछला गुप्त सं० १४६ (वि० सं० ५२२=ई० स० ४६५) का है. इसके सोने, चांदी व तांबे के सिक्के भी मिले हैं, जिनमें से कुछ सिक्कों पर ६० का अंक है, जो गुप्त सं० १६० प्रगट करता होगा अर्थात् शताब्दी के अंक छोड़ दिये होंगे. इसके देहान्त के आसपास फिर हूणों का हमला हुआ, जिसमें वे विजयी हुए. इसके बाद गुप्तों के महाराज्य के टुकड़े होगये और सामन्त लोग स्वतंत्र होने लगे. काठियावाड़ आदि प्रदेशों पर भट्टारक नामक सेनापति ने वल्लभीपुर के नवीन राज्य की नींव डाली. राजपूताने तथा मालवे से लगाकर गंगातट तक का गुप्त महाराज्य का पश्चिमी प्रदेश बुधगुप्त के आधीन रहा और पूर्वी हिस्से पर इस (स्कंदगुप्त) के भाई पुरगुप्त का राज्य हुआ.

स्कंदगुप्त के पीछे इधर बुधगुप्त राजा हुआ, जिसका स्कंदगुप्त के साथ क्या संबंध था, यह पाया नहीं गया. हूणजाति के राजा तो-

रमाण ने इसके राज्यपर हमला कर उसका कितनाक हिस्सा छीन लिया. इसके समय का एक शिलालेख गुप्त सं० १६५ (वि० सं० ५४१=ई० स० ४८४) का मिला है.

बुधगुप्त के बाद भानुगुप्त का लेख मिला है, जो गुप्त सं० १९१ (वि० सं० ५६७=ई० स० ५१०) का है. इसके समय मालवा, राजपूताना आदि पर हूणों का विशेषरूप से अधिकार होगया और इधर का गुप्तराज्य अस्त होगया. उधर (गुप्तराज्य के पूर्वी हिस्से पर) पुरगुप्त के पीछे नरसिंहगुप्त और उसके बाद कुमारगुप्त (दूसरा) राजा हुआ. फिर थानेश्वर के प्रतापी राजा हर्षवर्द्धन ने गुप्तराज्य को अपने राज्य में मिला लिया.
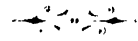
हूणवंश.

मध्य एशिया में रहनेवाली एक प्राचीन जाति का नाम हूण था. इस जाति के लोग बड़े ही प्रबल हुए और उन्होंने एशिया तथा यूरोप के कई देश विजय कर उनपर अपना अधिकार जमाया. चीनी ग्रन्थकार उनका नाम 'यून् यून्', 'येथिलेटो' या 'येथ'; ग्रीक अर्थात् यूनानी इतिहासलेखक 'उन्नोई' (हूण), 'लुकोई उन्नोई' (श्वेतहूण) या 'एफथूलाइट'; आर्मीनियन लेखक 'हंक' और संस्कृत ग्रन्थकार 'हूण', 'हून', 'श्वेतहूण' या 'सितहूण' लिखते हैं. संस्कृत

ग्रन्थकार उनकी गणना आचारभ्रष्ट लोगों अर्थात् म्लेच्छों में करते हैं, परन्तु उनका विवाहसम्बन्ध राजपूतों के साथ होने के उदाहरण प्राचीन शिलालेखादि से मिल आते हैं.

ई० सन् ४२० (वि० सं० ४७७) के आसपास मध्य एशिया में ऑक्सस नदी के निकट रहनेवाले हूणों ने ईरान के ससानियन वंशी बादशाहों से लड़ना शुरू किया और यज़्दज़ुर्द दूसरे (ई० स० ४३८–४५७) तथा फ़ीरोज़ (ई० स० ४५७–४८४) को परास्त कर उनका कितनाक देश अपने आधीन किया. फिर हिन्दुस्तान के सीमान्त प्रदेश अपने आधीन कर क्रमशः आगे बढ़ना शुरू किया. चीनी यात्री संगयू, जो ई० सन् ५२० (वि० सं० ५७७) के आसपास गांधार देश * में आया था, लिखता है, कि "यहां का राजा येथेलेटो (हूण) है. वह बड़ा लड़ाकू है और उसकी सेना में ७०० हाथी रहते हैं. हूण लोगों ने गांधार देश विजयकर लेलिह को अपना राजा बनाया था. वर्तमान राजा उससे तीसरा है." ई० सन् ५२० (वि० सं० ५७७) में गांधार देश का राजा मिहिरकुल था, अतएव लेलिह उसका दादा होना चाहिये.

कुमारगुप्त के अन्तिम समय या उसके देहान्त के बाद हूणों की चढ़ाई गुप्तों के महाराज्य पर हुई और उसके पुत्र स्कन्दगुप्त ने ई० सन् ४५४ (वि० सं० ५११) के पूर्व उन पर विजय पाई. हूणों का यह हमला लेलिह

* गांधार देश=पंजाब का पश्चिमी हिस्सा और अफ़ग़ानिस्तान का बहुतसा हिस्सा पहिले गांधार देश कहलाता था.

के समय होना चाहिये. स्कन्दगुप्त के देहान्त के बाद तोरमाण ने, जो लेलिह का पुत्र या उत्तराधिकारी होना चाहिये, भानुगुप्त को परास्त कर गुप्त संवत् १९१ (वि० संवत् ५६७=ई० सन् ५१०) में मालवा आदि देशों पर अपना अधिकार जमा लिया. तोरमाण हूणों में प्रतापी राजा हुआ. इसके आधीन गांधार, पंजाब, काश्मीर, मालवा, राजपूताना तथा संयुक्त प्रदेश का बड़ा हिस्सा होना चाहिये. मालवा विजय करने के थोड़े ही समय पीछे तोरमाण का देहान्त होगया और इसका पुत्र मिहिरकुल इसके राज्य का स्वामी बना. चीनी यात्री हुएन्त्संग के सफ़रनामे तथा कल्हणकृत राजतरंगिणी और कुछ शिलालेखों में इस (मिहिरकुल) का वृत्तान्त मिलता है, जिससे पाया जाता है, कि इसकी राजधानी शाकल नगर (पंजाब में) थी. यह बड़ा वीर राजा था और इसने सिन्ध आदि अनेक देश विजय किये थे. इसकी रुचि पहिले बौद्धधर्म पर थी, परन्तु पीछे से बौद्धों से नाराज़ होकर उनके उपदेशकों को सर्वत्र मारने तथा बौद्धधर्म को निर्मूल करने की इसने आज्ञा दी. इसने गांधार देश में बौद्धों के १६०० स्तूप तथा मठ तुड़वाये और कई लाख मनुष्यों को मरवा डाला. इसमें दया का लेश भी नहीं था. मालवा के राजा यशोधर्म और मगध के गुप्तवंशी राजा बालादित्य (नरसिंहगुप्त) ने इसको वि० संवत् ५८९ (ई० स० ५३२) के क़रीब पराजित किया. उस समय से मिहिरकुल के अधिकार में से मध्य हिन्दुस्तान के मालवा, राजपूताना

आदि देश निकल चुके थे, परन्तु काश्मीर, गांधार आदि की तरफ़ इसका अधिकार अधिक समय तक रहना संभव है. यशोधर्म से हारने बाद भी हूण लोग अपना अधिकार जमाने के लिये लड़ते रहे हों ऐसा पिछले राजाओं के साथ की उनकी लड़ाइयों से पाया जाता है. थानेश्वर के बैसवंशी राजा प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन और हर्ष-वर्धन हूणों से लड़े थे. इसी तरह हैहय (कलचुरी) वंशी राजा कर्ण, परमार वंशी राजा सिंधुराज और राठौड़ कक्कल (कर्कराज दू-सरा) आदि का भी हूणों से लड़ना उनके लेख आदि से पाया जाता है. अब हूणों का कोई राज्य नहीं रहा और यह कौम नष्टसी हो चुकी है.

सिरोही राज्य में रहनेवाली कुनबी (कळबी) जाति में एक बड़ा दल हूणों का है. ये लोग अपने नाम के साथ अबतक 'हूण' शब्द लगाते हैं.

हूणों ने ई० सन् की पांचवीं शताब्दी में ईरान का ख़ज़ाना लूटा और वहां की दौलत हिन्दुस्तान में ले आये, जिससे ईरान के ससानियन शैली के सिक्कों का (जो कल्दार रुपये के बराबर, किन्तु बहुत पतले होते थे और जिनकी एक तरफ़ राजा का चेहरा लेखसहित और दूसरी तरफ़ जलती हुई अग्नि का ऊंचा कुंड, जिसकी दोनों ओर एक एक पुरुष खड़ाहुआ होता था) हिन्दुस्तान में प्रवेश हुआ और हूणों ने भी उसीसे मिलती हुई शैली के अपने सिक्के यहांपर चलाये. हूणों

का राज्य नष्ट होने बाद भी गुजरात, मालवा, राजपूताना आदि देशों में ई० सन् की ११ वीं शताब्दी के आसपास तक उसी शैली के चांदी तथा तांबे के (बिना लेखके) सिक्के बनते और चलते रहे, परन्तु क्रमशः उनका आकार घटने के साथ उनकी कारीगरी में यहांतक भद्दापन आगया, कि उनपर के राजा के चेहरे का पहिचानना कठिन होगया, जिससे लोगों ने राजा के चेहरे को गधे का खुर ठहरा दिया और वे सिक्के 'गधिया' या 'गदिया' नामसे प्रसिद्ध होगये, परन्तु उनका गधे से कोई सम्बन्ध नहीं है. सिरोही राज्य में कई प्रकार के चांदी व तांबे के गधिये सिक्के मिलते हैं, जिनको यहां के लोग 'गादियां' कहते हैं.

बैस वंश.

बैसवंशी राजा हर्षवर्धन, जिसको श्रीहर्ष तथा शीलादित्य भी कहते थे, बड़ा प्रतापी हुआ और उसने नेपाल से लगाकर नर्मदा नदी तक का सारा देश अपने आधीन किया, जिससे सिरोही का राज्य भी उसी के राज्य के अंतर्गत होना निश्चित है. बैसवंशी राजाओं का कुछ प्राचीन इतिहास उनके ताम्रपत्र, बाणभट्ट रचित श्रीहर्षचरित और चीनी यात्री हुएन्त्संग के सफ़रनामे से नीचे लिखे अनुसार मिलता है:—

पुष्यभूति—यह श्रीकंठ प्रदेश (थानेश्वर) का राजा और परम शिवभक्त था. इसका पुत्र नरवर्द्धन हुआ, जिसकी राणी वज्रिणीदेवी से राज्यवर्द्धन उत्पन्न हुआ, जो सूर्य का परम उपासक था. इसकी राणी अप्सरादेवी से आदित्यवर्द्धन का जन्म हुआ था. यह भी सूर्य का भक्त था. इसकी राणी महासेनगुप्ता से प्रभाकरवर्द्धन पैदा हुआ था. आदित्यवर्द्धन तक के राजाओं के नामों के साथ केवल 'महाराज' खिताब मिलता है, अतएव संभव है, कि वे स्वतंत्र राजा नहीं, किन्तु दूसरों (गुप्तों) के सामन्त होंगे.

आदित्यवर्द्धन के पुत्र प्रभाकरवर्द्धन के खिताब ' परमभट्टारक ' और ' महाराजाधिराज ' मिलते हैं, जिनसे पाया जाता है, कि यह पहिले पहिल स्वतंत्र राजा हुआ हो. ताम्रपत्रों में इसको अनेक राजाओं को नमाने वाला तथा श्रीहर्षचरित में गांधार, सिन्ध, लाट, मालव तथा गूर्जरों पर विजय पानेवाला लिखा है. यह सूर्य का परमभक्त था और प्रतिदिन 'आदित्यहृदय' का पाठ किया करता था. इसकी राणी यशोमती से दो पुत्र राज्यवर्द्धन तथा हर्षवर्द्धन और एक पुत्री राज्यश्री उत्पन्न हुई थी. राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मोखरी वंशी राजा अवन्तिवर्म्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ था. मालवा के राजा ने ग्रहवर्मा को मारकर उसकी राणी राज्यश्री के पैरों में बेड़ियां डाल उसे कन्नौज के क़ैदख़ाने में रक्खी थी. इसी समय में प्रभाकरवर्द्धन का देहान्त हुआ. इसके पीछे इसका बड़ा

पुत्र राज्यवर्द्धन थानेश्वर के राज्यसिंहासन पर बैठा.

राज्यवर्द्धन अपने पिता के देहान्त समय उत्तर में हूणों से लड़ने को गया था, जहांपर उनको विजय कर घायल हुआ और उसी दशा में थानेश्वर पहुंचा. अपने पिता के असाधारण प्रेम को स्मरण कर इसने राज्यसिंहासन पर बैठना पसन्द नहीं किया, किन्तु भदन्त (बौद्ध भिक्षुक, साधु) होने का विचार कर अपने छोटे भाई हर्षवर्द्धन को राज्य देना चाहा, परन्तु उसने भी भदन्त होना पसन्द कर राज्य की उपाधि को स्वी न किया. ऐसी अवस्था में राज्यश्री के क़ैद होने की ख़बर मिलते ही इस (राज्यवर्द्धन) ने भदन्त होने का विचार छोड़कर १०००० सवारों सहित मालवा के राजा पर चढ़ाई कर दी और उसको परास्त कर उसके बहुतसे हाथी, घोड़े, रत्न, राणियों के ज़ेवर, छत्र, चामर, सिंहासन आदि राज्यचिन्ह तथा अन्तःपुर की बहुतसी सुन्दर स्त्रियों को छीना और मालवा के सब राजाओं को क़ैद किया, परन्तु गौड़ (बंगाल) देश के राजा नरेन्द्रगुप्त ने, जो अपने पड़ोस में ऐसे राजा का होना अपने राज्य के लिये हानिकारक समझता था, इस (राज्यवर्द्धन) को अपने महल में लेजाकर विश्वासघात से मारडाला. यह घटना वि० सं० ६६४ (ई० स० ६०७) में हुई. हर्षवर्द्धन के ताम्रपत्र में राज्यवर्द्धन का परम सौगत (बौद्ध) होना, देवगुप्त आदि अनेक राजाओं को जीतना तथा अपने वचन पर दृढ़ रहकर शत्रु के घर में प्राण देना लिखा है. (देवगुप्त शायद मालवे

का वहां राजा हो, जिसने ग्रहवर्मा को मारकर राज्यश्री के पैरों में बेड़ियां डाली थीं).

राज्यवर्द्धन का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई हर्षवर्द्धन हुआ, जिसको श्रीहर्ष तथा शीलादित्य भी कहते थे. इसने राज्यसिंहासन पर बैठते ही गौड़ के राजा को, जिसने अपने बड़े भाई को विश्वास-घात कर मारा था, नष्ट करने का संकल्प किया और अपने सेनापति सिंहनाद तथा स्कंदगुप्त की राय से सब ही राजाओं के नाम इस अभिप्राय के पत्र लिखवाये, कि 'या तो तुम मेरी आधीनता स्वीकार करलो या मुझसे लड़ने को तय्यार होजाओ'. फिर इसने दिग्विजय के लिये प्रस्थान कर पहिला मुक़ाम राजधानी से थोड़ी दूर सरस्वती के तट-पर किया, जहांपर प्राग्ज्योतिष* के राजा भास्करवर्मा (कुमार) के दूत हंसवेग ने उपस्थित होकर अपने स्वामी का भेजाहुआ छत्र भेटकर निवेदन किया, कि 'भास्करवर्मा आपसे मैत्री चाहता है.' इसने उसका निवेदन स्वीकार कर उसको अपने पास उपस्थित होने के लिये कहला भेजा. वहां से कई मंज़िल आगे चलने पर मंत्री भंडी भी आ मिला, जिसने मालवा के राजा के यहां की लूट नज़र कर निवेदन किया, कि 'राज्य-श्री कन्नौज के क़ैदख़ाने से भागकर विंध्याटवी में पहुंचगई है'. यह समाचार पाते ही इसने भंडी को तो गौड़ देश के राजा को दण्डदेने के लिये भेजा और आप विंध्याटवी की तरफ़ चला और अपनी बहिन को

* यह नगर बंगाल के राजशाही ज़िले में था.

लेकर यष्टिग्रह नामक स्थान में पहुंचा. अनुमान ३० वर्ष तक लगातार युद्ध कर इसने कश्मीर की पहाड़ियों से लगाकर आसाम और नेपाल से नर्मदा तक का सारा देश अपने आधीन कर बड़ा राज्य स्थापित किया. इसने दक्षिण को भी अपने आधीन करना चाहा था, परन्तु बादामी के सोलंकी राजा पुलकेशी (दूसरे) से हारजाने पर इसका वह इरादा पार न पड़ा. इसकी राजधानी थानेश्वर और कन्नौज दोनों थीं. चीनी यात्री हुएन्त्संग, जो इस प्रतापी राजा के साथ रहा था, लिखता है कि " हर्षवर्द्धन ने अपने भाई के शत्रुओं को दंड देने व आसपास के सब देशों को आधीन करने तक दाहिने हाथ से भोजन न करने का प्रण किया था. ५००० हाथी, २०००० सवार और ५०००० पैदल सेना के साथ विना रुके पूर्व से पश्चिम तक अपनी आधीनता स्वीकार न करनेवाले सब राजाओं को जीत ६ वर्ष में उसने हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तर के सारे देश) के पांचों प्रदेशों (पंजाब, सिन्ध, मध्यदेश, बंगाल और गुजरात आदि) को अपने आधीन किया. इस प्रकार अपना राज्य बढ़ने पर अपनी सेना को बढ़ाकर लड़ाई के हाथियों की संख्या ६०००० और सवारों की संख्या १००००० तक पहुंचादी. तीसवर्ष के बाद उसके शस्त्रों ने विश्राम पाया और उसने शान्तिपूर्वक राज्य किया. उस समय वह धर्म (बौद्धधर्म) प्रचार के कामों में निरन्तर लगा रहता था, अपने राज्यभर में जीवहिंसा तथा मांसभक्षण की मनाई करदी थी, जिसके प्रतिकूल चलनेवाले को प्राणदण्ड होता

था. उसने हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तरी प्रदेश) के तमाम रास्तों पर यात्रियों तथा आसपास के ग़रीबों के लिये पुण्यशालाएं बनवाई थीं, जहां पर खाने पीने के अतिरिक्त रोगियों को औषधि भी मिला करती थी. प्रति पांचवें वर्ष वह 'मोक्षमहापरिषद्' नामक सभा कर अपना ख़जाना दान में ख़ाली कर देता, धर्मगुरुओं में विवाद करवा कर उनके प्रमाणों की स्वयं परीक्षा करता, सदाचारियों का सन्मान करता, दुष्टों को दंड देता, बुद्धिमानों का उदय करता, सदाचारी धर्मवेत्ताओं से धर्म श्रवण करता और दुराचारियों को दूर ताड़ता था." ई० स० ६४४ (वि० सं० ७०१) के आसपास इसने प्रयाग में धर्ममहोत्सव किया, उस समय बड़े बड़े २० राजा इसके साथ थे. रणविजयी होने के अतिरिक्त यह राजा प्रसिद्ध विद्वान् भी था. इसके रचे हुए रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नाटक इसकी विद्वत्ता के उज्वल रत्न हैं. जैसा यह विद्वान् था वैसाही चित्रविद्या में भी निपुण था, क्योंकि बंसखेड़ा से मिले हुए इसके दानपत्र में इसने अपने हस्ताक्षर किये हैं वे इसकी चित्रनिपुणता की साक्षी दे रहे हैं. यह राजा विद्वानों का सन्मान करनेवाला था. प्रसिद्ध बाणभट्ट इसका आश्रित था, जिसने 'हर्षचरित' नामक गद्यकाव्य में इसका चरित्र लिख इसका नाम अमर कर दिया और प्रसिद्ध कादंबरी नामक अपूर्व पुस्तक का पूर्वार्द्ध रचा, जिसका उत्तरार्द्ध उस (बाणभट्ट) के पुत्र पुलिन्द (पुलिन) भट्ट ने अपने पिता के देहान्त के बाद लिखकर उस

पुस्तक को पूर्ण किया. बाणभट्ट को इसने बड़ी समृद्धि दी थी ऐसा वह स्वयं लिखता है. बाण और पुलिन्दभट्ट के अतिरिक्त दंडी (काव्यादर्श, दशकुमारचरित्र आदि का कर्ता), मयूर (सूर्यशतक का कर्ता) और दिवाकर (मातंग दिवाकर) भी इसी राजा के दर्बार के पंडित थे ऐसा राजशेखररचित सूक्तिमुक्तावलि नामक पुस्तक में लिखा मिलता है. जैन कवि मानतुंगाचार्य (भक्तामर का कर्ता) का भी उसी समय होना माना जाता है. वि० सं० ६६४ (ई० स० ६०७) में इसका राज्याभिषेक हुआ, उस समय से इसने अपने नाम का संवत् चलाया, जो 'हर्ष संवत्' नाम से प्रसिद्ध हुआ और क़रीब ३०० वर्ष तक चलने बाद अस्त हुआ. हुएन्त्संग के लेख से पाया जाता है, कि इस (श्रीहर्ष) के एक पुत्र भी था, जिसकी पुत्री का विवाह वल्लभीपुर (काठियावाड़ में) के राजा ध्रुवभट के साथ हुआ था, परन्तु इस के देहान्त के पूर्व ही इसके पुत्र का देहान्त होगया हो, ऐसा अनुमान होता है. यह पहिले शिवभक्त था, परन्तु बौद्धधर्म की तरफ़ आस्था अधिक होने के कारण पीछे से बौद्ध होगया हो, ऐसा पाया जाता है. इसने चीन के बादशाह के साथ मैत्री कर अपने एक ब्राह्मण राजदूत को उक्त बादशाह के पास भेजा था, ज़हां से वह ई० स० ६४३ (वि० सं० ७००) में लौटा था. उसीके साथ चीन के बादशाह ने भी अपना दूतदल इस (श्रीहर्ष) के दर्बार में भेजा था. ई० स० ६४७ (वि० सं० ७०४) में चीन के बादशाह ने दूसरी बार अपने दूतदल को, जिसका मुखिया

वंगहुएन्त्से था, इसके दर्बार में भेजा, परन्तु उसके मगध में पहुंचने से पूर्व ही ई० स० ६४८ (वि० सं० ७०५) में इस का देहान्त होगया और इसके सेनापति अर्जुन ने राज्यसिंहासन छीनकर चीनी दूतदल को लूटलिया और कई एक चीनी सिपाही मारे गये, जिससे उक्त दूत-दल का मुखिया (वंगहुएन्त्से) अपने साथियों समेत नेपाल में भाग गया. थोड़े ही दिनों बाद वह नेपाल तथा तिब्बत की सेना को साथ लेकर पीछा आया तो अर्जुन भाग गया, परन्तु पराजित होने के बाद क़ैद हुआ और वंगहुएन्त्से उसको चीन लेगया. इस प्रकार श्रीहर्ष के स्थापित किये हुए महाराज्य की शीघ्र ही समाप्ति होगई और उसके आधीन किये हुए सब राजा पुनः स्वतंत्र होगये.

हर्ष के पीछे का उक्त वंश का इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं मिलता. अवध में बैसवाड़े का इलाक़ा बैस राजपूतों का मुख्यस्थान है और उनमें तिलकचंदी बैस अपने को मुख्य मानते हैं.
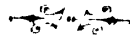
चावड़ा वंश.

इस वंश का नाम गुजरात के ऐतिहासिक पुस्तकों में, जो वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के पीछे की बनी हुई हैं, 'चापोत्कट' मिलता है, जिसका अर्थ प्रबल धनुर्धर है, परन्तु लाटदेश के सोलंकी पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के ताम्रपत्र में, जो कलचुरी संवत् ४९० (वि० सं० ७९६=ई० स० ७३९)

का है, 'चावोटक' नाम लिखा है, जो चापोत्कट से मिलता हुआ है. इन दोनों में 'चाप' शब्द मुख्य है. शक सं० ५५० (वि० सं० ६८५=ई० स० ६२८) में ब्रह्मगुप्त ने 'स्फुटब्रह्मसिद्धान्त' लिखा, उस समय चापवंशी व्याघ्रमुख नाम का राजा भीनमाल (मारवाड़ में) में राज्य करता था और वि० सं० ९७१ (ई० स० ९१४) में कन्नौज के पड़िहार राजा महीपाल का चापवंशी सामन्त धरणीवराह काठियावाड़ के एक विभाग का स्वामी था, ऐसा उसी के ताम्रपत्र से पाया जाता है. इसी पर से कितने एक विद्वानों का यह अनुमान है, कि चाप और चापोत्कट (चावड़ा) ये दोनों नाम एक ही वंश के हैं, जो अयुक्त नहीं हैं. प्रबंधचिंतामणि, सुकृतसंकीर्तन और विचारश्रेणी आदि पुस्तकों में चावड़ों का इतिहास मिलता है, परन्तु उनमें उनके वंश की उत्पत्ति का कुछभी परिचय नहीं दिया. टाड साहब उनका सीथियन अर्थात् शक होना अनुमान करते हैं. आधुनिक शोधकों में से कितनेक उनका गुर्जर (गूजर) होना मानते हैं और चावड़े अपने तईं परमारों की एक शाख होना बतलाते हैं. उपर्युक्त चापवंशी धरणीवराह के ताम्रपत्र में चावड़ावंश की उत्पत्ति के विषय में लिखा है, कि 'पृथ्वी ने शंकर से प्रणाम कर निवेदन किया, कि हे प्रभो ! आप जब ध्यान में मग्न होते हैं, उस समय असुर मुझको दुःख देते हैं, जो मुझसे सहन नहीं हो सकता. इसपर शंकर ने अपने चाप (धनुष) से पृथ्वी की रक्षा करने योग्य एक पुरुष उत्पन्न किया, जो 'चाप' कहलाया और उसका वंश उसी नाम से प्रसिद्ध हुआ.

इस कथा पर से हम यही अनुमान कर सकते हैं, कि चावड़ों के मूल पुरुष का नाम चाप (चांपा) हो और उसीके नाम पर से समय पाकर उसके वंश का नाम चावड़ा प्रसिद्ध हुआ हो.

भीनमाल के चावड़ों का अधिकार सिरोही राज्य पर रहा था. वसंतगढ़ से एक शिलालेख वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) का मिला है, जो वर्मलात राजा के समय का है. उसका सामंत राज्जिल*, जो वज्रभट (सत्याश्रय) का पुत्र था, अर्बुद देश का स्वामी था, ऐसा उक्त लेख से पाया जाता है. वर्मलात राजा कहां का और किस वंश का था इस विषय में उक्त लेख में कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु प्रसिद्ध माघकवि, जो भीनमाल का रहने वाला था, अपने रचे हुए शिशुपालवध (माघ) काव्य में लिखता है, कि उसका दादा सुप्रभदेव राजा वर्मलात का मुख्य मन्त्री (सर्वाधिकारी) था. इससे पाया जाता है, कि वर्मलात भीनमाल का राजा हो. वहीं के रहनेवाले ब्रह्मगुप्त नामक ज्योतिषी ने, जो जिष्णु का पुत्र था, श० सं० ५५० (वि० सं० ६८५=ई० स० ६२८) में स्फुटब्रह्मसिद्धांत नामक ज्योतिष का ग्रन्थ रचा, जिसमें वह लिखता है, कि उस समय वहां का राजा चाप (चावड़ा) वंशी व्याघ्रमुख था. इस वास्ते राजा वर्मलात भी जो उक्त पुस्तक के लिखेजाने से केवल तीन वर्ष पूर्व वहां का राजा था,

* राज्जिल किस वंश का था इस बारे में उस लेख में कुछ भी नहीं लिखा. उसका परमार या चावड़ा (जो परमारों की शाखा में अपना होना प्रकट करते हैं) होना संभव है.

उसी (चावड़ा) वंश का हो और व्याघ्रमुख उसका उत्तराधिकारी हो. चीनी यात्री हुएन्त्संग ने भिनमाल को गुर्जर देश की राजधानी होना लिखा है. व्याघ्रमुख के पीछे का भीनमाल के चावड़ों का कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता.

वि० सं० ८२१ (ई० स० ७६४) में चावड़ा राजा वनराज ने अणहिलपुर (पाटन) नामक शहर बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया, जहां पर वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६०) तक चावड़ों का राज्य रहा, जिसका शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है, परन्तु वहां के चावड़ों का सिरोही राज्य से कुछ भी संबंध नहीं रहा, जिससे उनका वृत्तान्त यहां पर लिखा नहीं गया.

गुहिल वंश.

गुजरात के वडनगर (आनन्दपुर) नामक नगर से आये हुए गुहिल वा गुहदत्त नामक पुरुष के वंशज उसके नाम से गुहिलोत कहलाये और उसका वंश गुहिल वंश या गुहिलोत वंश नाम से प्रसिद्ध हुआ. प्रथम इन गुहिलोतों का अधिकार मेवाड़ के पश्चिमी पहाड़ी इलाके पर था, जो सिरोही राज्य से मिला हुआ है. फिर इनका राज्य चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले पर हुआ. कुछ समय तक इनका अधिकार सिरोही राज्य के एक हिस्से पर भी रहना पाया जाता है.

'वीरविनोद', 'इतिहास राजस्थान' आदि पुस्तकों में इस वंश की हंमीर के पूर्व की जो वंशावली छपी है वह अपूर्ण और अशुद्ध है, इस वास्ते शिलालेखादि से इनकी शुद्ध वंशावली नीचे लिखी जाती है:—

इस वंशका संस्थापक गुहिल या गुहदत्त हुआ, जिसके पीछे भोज, महेन्द्र, नाग और शीलादित्य (शील) क्रमशः राजा हुए. इस शीलादित्य के समय का एक शिलालेख वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) का मेवाड़ के भोमट इलाके के सामोली गांव से, जो सिरोही राज्य की पूर्वी सीमा के निकट है, मिला है. इस लेख से अनुमान होता है, कि वर्तमान सिरोही राज्य का कुछ पूर्वी हिस्सा मेवाड़ के गुहिलोतों के आधीन हो और बाक़ी का हिस्सा आबू के राजाओं के. यह लेख मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के लिये बड़ा ही उपयोगी है, क्योंकि मेवाड़ के राजाओं के आदिस्थान के विषय में, कर्नल टॉड साहब ने तथा उनके लेख के आधार पर दूसरों ने जो कुछ लिखा है उसमें इस लेख से बहुत कुछ परिवर्तन होता है. प्राचीनकाल में काठियावाड़ के वल्लभीपुर (वळा) में शीलादित्य नाम के ६ राजा हुए, जिनमें से एक का नाम जैन लेखकों को मालूम था और मेवाड़ में भी उक्त नामका यह राजा हुआ, जिसकी ख्याति बराबर चली आती थी. इसपर से जैन लेखकों ने मेवाड़ के इस शीलादित्य और वल्लभी के अंतिम राजा शीलादित्य का एक होना मानकर यह कथा घड़ंत करली, कि "वल्लभी के अंतिम राजा शीलादित्य पर म्लेच्छों ने हमला किया, जिसमें वह मारा गया

और उसका राज्य उन्होंने छीन लिया. जब उसकी सगर्भा राणी पुष्पावती को, जो अंबाभवानी की यात्रा को गई थी, यह ख़बर पहुंची तब वह कुछ समय तक एक ब्राह्मण के यहां रही, जहां पर गुहादित्य (गुहदत्त) नामक पुत्र का जन्म हुआ. फिर वह उस लड़के को ब्राह्मणों के सुपुर्द कर सती होगई. गुहादित्य ने युवा होने पर अपने बाहुबल से ईडर का राज्य भीलों से लिया, फिर मेवाड़ पर उसका और उसके वंशजों का अधिकार हुआ". इसी पर विश्वास कर टॉड साहब ने मेवाड़ के राजाओं को वल्लभीपुर के राजाओं का वंशज मान लिया, परन्तु इस कथा में कुछ भी सत्यता नहीं है, क्योंकि वल्लभी के अंतिम शीलादित्य का एक ताम्रपत्र वल्लभी (गुप्त) संवत् ४४७ (वि० सं० ८२३= ई० स० ७६६) का मिल चुका है और मुसल्मानों ने वल्लभीपुर का नाश वि० सं० ८२६ (ई० स० ७६९) के आसपास किया, जिससे अनुमान सवासौ वर्ष पूर्व गुहिल का वंशज शीलादित्य मेवाड़ में राज्य कर रहा था. मेवाड़ के राजाओं के शिलालेख, ताम्रपत्र और ऐतिहासिक संस्कृत पुस्तकों में उनका वल्लभीपुर से आना कहीं नहीं, किन्तु आनन्दपुर (वड़नगर) से आना कई जगह लिखा है. शीलादित्य के बाद अपराजित * महेन्द्र (दूसरा), कालभोज (जो मेवाड़ में बापा †

* इसके समय का एक शिलालेख वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) का मिला है.

† यह वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में वानप्रस्थ हुआ ऐसा 'एकलिंग माहात्म्य' नामक दो भिन्न भिन्न पुस्तकों में लिखा है. ऐसी प्रसिद्धि है, कि चित्तौड़ का किला इसने लिया था.

रावल नामसे प्रसिद्ध है), खुम्माण, मत्तट, भर्तृभट, सिंह, खुम्माण (दूसरा), महायक, खुम्माण (तीसरा), भर्तृभट (दूसरा) ‡, अल्लट×, नरवाहन +, शालिवाहन, शक्तिकुमार÷, अंबाप्रसाद, शुचिवर्मा, नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज, वैरट, हंसपाल, वैरिसिंह, विजयसिंह*, अरिसिंह, चौडसिंह, विक्रमसिंह और रणसिंह, जिसको करणसिंह भी कहते थे, क्रमशः राजा हुए. इनका संबंध सिरोही राज्य से रहा हो, ऐसा पाया नहीं जाता. रणसिंह (करणसिंह) से दो शाखें फटीं, जिनमें बड़ी शाखा के राजा चित्तौड़ के स्वामी रहे और रावल कहलाते रहे. छोटी शाखा के संस्थापक राहप को सीसोदा गांव जागीर में मिला और वह तथा उसके वंशज राणा कहलाये. (राणा कहलाने के कारण के लिये देखो

‡ इसकी राणी महालक्ष्मी राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश की थी, जिससे अल्लट का जन्म हुआ था.

× इसका एक शिलालेख वि० सं० १०१० (ई० स० ९५३) का मिला है. इसकी राणी हरियादेवी हूणवंश के राजा की पुत्री थी.

+ इसके समय का एक शिलालेख वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) का मिला है. इसकी राणी चौहान जेजय की पुत्री थी.

÷ इसके समय का एक शिलालेख वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) का मिला है.

* इसका विवाह मालवा के प्रसिद्ध परमार राजा उदयादित्य की पुत्री श्यामलदेवी से हुआ, जिससे आल्हणदेवी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका विवाह चेदीदेश के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा गयकर्णदेव से हुआ था. इस (विजयसिंह) का एक ताम्रपत्र वि० सं० ११६४ (? ई० स० ११०७) का मिला है.

बांकीपुर के खड्गविलास प्रेस में छपे हुए हिन्दी टॉड राजस्थान के प्रकरण ७ वें पर हमारी टिप्पणि नं० १४६, पृष्ठ ४४१).

रणसिंह के पीछे क्षेमसिंह और उसके बाद सामंतसिंह मेवाड़ का राजा हुआ. इसने आबू के राज्य पर अपना अधिकार जमाने का यत्न किया हो, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि आबू पर के वस्तुपाल के मंदिर की प्रशस्ति में, जो वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) की है, परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रल्हादनदेव के विषय में लिखा है, कि वह सामंतसिंह से लड़ा था. इसके पीछे कुमारसिंह, मथनसिंह, पद्मसिंह और जैत्रसिंह क्रमशः राजा हुए. जैत्रसिंह प्रतापी राजा हुआ. इसने नाडौल पर चढ़ाई कर उसको बर्बाद किया और यह मुसल्मानों से भी लड़ा था. पाटनारायण के उपरोक्त लेख में, जो वि० सं० १३४४ (ई० स० १२८७) का है, लिखा है, कि परमार राजा प्रतापसिंह ने युद्ध में जैत्रकर्ण को जीतकर चंद्रावती नगरी का उद्धार किया, जो दूसरे वंश के अधिकार में चली गई थी. उक्त लेख का जैत्रकर्ण मेवाड़ का जैत्रसिंह होना संभव है, जिससे लड़कर प्रतापसिंह ने चंद्रावती पर पीछा अपना अधिकार जमाया हो.

जैत्रसिंह के पीछे तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह मेवाड़ के राजा हुए. रत्नसिंह के समय देहली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर हमला कर वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में उसे लेलिया, 'इस लड़ाई में रावल रत्नसिंह मारा गया और चित्तौड़ पर

मुसल्मानों का अधिकार होगया, जिससे उस (रत्नसिंह) के वंशजों ने डुंगरपुर का राज्य स्थापित किया और वे वहीं रहे तथा अबतक रावल कहलाते हैं. अलाउद्दीन के साथ की उक्त लड़ाई में सीसोद का राणा लक्ष्मणसिंह भी अपने सात पुत्रों सहित मारा गया. उसके पौत्र हंमीर ने, जो अरिसिंह का पुत्र था, चित्तौड़ का क़िला लेकर वहां पर फिर अपने वंश का राज्य स्थापित किया. तब से राणा शाखावाले मेवाड़ के स्वामी हुए.

हंमीर के पीछे क्षेत्रसिंह (खेता), लक्षसिंह (लाखा), मोकल और कुंभकर्ण (कुंभा) मेवाड़ के महाराणा हुए. महाराणा कुंभा बड़ा ही प्रतापी और विद्वान् राजा हुआ. मेवाड़ के गौरव को बढ़ाने वाला यही हुआ. इसकी समानता करनेवाला दूसरा कोई राजा मेवाड़ में नहीं हुआ. इसने राजपूताना, मालवा, गुजरात आदि पर दूर दूर तक विजय प्राप्तकर मेवाड़ को एक प्रबल राज्य बनादिया. इसने सिरोही राज्य के आबू तथा वसंतगढ़ के क़िले और कितनाक इलाक़ा भी छीन लिया. वि० सं० १५०९ (ई० स० १४५२) में इसने आबू पर अचलगढ़ का क़िला बनवाया तथा अचलेश्वर के मन्दिर के निकट कुंभस्वामी का मन्दिर और उसके पास एक तालाब बनवाया, तथा आबू पर जानेवाले यात्रियों पर जो कर लगता था वह छोड़ दिया. वसंतगढ़ का क़िला भी इसीका बनवाया हुआ माना जाता है. इसका एक ताम्रपत्र वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) का सिरोही राज्य में मिला है, जिसमें अजाहरी परगने के चुरड़ी (सवरली) गांव में

भूमी देने का लेख है, जिससे पाया जाता है, कि महाराणा कुंभा ने उस संवत् से पहिले सिरोही के इन स्थानों को अपने आधीन कर लिया था. वि० सं० १५१४ (ई० स० १४५७) में गुजरात के सुल्तान कुतबुद्दीन तथा मालवा (मांडू) के सुल्तान महमूद ने मिलकर महाराणा कुंभा पर चढ़ाई की, उस समय महाराव लाखा ने आबू के क़िले पर पीछा अपना अधिकार जमा लिया. वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में महाराणा कुंभा को मारकर उसका ज्येष्ठपुत्र उदयसिंह मेवाड़ का स्वामी बन बैठा, परन्तु वहां के सर्दारों ने इस पितृघाती को गद्दी से उतारकर महाराणा कुंभा के दूसरे पुत्र रायमल को राजा बनाना चाहा, जिस पर उदयसिंह ने अपना पक्ष दृढ़ करने के लिये दूसरे राजाओं के जो जो इलाक़े महाराणा कुंभा ने अपने राज्य में मिला लिये थे, उनको छोड़कर वहां के राजाओं को अपने सहायक बनाने का यत्न किया, जिससे सिरोही का जो हिस्सा मेवाड़ के आधीन होगया था वह पीछा महाराव लाखा के अधिकार में आगया और इस राज्य पर से मेवाड़ का अधिकार सदा के लिये उठ गया.

फिर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने देहली के बादशाह औरंगज़ेब के दबाव से महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय की शर्त के मुवाफ़िक १००० सवार बादशाही सेवामें भेजना स्वीकार किया, जिनकी तनख्वाह में सिरोही राज्य लेने का उद्योग किया और तारीख़ ५ जिल्हिज़ सन् ४७ जुलूस (हिज़री सन् १११४=वि० सं०

१७६० वैशाख शुक्ला ७=ई० स० १७०३ ता० २३ एप्रिल) को बादशाह की तरफ़ से यह राज्य उक्त महाराणा के नाम लिखा देने का अमीरुल् उमरा शायस्ताखां ने उद्योग किया, परन्तु इस राज्य पर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का अधिकार होने नहीं पाया. सिरोही राज्य को अपने राज्य में मिलाने का मेवाड़वालों का यह अंतिम यत्न था.
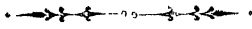
पड़िहार वंश.

पड़िहार या प्रतिहार लोग इस समय अपने को अग्निवंशी प्रकट करते हैं, परन्तु उनके प्राचीन शिलालेखों में उनका कहीं अग्निवंशी होना लिखा नहीं मिलता. वि० सं० ९०० के आसपास के ग्वालियर के क़िले से मिलेहुए पड़िहार राजा भोजदेव के समय के शिलालेख में पड़िहारों का प्रसिद्ध सूर्यवंशी रामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मण के वंश में होना लिखा है; ओसियां (मारवाड़ में) से मिलेहुए एक शिलालेख में भी ऐसा ही लिखा मिलता है और कन्नौज के प्रतापी पड़िहार राजा महेन्द्रपाल का गुरु प्रसिद्ध कवि राजशेखर, जो विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी में हुआ, पड़िहारों को रघुवंशी लिखता है. जोधपुर राज्य से मिलेहुए वि० सं० की नवीं तथा दसवीं शताब्दी के दो अन्य शिलालेखों में पड़िहारों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है, कि 'विप्र हरिश्चंद्र के दो स्त्रियां थीं, जिनमें से एक विप्रवर्ण की और दूसरी भद्रा नाम की

क्षत्रियवर्ण की थी, उनसे जो पुत्र हुए वे प्रतिहार कहलाये. इस प्रकार पड़िहारों की उत्पत्ति के विषय के प्राचीन लिखित प्रमाण मिलते हैं, परन्तु इनका अग्निवंशी होना सिवाय पृथ्वीराज रासे के कहीं लिखा नहीं मिलता. पड़िहारों का राज्य प्रथम मारवाड़ में था, जहांसे इन्होंने अपने बाहुबल से कन्नौज का राज्य छीनकर ये एक बड़े ही प्रबल राज्य के स्वामी हुए. जब इनका अधिकार कन्नौज पर हुआ उस समय इनका राज्य कन्नौज से १६० माइल उत्तर-पूर्व श्रावस्ती नगरी से लगाकर काठियावाड़ के दक्षिणी हिस्से तक और कुरुक्षेत्र की पश्चिम से लगाकर बनारस से पूर्वतक के प्रदेश पर रहा, उस समय सिरोही राज्य भी इनके महाराज्य के अंतर्गत था. प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र आदि से इनका इतिहास नीचे लिखे अनुसार मिलता है:—

हरिश्चंद्र—इसकी क्षत्रियवंश की राणी भद्रा से चार पुत्र भोगभट, कक्क, रज्जिल और दद्द हुए, जिन्होंने अपने बाहुबल से मांडव्यपुर (मंडोर) का क़िला लिया. फिर रज्जिल का पुत्र नरभट राजा हुआ, जो अपने पराक्रम के कारण 'पेल्लापेल्लि' कहलाया. इसके पीछे मारवाड़ के इन पड़िहारों की दो शाखें हुई हों, ऐसा अनुमान होता है. इसके बड़े पुत्र का, जिसका नाम मालूम नहीं हुआ, राज्य मंडोर पर रहा और छोटे नागभट नें अपना राज्य मेडंतक (मेड़ते) पर जमाया. इस नागभट को नाहड भी कहते थे. इस छोटी शाख में नागभट के पीछे तात, भोज, यशोवर्द्धन, चंदुक, शीलुक, झोट, भिल्लादित्य, कक्क, बाउक

और कक्कुक का राजा होना शिलालेखों में लिखा मिलता है, परन्तु इनका सम्बन्ध सिरोही राज्य से नहीं रहा.

मंडोर पर राज्य करनेवाली बड़ी अर्थात् मुख्य शाखा में नरभट का पौत्र ककुत्स्थ हुआ, जिसको कक्कुक भी कहते थे. इसका उत्तराधिकारी इसका छोटा भाई देवराज हुआ, जिसको देवशक्ति भी कहते थे. यह परम वैष्णव था. इसकी राणी भूयिकादेवी से वत्सराज उत्पन्न हुआ.

वत्सराज मारवाड़ के पड़िहारों में प्रथम प्रतापी राजा हुआ. इसने गौड़ (बंगाल) के राजा को विजय किया, परन्तु दक्षिण के राठौड़ राजा ध्रुवराज ने इसको हराकर मारवाड़ में भगाया और इसके दो श्वेत छत्र छीन लिये, जो इसने गौड़ देश के राजा से छीने थे. इसकी राणी सुंदरीदेवी से नागभट उत्पन्न हुआ था. यह परम शिवभक्त था.

नागभट पड़िहार राजाओं में बड़ा ही प्रतापी हुआ और राजपूताने में यह अबतक 'नाहड़राव पड़िहार' नाम से प्रसिद्ध है. इसने चक्रायुध * को हराकर कन्नौज का महाराज्य छीना और कन्नौज को

* बैसवंशी महाप्रतापी राजा हर्षवर्द्धन के देहान्त के बाद का कन्नौज के राज्य का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता. उसके देहान्त से कुछ समय पीछे मौखरी वंशियों ने कन्नौज पर पीछा अधिकार कर लिया हो, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि राजतरंगिणी से पाया जाता है, कि कश्मीर के राजा ललितादित्य ने कन्नौज पर चढ़ाई कर वहां के राजा यशोवर्मा को उसके कुटुंब

अपनी राजधानी बनाया. इसने आंध्र, सैंधव, विदर्भ, कलिंग और बंगाल के राजाओं को जीता तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स, मत्स्य आदि देशों के राजाओं के पहाड़ी क़िले छीन लिये. इसके राज्यसमय का एक शिलालेख वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१२) का मिला है. यह राजा भगवती (देवी) का परम भक्त था. इसकी राणी ईसटादेवी से रामभद्र उत्पन्न हुआ, जो सूर्य का परम भक्त था. रामभद्र की राणी अप्पादेवी से भोजदेव उत्पन्न हुआ था.

भोजदेव भगवती (देवी) का भक्त था और इसको आदिवराह तथा मिहिर भी कहते थे. यह गुजरात के राठौड़ राजा ध्रुवराज (दूसरे) से लड़ा था, जिसको धारावर्ष भी कहते थे. इसका एक दानपत्र वि० सं० ९०० (ई० स० ८४३) का मारवाड़ राज्य के डींडवाना ज़िले के दौलतपुरा गांव से मिला है, जिसमें उक्त ज़िले का सिवा गांव दान करने का उल्लेख है. उक्त ताम्रपत्र का दूतक (जिसके द्वारा दानपत्र खुदवा देने की आज्ञा हो उसे ' दूतक ' कहते हैं) श्रीमान् नागभट युवराज होना लिखा है. भोजदेव के ५ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक देवगढ़ (सेंट्रल इंडिआ में बेतवा नदी पर) से वि० सं० ९१९ (ई० स०

सहित मार डाला. यशोवर्मा का मौखरी वंशी होना अनुमान किया जाता है. यशोवर्मा के पीछे इन्द्रायुध तथा चक्रायुध नामक राजाओं का कन्नौज पर राज्य करना शिलालेखादि से पाया जाता है. ये दोनों राजा किस वंश के थे, इस विषय में कुछ भी लिखा हुआ नहीं मिलता. संभव है, कि ये राठौड़वंशी हों.

८६२) का; तीन ग्वालियर से, जिनमें से एक बिना संवत् का, दूसरा वि० सं० ६३२ (ई० स० ८७५) का और तीसरा वि० सं० ६३३ (ई० स० ८७६) का, तथा एक पेहेवा (कर्णाल ज़िले में) से हर्ष संवत् २७६ (वि० सं० ६३८=ई० स० ८८१) का मिला है. इसके चांदी और तांबे के सिक्के भी मिले हैं. इसका पुत्र महेन्द्रपाल इसके बाद राजा हुआ.

महेन्द्रपाल भी अपने पिता की नांई भगवती (देवी) का परम भक्त था और इसको महेन्द्रायुध और निर्भयराज भी कहते थे. इसकी राणी देहनागादेवी से भोजदेव और महीदेवी नामक दूसरी राणी से विनायकपाल का जन्म हुआ था. इसके तीन ताम्रपत्र और दो शिला-लेख मिले हैं, जो वि० सं० ६५० से ६६४ (ई० स० ८६३ से ६०७) तक के हैं. इसके दो ताम्रपत्रों से, जो काठियावाड़ से मिले हैं, पाया जाता है, कि काठियावाड़ के दक्षिणी हिस्से तक इसका राज्य था और वहां पर इसके सोलंकी सामंत राज्य करते थे. कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण और बालभारत आदि पुस्तकों का रचयिता प्रसिद्ध कवि राजशेखर इस (महेन्द्रपाल) का गुरु था. इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र भोजदेव (दूसरा) हुआ, जो परम वैष्णव था. इसने थोड़े ही समय तक राज्य किया हो ऐसा पाया जाता है. इसके पीछे इसका छोटा भाई महीपाल कन्नौज का राजा हुआ, जिसको क्षितिपाल, विनायकपाल तथा हेरंबपाल भी कहते थे†.

† वि० सं० ९७४ (ई० स० ९१७) के शिलालेख में महेन्द्रपाल के पीछे महीपाल का नाम लिखा है और भोजदेव दूसरे का नाम छोड़दिया है. वि० सं० ९८८ (ई० स० ९३१) के

इसके समय भी उपर्युक्त राजशेखर कवि कन्नौज में विद्यमान था, जो इसको आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल, मेकल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुन्तल और रमठ देशवालों को पराजित करनेवाला लिखता है. यह दक्षिण के राठौड़ राजा इंद्रराज (तीसरे) से लड़ा, जिसमें इसकी हार हुई थी. इसके अंतिम समय से कन्नौज के पड़िहारों का राज्य कमज़ोर होने लगा और अनेक सामंत स्वतंत्र बनने के उद्योग में लगे. इस राजा के समय के दो ताम्रपत्र, जिनमें से एक (महीपाल नामवाला) श० सं० ८३६ (वि० सं० ९७१=ई० स० ९१४) का हड्डाला गांव (काठियावाड़ में) से मिला हुआ और दूसरा (विनायकपाल नामवाला) वि० सं० ९८८ (ई० स० ९३१) का, तथा एक शिलालेख (महीपाल के नामका) वि० सं० ९७४ (ई० स० ९१७) का मिला है. इसके दो पुत्र देवपाल और विजयपाल थे, जिनमें से देवपाल इसके पीछे राजा हुआ और वि० सं० १००५ (ई० स० ९४८) में विद्यमान था. इसका उत्तराधिकारी इसका छोटा भाई विजयपाल हुआ, जिसके समय का एक शिलालेख वि० सं० १०१६ (ई० स० ९६०)

विनायकपाल के ताम्रपत्र में महेन्द्रपाल के बाद भोजदेव (दूसरे) और उसके पीछे विनायकपाल का नाम मिलता है. विनायकपाल के स्थान पर हेरंबपाल और महीपाल के स्थान पर क्षितिपाल भी लिखा मिलता है. महीपाल के उत्तराधिकारी देवपाल के समय के लेख में उस (देवपाल) को क्षितिपाल का उत्तराधिकारी लिखा है और एक दूसरे लेख में उसको हेरंबपाल का पुत्र लिखा है. ऐसी दशा में यही अनुमान होता है, कि महीपाल, क्षितिपाल, विनायकपाल और हेरंबपाल ये चारों एक ही राजा के नाम हों.

का अलवर राज्य के राजोरगढ़ से मिला है. विजयपाल के पीछे राज्यपाल कन्नौज का राजा हुआ. इसके राज्यसमय हि० स० ४०६ (वि० सं० १०७५=ई० स० १०१८) में सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने कन्नौज पर चढ़ाई कर उस शहर को लूटा और वहां के मंदिरों को तोड़ा. फ़रिश्ता लिखता है, कि 'इस (राज्यपाल) ने सुलतान से संधीकर उसकी आधीनता स्वीकार की थी'. सुलतान से संधी करने के कारण इसके कई सामंत इससे अप्रसन्न हुए और कलिंजर के चंदेल राजा गंड ने अपने पुत्र विद्याधरदेव को कन्नौज पर भेजा, जिसने इस (राज्यपाल) को मारडाला. इसके पीछे त्रिलोचनपाल का राजा होना पाया जाता है, जिसका एक ताम्रपत्र वि० सं० १०८४ (ई० स० १०२७) का मिला है. इसके पीछे यशःपाल कन्नौज का राजा हुआ हो, जिसके समय का एक शिलालेख वि० सं० १०९३ (ई० स० १०३६) का मिला है. इसके समय या इसके बाद गहरवाल (राठौड़) चन्द्रदेव ने कन्नौज का राज्य छीन लिया, जिसके पूर्व पड़िहारों के बहुधा सब सामंत स्वतंत्र होचुके थे, अतएव चन्द्रदेव पड़िहारों के राज्य के एक हिस्से का ही स्वामी बनने पाया.
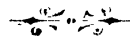
सोलंकी वंश.

इस समय सोलंकी राजपूत अपने को अग्निवंशी बतलाते हैं और वशिष्ठ ऋषिद्वारा अपने मूलपुरुष चौलुक्य या चालुक्य का आबू

पर्वत पर अग्निकुंड से उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु इन्हींके पूर्वजों के अनेक प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र और ऐतिहासिक पुस्तकों में कहीं इनका अग्निवंशी होना नहीं लिखा, किन्तु बहुधा चन्द्रवंशी और कहीं कहीं ब्रह्मा के चुलुक (चुल्लू) से उत्पन्न होना लिखा मिलता है (देखो सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३—१३). सोलंकियों के लेखादि से इनका राज्य पहिले अयोध्या में होना, फिर वहां से उनका दक्षिण में जाना और दक्षिण से गुजरात आदि में फैलना पाया जाता है. गुजरात के सोलंकियों का, जिनकी राजधानी अणहिलवाड़ा (पाटण) थी, आबू के राज्य पर अनुमान ३०० वर्ष तक किसी प्रकार अधिकार बना रहा था. इनका वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है:—

दक्षिण में सोलंकियों का राज्य स्थापित करनेवाले राजा जयसिंह के वंशज राजि के पुत्र मूलराज ने अणहिलवाड़े के अंतिम चावड़ावंशी राजा सामंतसिंह को, जिसे जैनलेखक इस (मूलराज) का मामा बतलाते हैं, मारकर गुजरात पर अपना अधिकार जमाया. फिर इसने गुजरात से उत्तर में अपना अधिकार बढ़ाना शुरू कर आबू के परमार राजा धरणीवराह पर हमला किया, जिसपर हथुंडी के राठोड़ राजा धवल ने उसको शरण दिया. इसी समय से आबू के परमारों को गुजरात के सोलंकियों की आधीनता को स्वीकार करना पड़ा. मूलराज को इस प्रकार आगे बढ़ता देखकर सांभर के चौहान राजा विग्रहराज (दूसरे) ने इस पर चढ़ाई कर दी. उसी समय कल्याण के सोलंकी

राजा तैलप का सेनापति बारप भी, जिसको उस (तैलप) ने लाट-देश * जागीर में दिया था, इसपर चढ़ आया, जिससे यह (मूलरा-ज) अपनी राजधानी छोड़कर कंथकोट के किले में, जो कच्छदेश में है, चला गया. विग्रहराज इसका राज्य लूटने बाद लौट गया और बारप इसके साथ की लड़ाई में मारा गया. इसने सोरठ (दक्षि-णी काठियावाड़) के चूडासमा (यादव) राजा ग्रहरिपु पर चढ़ाई की उस समय उस (ग्रहरिपु) का मित्र कच्छ का जाडेजा (यादव) राजा लाखा फूलाणी उसकी सहायता के लिये आया. इस लड़ाई में मूलराज ने ग्रहरिपु को कैद किया और लाखा फूलाणी मारा गया. इस युद्ध में आबू के राजा ने, जो मूलराज की सेना में था, बड़ी वीरता बतलाई थी, ऐसा हेमाचार्यरचित द्व्याश्रय महाकाव्य से पाया जाता है. मूलरा-ज ने सिद्धपुर में 'रुद्रमहालय' नामक बड़ा शिवमंदिर बनवाया और दूर दूर से कई ब्राह्मणों को बुलाकर उनको कितने ही गांव दान में दिये. इसने वि० सं० १०१७ से १०५२ (ई० स० ९६१ से ९९६) तक राज्य किया. इसके पीछे इसका पुत्र चामुंडराज राजा हुआ.

चामुंडराज ने मालवा के परमार राजा सिन्धुराज को युद्ध में मारा, ऐसा जयसिंहसूरि अपने 'कुमारपालचरित' नामक काव्य में लि-खता है. गुजरात के सोलंकियों तथा मालवा के परमारों के बीच जो

* लाटदेश=वर्तमान गुजरात देश का वह हिस्सा, जो माही और नर्मदा नदियों के बीच में है.

वंशपरंपरागत वैर चला, जिसका मुख्य कारण सिंधुराज का चामुंडराज के हाथ से माराजाना ही अनुमान होता है. यह राजा व्यभिचार में अधिक प्रवृत्त हुआ, जिससे इसकी बहिन वाविणीदेवी (चाचिणीदेवी) ने इसको पदच्युत कर इसके पुत्र वल्लभराज को गादी पर बिठलाया. चामुंडराज ने वि० सं० १०५२ से १०६६ (ई० स० ९९६ से १०१०) तक राज्य किया. इसके तीन पुत्र वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज थे, जिनमें से वल्लभराज इसका क्रमानुयायी हुआ.

वल्लभराज ने अनुमान ६ मास तक राज्य किया. इसने मालवे पर चढ़ाई की, परन्तु बीमारी से मार्ग में ही मर गया, जिससे इसका छोटा भाई दुर्लभराज राजा हुआ. दुर्लभराज का विवाह नाडौल के चौहान राजा महेन्द्र की बहिन दुर्लभदेवी से हुआ था. इसने वि० सं० १०६६ से १०७८ (ई० स० १०१० से १०२२) तक राज्य किया. इसका उत्तराधिकारी इसके छोटे भाई नागराज का पुत्र भीमदेव हुआ.

भीमदेव विशेष पराक्रमी हुआ. आबू का परमार राजा धंधुक, जो इसका सामंत था, इससे विरुद्ध बर्ताव करने लगा, जिस पर क्रुद्ध होकर इसने अपने दंडनायक (सेनापति) विमलशाह नामक पोरवाड़ महाजन को उसपर भेजा. धंधुक मालवा के परमार राजा भोज के पास चला गया, जो उस समय प्रसिद्ध चित्तौड़ के क़िले पर रहता था. विमलशाह ने धंधुक को चित्तौड़ से बुलाया और उसीके द्वारा भीमदेव को प्रसन्न करवा दिया. फिर उस (विमलशाह) ने आबू पर

देलवाड़ा गांव में करोड़ों रुपये लगाकर विमलवसही नामक आदिनाथ का मन्दिर बनवाया (देखो ऊपर पृ० ६१–६४). भीमदेव ने सिन्ध के राजा हम्मुक (?) पर चढ़ाई कर उसको परास्त किया. जब यह सिंध की चढ़ाई में लगा हुआ था, उस समय मालवा के परमार राजा भोज के सेनापति कुलचन्द्र ने अणहिलवाड़े पर हमला कर उस नगर को लूटा, जिसका बदला लेने के लिये इसने भोज पर चढ़ाई की. उन्हीं दिनों में भोज रोगग्रस्त होकर मर गया. इसके राज्यसमय वि० सं० १०८० (ई० स० १०२४) में गज़नी के सुल्तान महमूद ने गुजरात पर चढ़ाई कर प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर को, जो काठियावाड़ की दक्षिण में समुद्र तट पर है, तोड़ा था. इसने वि० सं० १०७८ से ११२० (ई० स० १०२२ से १०६४) तक राज्य किया. इसके दो पुत्र क्षेमराज और कर्ण थे, जिनमें से छोटा कर्ण इसके पीछे राज्यसिंहासन पर बैठा.

कर्ण ने कोली और भीलों को अपने वश किया, जो समय समय पर उपद्रव किया करते थे. वि० सं० ११२० से ११५० (ई० स० १०६४ से १०९४) तक इसने राज्य किया. इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र जयसिंह हुआ.

जयसिंह का प्रसिद्ध खिताब 'सिद्धराज' था, जिससे अबतक यह 'सिद्धराज जयसिंह' नाम से प्रसिद्ध है. यह बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ. यह सोमनाथ की यात्रा को गया, उस समय मालवा के पर-

मार राजा नरवर्मा ने गुजरात पर चढ़ाई की, जिसका वैर लेने के लिये पीछे से इसने मालवे पर चढ़ाई कर नरवर्मा के पुत्र राजा यशोवर्मा को कैद किया. इसने महोवा के चंदेल राजा मदनवर्मा पर भी चढ़ाई की थी, परन्तु उसमें इसको विजय प्राप्त हुई या नहीं यह संदिग्ध बात है. इसने सोरठ पर चढ़ाई कर वहां के राजा को भी जीता और उसकी यादगार में वहां पर अपने नामका संवत् चलाया, जो कितनेक समय तक वहां पर 'सिंह संवत्' नाम से प्रसिद्ध रहा. इसने बर्बर आदि कई जंगली जातियों को भी अपने आधीन किया था. यह बड़ा ही लोकप्रिय, न्यायी, विद्यारसिक और जैनों का विशेष सन्मान करनेवाला राजा था. इसने वि० सं० ११५० से ११६६ (ई० स० १०६४ से ११४३) तक शासन किया. जयसिंह के पुत्र न होने के कारण इसके पीछे उपर्युक्त राजा कर्ण के बड़े भाई क्षेमराज के पुत्र देवप्रसाद के बेटे त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल राज्यसिंहासन पर बैठा.

कुमारपाल अणहिलवाड़ा के सोलंकियों में सबसे प्रतापी हुआ, परन्तु राज्य पाने से पहिले का समय इसने बड़ी ही आपत्ति में व्यतीत किया, क्योंकि सिद्धराज जयसिंह इसको मरवाना चाहता था, जिससे यह भेष बदल कर प्राण बचाता फिरता था. इसने अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज (आना) पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की, मालवा के राजा बल्लाल को मारा और कोंकण के शिलारावंशी राजा (मल्लिकार्जुन) पर दो बार चढ़ाई की और दूसरी चढ़ाई में इसको विजय

प्राप्त हुई. यह राजा बड़ा ही प्रतापी, देशविजयी और राजनीतिनिपुण था. इसके राज्य की सीमा दूर दूर तक फैली हुई थी और मालवा तथा राजपूताना के कितनेक हिस्सों पर भी इसका अधिकार था. इसने हेमाचार्य के उपदेश से जैनधर्म स्वीकार करलिया था. वि० सं० ११९९ से १२३० (ई० स० ११४३ से ११७४) तक इसने राज्य किया. इसके पीछे इसके सबसे बड़े भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल राज्यसिंहासन पर बैठा.

अजयपाल ने जैनधर्म का विरोध कर बहुत कुछ अत्याचार किया और अपने ही एक द्वारपाल के हाथ से यह वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७७) में मारा गया, जिससे इसका पुत्र मूलराज (दूसरा) बाल्यावस्था में राज्य पाया, इसीसे कोई कोई इतिहासलेखक इसका नाम बालमूलराज भी लिखते हैं. इसके समय में सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने गुजरात पर चढ़ाई की, परन्तु आबू के नीचे लड़ाई हुई, जिसमें सुलतान घायल हुआ और हारकर लौट गया. फ़ारसी इतिहासलेखक इस लड़ाई का भीमदेव के समय होना लिखते हैं, परन्तु संस्कृत ग्रन्थकारों ने मूलराज के समय में होना लिखा है, जिसका कारण यही है, कि उसी समय में मूलराज का देहान्त और भीमदेव का राज्याभिषेक हुआ था. मूलराज ने वि० सं० १२३३ से १२३५ (ई० स० ११७७ से ११७९) तक राज्य किया. इसका उत्तराधिकारी इसका छोटा भाई भीमदेव हुआ.

भीमदेव (दूसरा) 'भोळाभीम' नाम से प्रसिद्ध हुआ. यह भी बाल्यावस्था में ही गद्दी पर बैठा था, जिससे इसके मंत्रियों तथा सामंतों ने इसका बहुतसा राज्य दबा लिया, कितने ही सामंत स्वतंत्र होगये और जयतसिंह (जैत्रसिंह) नामक सोलंकी ने इससे अणहिलवाड़े की गद्दी भी छीनली, परन्तु अन्त में उसको वहां से पीछा हटना पड़ा. सोलंकियों की बघेल (वाघेला) शाखा के राणा धवल का पुत्र अर्णोराज भीमदेव का सहायक बना और उसको शत्रुओं से बराबर लड़ते ही रहना पड़ा. उस (अर्णोराज) का पुत्र लवणप्रसाद भी भीमदेव के पक्ष में ही रहा, जिससे यह (भीमदेव) अपना गया हुआ राज्य (जयतसिंह से) पीछा लेने पाया हो, ऐसा प्रतीत होता है. भीमदेव के समय कुतबुद्दीन ऐबक ने गुजरात पर चढ़ाई की और आबू के नीचे परमार धारावर्ष तथा दूसरे सामंत बड़ी सेना के साथ उसका मार्ग रोकने को खड़े थे, जिनको हराकर उस (कुतबुद्दीन) ने गुजरात को लूटा. भीमदेव ने वि० सं० १२३५ से १२९८ (ई० स० ११७९ से १२४२) तक राज्य किया. भीमदेव के पीछे त्रिभुवनपाल अणहिलवाड़े की गद्दी पर बैठा. इसका भीमदेव के साथ क्या सम्बन्ध था, यह ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ. वि०सं० १३०० (ई० स० १२४३) के आसपास त्रिभुवनपाल को निकाल कर सोलंकियों की बघेल शाखा का राणा वीसलदेव अणहिलवाड़े का राजा बना.

त्रिभुवनपाल के वंशज गुजरात छोड़कर सिरोही राज्य में आ बसे.

उनके अधिकार में 'माळ के मगर' के आसपास का इलाक़ा रहा. फिर महाराव लाखा के समय उनके और उक्त महाराव के बीच लड़ाई हुई, जिसमें वे हारकर मेवाड़ में चले गये.

राणा वीसलदेव बघेल (वाघेला) सोलंकी और गुजरात के धोलका प्रदेश का स्वामी था. सोलंकियों की बघेल (वाघेला) शाखा की उत्पत्ति के विषय में भाट लोग ऐसा प्रकट करते हैं, कि 'सिद्धराज जयसिंह के ७ पुत्र हुए, जिनमें से सबसे बड़े बाघराव (व्याघ्रदेव) के वंशज बघेल कहलाये,' परन्तु सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल के समय के चित्तौड़ के क़िले (मेवाड़ में) के लेख तथा गुजरात के सोलंकियों के ऐतिहासिक पुस्तकों से स्पष्ट है, कि सिद्धराज जयसिंह के कोई पुत्र न होने के कारण कुमारपाल, जो भीमदेव (प्रथम) के ज्येष्ठ पुत्र क्षेमराज का वंशज था (देखो ऊपर पृष्ठ १३६). उसका उत्तराधिकारी हुआ. ऐसी दशा में हम भाटों के कथन पर विश्वास नहीं कर सकते. इसके विरुद्ध सोलंकियों के इतिहास से संबंध रखनेवाली पुस्तकों में यह लिखा मिलता है, कि 'सोलंकीवंश की दूसरी शाखा के धवल नाम के पुरुष का विवाह कुमारपाल की मौसी से हुआ था, जिससे अर्णोराज (आनाक) का जन्म हुआ. अर्णोराज ने कुमारपाल की अच्छी सेवा की, जिसके बदले में कुमारपाल ने उसको व्याघ्रपल्ली (बघेल) गांव दिया, जिसके नाम से अर्णोराज का वंश व्याघ्रपल्ली (बघेल) कहलाया'. इस कथन को हम भाटों के उपर्युक्त कथन से अधिक विश्वास योग्य

समझते हैं.

अर्णोराज का पुत्र लवणप्रसाद हुआ, जो एक वीरपुरुष था. इसके आधीन व्याघ्रपल्ली और धोलके व धंधुके के इलाके थे. भीमदेव (दूसरे) का यह मंत्री था. मालवा के परमार राजा सुभटवर्मा (सोहड) तथा दक्षिण के यादव राजा सिंघण ने भीमदेव (दूसरे) के राज्य में गुजरात पर चढ़ाई की, उस समय गुजरात की सेना का मुखिया यही था. भीमदेव (दूसरे) के राज्यसमय इसका बल बहुत बढ़गया था. इसका पुत्र वीरधवल हुआ, जो बड़ाही वीरप्रकृति का पुरुष था. इसने वामनस्थली (काठियावाड़ में), भद्रेश्वर (कच्छ में) तथा गोधरा के राजाओं को विजय किया. इसके मुख्य मंत्री वस्तुपाल तथा तेजपाल नामक दो भाई (पोरवाड़ जाति के महाजन) थे, जिन्होंने जैनधर्मसंबंधी कामों में अगणित द्रव्य व्यय किया. आबूपर के देलवाड़ा गांव का लूणवसही नामक सुंदर मंदिर, जो विमलशाह के मंदिर के पास है, तेजपाल ने अपने पुत्र लूणसिंह के निमित्त करोड़ों रुपये लगाकर वि॰ सं॰ १२८७ (ई॰ स॰ १२३०) में बनवाया था (देखो ऊपर पृष्ठ ६४-७०). ये दोनों भाई वीरधवल के राज्य को बड़ी उन्नति देनेवाले हुए. वीरधवल का देहान्त वि॰ सं॰ १२९४ (ई॰ स॰ १२३८) में हुआ. इसके तीन पुत्र वीरम, वीसलदेव और प्रतापमल्ल थे, जिनमें से दूसरे वीसलदेव को मन्त्री वस्तुमाल ने धोलके की गद्दी पर बिठलाया.

यह वि० सं० १३०० (ई० स० १२४४) के आसपास उपर्युक्त अणहिलवाड़े के राजा त्रिभुवनपाल का राज्य छीनकर वहां की गद्दीपर बैठ गया. यह भी अपने पिता की नांई वीरप्रकृति का राजा था और मेवाड़ तथा मालवा के राजाओं से लड़ा था. वि० सं० १३०० से १३१८ (ई० स० १२४४ से १२६२) तक इसने अणहिलवाड़े में राज्य किया. इसके पीछे इसके छोटे भाई प्रतापमल्ल का पुत्र अर्जुनदेव राजा हुआ. अर्जुनदेव का वि० सं० १३२० (ई० स० १२६३) का एक शिला-लेख सिरोही राज्य के अजारी गांव के गोपालजी के मंदिर की फर्श में लगा हुआ है. यदि वह इस राजा का हो तो यही मानना पड़ेगा, कि उस समय तक आबू के परमार किसी प्रकार गुजरात के राजाओं के आधीन थे. अर्जुनदेव ने वि० सं० १३१८ से १३३१ (ई० स० १२६२ से १२७५) तक और इसके पीछे इसके पुत्र सारंगदेव ने वि० सं० १३३१ से १३५३ (ई० स० १२७५ से १२९७) तक राज्य किया. सारंगदेव के समय का एक शिलालेख वि० सं० १३५० (ई० स० १२९४) का आबू पर विमलशाह के मंदिर की दीवार में लगा हुआ है. इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र कर्णदेव हुआ, जो गुजरात में 'करणघेला' ‡ नाम से प्रसिद्ध है. वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९) † में देहली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी

‡ गुजराती भाषा में विक्षिप्त (पागल) को 'घेला' कहते हैं.

† उलगखां की इस चढ़ाई के समय के विषय में मतभेद है. मिराते अहमदी नामक फ़ारसी तवारीख़ में इस चढ़ाई का हिजरी सन् ६९६ (वि० सं० १३५४=ई० स० १२९७) में

के छोटे भाई उलगखां तथा नसरतखां जलेसरी ने गुजरात पर चढ़ाई की, जिससे कर्णदेव भागकर दक्षिण में देवगढ़ के राजा रामदेव के पास जा रहा. इस प्रकार गुजरात के सोलंकियों के महाराज्य का अंत हुआ.
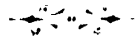
परमार वंश.

परमार राजाओं के शिलालेखों में तथा पद्मगुप्त (परिमल) कवि रचित 'नवसाहसांकचरित' नामक काव्य में इनकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है, कि आबू पर्वत पर वशिष्ठ ऋषि रहते थे. उनकी गौ (नन्दिनी) को गाधिराज के पुत्र विश्वामित्र छल से हर लेगये. इससे वशिष्ठ ने क्रुद्ध हो अपने अग्निकुण्ड में मंत्र पढ़कर आहुति दी, जिससे एक वीर पुरुष उस कुण्ड में से प्रकट हुआ. वह शत्रु की सेना का संहार कर गौ को पीछी लेआया, जिसपर प्रसन्न हो वशिष्ठ ने उसका नाम 'परमार' अर्थात् शत्रुओं को मारनेवाला रक्खा. उस वीर पुरुष का वंश 'परमार' नाम से प्रसिद्ध हुआ.

अग्निकुंड से उत्पन्न होने की इस कथा पर से कोई कोई विद्वान्

और तज़ियतुल अमसार, तारीख़ अल्फ़ी व तारीख़ फ़ीरोज़शाही में हिजरी सन ६९८ (वि० सं० १३५६=ई० स० १२९९) में होना लिखा है. जिनप्रभसूरि ने, जो इस चढ़ाई के समय जीवित था, अपनी 'तीर्थकल्प' नामक पुस्तक के सत्यपुर (साचोर) कल्प में इसका वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९) में होना लिखा है, जो अधिक प्रामाणिक है. इसीसे हमने वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९) लिखा है.

ऐसा अनुमान करते हैं, कि परमार राजपूत बौद्ध होगये हों, जिनको ब्राह्मणों ने पीछा संस्कार कर वैदिकधर्म में लिया हो और उन पर संस्कार होने के कारण वे अग्निवंशी कहलाये हों. किसी किसी का मानना ऐसा भी है, कि शायद वे शुद्ध क्षत्री न हों, किन्तु मध्य एशिया से आनेवाले सीथिअन (शक) लोग हों और इस देश में बसने पर उनको संस्कार कर राजपूतों में मिला लिया हो और कोई उनका गुर्जर (गूजर) होना अनुमान करते हैं. पाटनारायण के मंदिर के उपर्युक्त लेख में वशिष्ट के अग्निकुंड से उत्पन्न होनेवाले पुरुष का नाम धौमराज तथा दूसरे लेखों में पहिले राजा का नाम धूमराज लिखा मिलता है. 'धूम' अग्नि से उत्पन्न होनेवाले धुएं का नाम है, अतएव धूमराज के नामपर से अग्निवंश की यह कथा पीछे से घड़ंत करली हो तो आश्चर्य नहीं.

आबू के परमारों का राज्य † आबू के आसपास के प्रदेश में अर्थात् सिरोही, मारवाड़, पालनपुर व दांता के राज्यों के कितनेक हिस्सों पर रहा था. प्राचीन शिलालेखादि से इनका वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार मिलता है:—

इस वंश के पहिले राजा का नाम धूमराज लिखा मिलता है. यह कब हुआ यह ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ. इसके वंश में सिंधुराज

† आबू से निकले हुए परमारों का प्रबल राज्य मालवे पर रहा, जहां पर मुंज, भोज, अर्जुनवर्मा आदि प्रसिद्ध और विद्वान राजा हुए.

हुआ, जिसका नाम केराडू (मारवाड़ के मालाणी इलाके में) से मिलेहुए वि०सं०१२१८ (ई० स० ११६१) के लेख में मिलता है, जिसमें इसका मरु-मण्डल अर्थात् मारवाड़ देश का महाराजा होना लिखा है. जालोर के किले के तोपखाने के दर्वाज़े के पास की दीवार में एक लेख वि० सं० ११७४ (ई० स० १११७) आषाढ़ सुदि ५ का लगा हुआ है, जिसमें लिखा है, कि उक्त संवत् में जालोर के परमार वीसल की राणी मेलर-देवी ने वहां के सिन्धुराजेश्वर के मंदिर पर सुवर्ण का कलश चढ़ाया. इससे अनुमान होता है, कि वह मंदिर इस सिंधुराज का बनाया हुआ हो और इसके समय जालोर पर भी परमारों का अधिकार हो. सिन्धु-राज के पीछे उत्पल राज हुआ. वसंतगढ़ से मिले हुए उपर्युक्त लेख में, जो वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) का है, उत्पलराज से वंशावली शुरू होती है. उत्पलराज का पुत्र आरण्यराज और इसका कृष्णराज हुआ, जिसको कान्हड़देव भी कहते थे. कृष्णराज का पुत्र धरणीवराह हुआ.

वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६१) में सोलंकी वंशी राजि के पुत्र मूलराज ने चावड़ावंश के अंतिम राजा सामंतसिंह से अणहिलवाड़े (पाटण) का राज्य छीन लिया. फिर वह उत्तर † में अपना राज्य बढ़ाने का

---

† मूलराज के एक ताम्रपत्र में, जो वि० सं० १०५१ (ई० स० ९९५) माघ सुदि १५ का है, मारवाड़ के सत्यपुर (साचोर) इलाके का वरणक गांव दान करने का उल्लेख है, जिससे पाया जाता है, कि उक्त संवत से पूर्व उसका अधिकार गुजरात से उत्तर में साचोर के इलाके तक बढ़ चुका था.

यत्न किया. उसने इस (धरणीवराह) ‡ पर चढ़ाई की, जिससे इसने भागकर हथुंडी (मारवाड़ के ज़िले गोडवाड़ में बीजापुर से थोड़ी दूर पर) के राठोड़ राजा धवल की शरण ली, ऐसा बीजापुर से मिले हुए राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा धवल के समय के वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९६) के लेख से पाया जाता है. इसी समय से आबू के परमार गुजरात के सोलंकियों के सामंत बने. मूलराज ने वि० सं० १०१७ से १०५२ (ई० स० ९६१ से ९९६) तक राज्य किया अतएव यह घटना इन संवतों के बीच किसी समय होनी चाहिये.

धरणीवराह का पुत्र महीपाल हुआ, जिसका दूसरा नाम देवराज शिलालेखों में मिलता है. इसका एक ताम्रपत्र वि० सं० १०५९ (ई० स० १००२) का मिला है. इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र धंधुक हुआ, जो गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के साथ विरोध होनेपर धारानगरी (मालवे में) के परमार राजा भोज के पास, जो उस समय प्रसिद्ध चित्तौड़ के क़िले (मेवाड़ में) पर रहता था, चला गया. भीमदेव ने विमलशाह को, जो पोरवाड़ जाति का महाजन था, अपनी

‡ राजपूताने में ऐसा प्रसिद्ध है, कि परमार धरणीवराह के ९ भाई थे, जिनको इसने अपना राज्य बांटदिया. उनकी ९ राजधानियां 'नवकोटी मारवाड़' कहलाई. इस विषय का एक छप्पय भी प्रसिद्ध है (देखो हिन्दी टॉड राजस्थान के प्रकरण ७ वें पर हमारी टिप्पणी नं० ७४, पृ० ३७९), परन्तु इस प्रसिद्धि में कुछ भी सत्यता पाई नहीं जाती. अनुमान होता है, कि वह छप्पय किसी ने पीछे से बनाया हो और उसके बनानेवाले को परमारों के प्राचीन इतिहास का ठीक ठीक ज्ञान न हो.

तरफ़ से दंडनायक (सेनापति) नियत कर आबू पर भेजदिया, जिसने धंधुक को चित्तौड़ से बुलाया और उसीके द्वारा भीमदेव को प्रसन्न करवादिया. फिर उस (विमलशाह) ने आबू पर वि० सं० १०८८ (ई० स० १०३१) में विमलवसही नामक आदिनाथ का जैनमंदिर करोड़ों रुपये लगाकर बनवाया (देखो ऊपर पृ० ६१ से ६४ तक और पृष्ठ १३४-१३५). धंधुक के दो पुत्र पूर्णपाल और कृष्णराज तथा एक पुत्री लाहिनी थी, जिसका विवाह राजा विग्रहराज ‡ से हुआ था. विधवा होने पर लाहिनी अपने भाई पूर्णपाल के यहां चली आई और वशिष्टपुर (बसंतगढ़) में रहकर उसने वहां के सूर्य के टूटे हुए मंदिर को नया बनवाया और लोगों के जल पीने की बावड़ी का, जो अबतक 'लाणवाव' (लाहिनीवापी) कहलाती है, वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) में जीर्णोद्धार करवाया (देखो ऊपर पृष्ठ ३०). धंधुक का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठपुत्र पूर्णपाल हुआ, जिसके राज्यसमय के तीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) ज्येष्ठ सुदि १५ का वर्माण के 'ब्रह्माणस्वामी' नामक सूर्य के अपूर्व मंदिर के एक स्तंभ पर खुदा हुआ है, दूसरा वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) श्रावण वदि ९ का उपरोक्त वसंतगढ़ की 'लाणवाव' पर का और तीसरा वि० सं० ११०२ (ई० स० १०४५) कार्तिक वदि ५ का भडूंद गांव (गोडवाड़ में) की बावड़ी में लगा हुआ है. उत्पलराज

‡ विग्रहराज के पूर्वजों के लिये देखो ऊपर पृ० ३० का नोट.

से लगाकर पूर्णपाल तक की वंशावली उपर्युक्त वसंतगढ़ के वि० सं० १०९९ (ई० स० १०४२) के लेख में दर्ज है.

पूर्णपाल के पीछे उसका छोटा भाई कृष्णराज राजा हुआ, जिसको गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव ने क़ैद किया, जहां से नाडौल के चौहान राजा बालप्रसाद ने इसे छुड़ाया था, ऐसा उक्त बालप्रसाद के वंशज चाचिगदेव के समय के वि० सं० १३१९ (ई० स० १२६२) के लेख से, जो सूंधा नामक पहाड़ (जोधपुर राज्य के जसवंतपुरा इलाक़े में) पर के माता के मंदिर में लगा हुआ है, पाया जाता है. इसके समय के दो शिलालेख भीनमाल (मारवाड़ में) से मिले हैं, जिनमें से एक वि० सं० १११७ (ई० स० १०६१) माघ सुदि ५ का और दूसरा वि० सं० ११२३ (ई० स० १०६६) ज्येष्ठ वदि १२ का है.

यहांतक की परमारों की वंशावली शृंखलाबद्ध मिलती है. तेजपाल के बनवाये हुए आबूपर के मंदिर के उपरोक्त वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के शिलालेख में तथा अचलेश्वर के मंदिर के अष्टोत्तरशत शिवलिंग के नीचे के बड़े लेख में, जो परमार राजा सोमसिंह के समय का है (देखो ऊपर पृष्ठ ७२), आबू के परमार राजाओं की पिछली वंशावली मिलती है. उनमें धंधुक के पीछे ध्रुवभट आदि राजाओं का होना लिखकर रामदेव का नाम लिखा है. 'आदि' शब्द से स्पष्ट है, कि और भी राजा हुए हों, जिनके नाम नहीं लिखे गये. केराडू के उपर्युक्त वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) के लेख से

कृष्णराज के पीछे सोछराज, उदयराज और सोमेश्वर का राजा होना पाया जाता है. इससे अनुमान होता है, कि कृष्णराज के पीछे परमारों की दो शाखें ‡ हुई हों, जिनमें से मुख्य अर्थात् आबू की शाखा में ध्रुवभट, रामदेव आदि हुए और छोटी अर्थात् केराड़ की शाखा में सोछराज †, उदयराज और सोमेश्वर हुए.

---

‡ परमारों की तीसरी शाखा का जालोर पर होना पाया जाता है. जालोर से मिले हुए उपरोक्त वि० सं० ११७४ (ई० स० १११७) आषाढ सुदि ५ के लेख में वहां के परमारों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार दी है:—

परमारवंश में वाक्पतिराज नामक राजा हुआ. उसके पीछे क्रमश. चंदन, देवराज, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष और वीसल हुए. वीसल की राणी मेलरदेवीने उक्त संवत में सिंधुराजेश्वर के मंदिर पर सुवर्ण का कलश चढ़ाया.

यह शाखा आबू के किस राजा से फटी यह लिखा नहीं मिलता. परन्तु जालोर के वाक्पतिराज का आबू के राजा महीपाल (देवराज) का समकालीन होना अनुमान किया जा सकता है.

† सिरोही राज्य में आबू से पश्चिम के पालड़ी गांव से करीब २ माइल पर सांगारली नाम का ऊजड़ गांव है, जहां के माता के मन्दिर के एक स्तंभ पर वि० सं० ११६२ (ई० स० ११०५) मार्गशिर वदि ११ का लेख सोछरा (सोछराज) के पुत्र दुर्लभराज के समय का है, उक्त लेख में सोछरा (सोछराज) किस वंश का था. इस विषय मे कुछ भी नहीं लिखा यदि उक्त लेख का सोछराज और केराड़ के लेख का उक्त नाम का राजा एक ही हो, तो हमें यही मानना पड़ेगा, कि आबू के परमारों में कृष्णराज के पीछे सोछराज और उसके पीछे दुर्लभराज हुआ और केराड़ की शाखा सोछराज से फटी, परन्तु जबतक दूसरे लेखों से इसका ठीक होना सिद्ध न हो तबतक हमें यही मानना पड़ेगा, कि कृष्णराज के पीछे के आबू के एक दो राजाओं के नाम नहीं मिलते,

आबूपर के उपर्युक्त दोनों लेखों में धंधुक के पीछे ध्रुवभट और रामदेव के नाम मिलते हैं, जिनका हम कृष्णराज के पीछे होना मानते हैं. उनका कृष्णराज से क्या संबंध था, यह अबतक मालूम नहीं हुआ. रामदेव के पीछे उसका पुत्र यशोधवल राजा हुआ, जिसके समय का एक शिलालेख वि॰ सं॰ १२०२ (ई॰ स॰ ११४६) माघ सुदि १४ का अजारी गांव से मिला है, जिसमें इसको 'महामंडलेश्वर' (सामंत) लिखा है. इसकी पटराणी का नाम सौभाग्यदेवी मिलता है, जो सोलंकी वंश की थी. इसने सोलंकी कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को मारा था, ऐसा उपरोक्त वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के लेख में लिखा है. कुमारपाल ने बल्लाल पर चढ़ाई की, जिसमें यह उसका सामंत होने के कारण साथ होगा और लड़ाई में बल्लाल इसके हाथ से मारा गया हो. यशोधवल के दो पुत्र धारावर्ष और प्रल्हादन थे.

द्व्याश्रय महाकाव्य से पाया जाता है, कि गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज) पर चढ़ाई की उस समय अर्थात् वि॰ सं॰ १२०७ (ई॰ स॰ ११५०) में आबू का राजा विक्रमसिंह था. जो आबू के पास से कुमारपाल की सेना के साथ हुआ था. जिनमंडनोपाध्याय अपनी 'कुमारपाल-प्रबंध' नामक पुस्तक में लिखता है, कि 'विक्रमसिंह लड़ाई के समय आना (अर्णोराज) से मिलगया, जिससे कुमारपाल ने उसको कैद

कर आबू का राज्य उसके भतीजे यशोधवल को देदिया'.

यशोधवल वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४६) में महामण्डलेश्वर था, यह उसके लेख से सिद्ध है और उसके लेख का संवत् स्पष्ट होने से उसमें कोई शंका ही नहीं है. कुमारपाल की अर्णोराज पर चढ़ाई वि० सं० १२०७ * (ई० स० ११५०) में हुई, उस समय विक्रमसिंह का आबू पर राजा होना हेमाचार्य ने, जो कुमारपाल के समय विद्यमान थे, लिखा है और जिनमंडनोपाध्याय के लेखानुसार विक्रमसिंह के पीछे यशोधवल का आबू का राजा होना पाया जाता है, परन्तु आबू पर के उपरोक्त दोनों लेखों में उस (विक्रमसिंह) का नाम नहीं है. इन सब से यही अनुमान हो सकता है, कि रामदेव के पीछे उसका पुत्र यशोधवल राजा हुआ हो, जिससे रामदेव के भाई विक्रमसिंह ने राज्य छीन लिया हो, परन्तु कुमारपाल के प्रतिकूल होने के कारण उसका राज्य छीना जाकर पीछा यशोधवल को दिया गया हो. यदि यह अनुमान ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा, कि

* इस चढ़ाई का वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) में होना मानने का कारण यह है, कि कुमारपाल अजमेर के राजा अर्णोराज (आना) को जीतकर लौटता हुआ चित्तौड़ के क़िले पर गया, जहां पर समिद्धेश्वर के मंदिर में अपनी यादगार के लिये उसने एक लेख खुदवाया, जो वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) का है. चित्तौड़ से अणहिलवाड़े जाते हुए मेवाड़ के पालड़ी गांव (मोरवण के पास) में माता के मंदिर में दूसरा लेख खुदवाया, जो वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) के पौष मास का है. इससे इस चढ़ाई का चैत्रादि वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) में होना अधिक संभव है.

विक्रमसिंह दो तीन वर्ष से अधिक समय आबू का राज्य करने न पाया हो.

यशोधवल का पुत्र धारावर्ष आबू के परमारों में बड़ा प्रसिद्ध और पराक्रमी हुआ. इसका नाम अबतक 'धार परमार' नाम से प्रसिद्ध है. गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने कोंकण के राजा + पर चढ़ाई की, जिसमें यह साथ था और उस (कुमारपाल) को वहां पर (दूसरी चढ़ाई में) जो विजय प्राप्त हुई, वह इसीके वीरत्व से हुई हो. ताजुल मआसिर नामक फ़ारसी तवारीख़ से पाया जाता है, कि हि० स० ५९३ (वि० सं० १२५४=ई० स० ११९७) के सफ़र महीने में क़ुतबुद्दीन ऐबक़ ने अणहिलवाड़े पर चढ़ाई ‡ की, उस समय आबू के नीचे † बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें यह (धारावर्ष) गुजरात की सेना के दो मुख्य सेनापतियों में से एक था. इस लड़ाई में गुजरात की फौज की हार हुई, परन्तु वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७८) में इसी जगह जो लड़ाई हुई उसमें शहाबुद्दीन गोरी घायल × हुआ

+ यह उत्तरी कोंकण का शिलारावंशी राजा मल्लिकार्जुन हो,

‡ यह चढ़ाई गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज (दूसरे, बालमूलराज) के समय हुई थी (देखो ऊपर पृ० १३७).

† यह लड़ाई आबू के नीचे कायद्रां गांव और आबू के बीच हुई, जिसका वृत्तान्त 'ताजुल मआसिर' नामक फारसी तवारीख़ में मिलता है.

× शहाबुद्दीन का यहां पर घायल होना 'ताजुल मआसिर' में और हारकर लौटना 'तबक़ाति नासिरी' नामक फ़ारसी तवारीख़ में लिखा है.

और उसको हारकर लौटना पड़ा था. इस लड़ाई में भी धारावर्ष का लड़ना पाया जाता है. इसके राज्यसमय के १४ शिलालेख और एक ताम्रपत्र ÷ मिला है, जिनमें से सबसे पहिला लेख वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) जेठ सुदि ५ का कायद्रां गांव से और सबसे पिछला वि० सं० १२७६ (ई० स० १२१९) श्रावण सुदि ३ का मकावल गांव से थोड़ी दूरी पर एक छोटे से तालाब की पालपर खड़े हुए संगमर्मर के अठपहलू स्तंभपर खुदा हुआ मिला है. इन लेखों से स्पष्ट है, कि इसने कम से कम ५६ वर्ष राज्य किया हो. यह राजा बड़ा ही पराक्रमी था. उपरोक्त पाटनारायण के वि० सं० १३४४ (ई० स० १२८७) के लेख में इसके पराक्रम के विषय में लिखा है, कि 'धारावर्ष ने एक बाण से तीन भैंसों को मारा था.' इस कथन की साक्षी आबूपर अचलेश्वर के मन्दिर के बाहर मन्दाकिनी नामक बृहत्कुंड के तट पर धनुषसहित खड़ी हुई इस राजा की पत्थर की बनी हुई मूर्त्ति, दे रही है, जिसके आगे पूरे क़द के तीन भैंसे खड़े हुए हैं और जिनके शरीर के आरपार एकेक

÷ धारावर्ष का यह ताम्रपत्र वि० सं० १२३७ (ई० स० ११८०) कार्तिक सुदि ११ का है और दो पत्रोंपर खुदा हुआ है, जो पहिले कड़ी से जुड़े हुए होंगे. वि० सं० १९५८ (ई० स० १९०१) में सिरोही राज्य के सनवाड़ा गांव के रहनेवाले गोरवाल (सहस्र औदीच) ब्राह्मण लादूराम तरवाड़ी ने हमारे पास ये ताम्रपत्र पढ़ने को लाये उस समय ये कड़ी से जुड़े हुए नहीं थे. कड़ी की जोड़ पर राजा धारावर्ष की मुहर लगी हो (बहुधा प्राचीन ताम्रपत्रों की कड़ियों पर मुहर मिल आती है), इस विचार से हमने हाथल के जिस शुकल ब्राह्मण के पास ये थे उसके यहां भी दर्याफ्त करवाया, परन्तु कड़ी का पता न लगा.

छिद्र है (देखो ऊपर पृष्ठ ७४—७५). धारावर्ष की दो राणियां शृंगारदेवी और गीगादेवी (दोनों) नाडोल के चौहान वंशी राजा केल्हण की पुत्रियां थीं, जिनमें से गीगादेवी इसकी पटराणी थी.

धारावर्ष का छोटा भाई प्रल्हादन बहादुर एवं विद्वान् था. उसकी विद्वत्ता की बहुत कुछ प्रशंसा प्रसिद्ध कवि सोमेश्वर ने अपनी रची हुई 'कीर्तिकौमुदी' नामक पुस्तक तथा वस्तुपाल के बनवाये हुए आबू पर के मंदिर की प्रशस्ति में की है. उक्त प्रशस्ति में वह (सोमेश्वर) यह भी लिखता है, कि 'उसने सामंतसिंह (देखो ऊपर पृष्ठ १२२) के साथ की लड़ाई में वीरता बतलाई थी और उसकी तलवार ने गुजरात के राजा की रक्षा की थी'. प्रल्हादन का रचा हुआ 'पार्थपराक्रमव्यायोग'† नामक पुस्तक भी मिली है, जो उसकी लेखनी का उज्वलरत्न है. उसने अपने नाम से 'प्रल्हादनपुर' नामक नगर बसाया था, जो अब 'पालनपुर' नाम से प्रसिद्ध है.

धारावर्ष के पीछे उसका पुत्र सोमसिंह आबू का स्वामी हुआ, जो अपने पिता से शस्त्रविद्या और चचा (प्रल्हादन) से शास्त्रविद्या पढ़ा था, ऐसा सोमेश्वर लिखता है. इसके राज्यसमय आबू पर वस्तुपाल

† संस्कृत में नाट्य (नाटकों) के मुख्य १० प्रकार माने गये हैं, जिनमें से एक 'व्यायोग' कहलाता है. व्यायोग किसी प्रसिद्ध घटना का प्रदर्शक होता है और उसमें युद्ध का प्रसंग अवश्य होना चाहिये, परन्तु वह स्त्री के निमित्त न होना चाहिये. उसमें एक ही अंक, धीरोद्धत वीर पुरुष नायक, पात्रों में पुरुष अधिक और स्त्रियां कम और मुख्य रस रौद्र तथा वीर होते हैं.

ने प्रसिद्ध लूणवसही नामक नेमिनाथ का मंदिर वि॰ सं॰ १२८७ (ई॰ स॰ १२३०) में बनवाया (देखो ऊपर पृ॰ ६४–७०), जिसकी पूजा आदि के लिये इसने बारठ परगने का डवाणी गांव दिया, जो अब डमाणी नाम से प्रसिद्ध है और जहां से मिले हुए वि॰ सं॰ १२९६ (ई॰ स॰ १२३९) श्रावण सुदि ५ के लेख में उक्त मंदिर, तेजपाल व उसकी स्त्री अनुपमादेवी के नामों का उल्लेख है. इसके समय के ४ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से सब से पहिला वि॰ सं॰ १२८७ (ई॰ स॰ १२३०) श्रावण वदि ३ का वस्तुपाल के मन्दिर का और सब से पिछला वि॰ सं॰ १२९३ (ई॰ स॰ १२३६) का उपरोक्त देवखेत्र (देवक्षेत्र) के मन्दिर का है. सोमसिंह ने अपने जीतेजी अपने पुत्र कृष्णराज (कान्हडदेव) को युवराज बना दिया था और उसके हाथ खर्च में नाणा गांव (जोधपुर राज्य के गोडवाड़ इलाके में) दिया था.

सोमसिंह का उत्तराधिकारी कृष्णराज (कान्हडदेव) हुआ, जो प्रतापी और दयालु था. कृष्णराज का पुत्र प्रतापसिंह हुआ, जिसने जैत्रकर्ण को जीतकर चंद्रावती का, जो दूसरे वंश ‡ के अधिकार

‡ सिरोही राज्य के वासा गांव से करीब २ माइल पर कालागरा नामक गांव था, जिसका कुछ भी अंश अब नहीं रहा, परन्तु वहां से एक शिलालेख वि॰ सं॰ १३०० (ई॰ स॰ १२४३) का मिला है, जिसमें चंद्रावती के महाराजाधिराज आल्हणसिंह का नाम है. यह आल्हणसिंह किस वंश का था, इस विषय में उक्त लेख में कुछ भी नहीं लिखा. ऐसी दशा में यहीं

में चली गई थी, उद्धार किया. प्रतापसिंह जिस जैत्रकर्ण से लड़ा था वह शायद मेवाड़ का राजा जैत्रसिंह हो. प्रतापसिंह के ब्राह्मण मंत्री देल्हण ने पाटनारायण के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर उक्त मन्दिर पर ध्वज चढ़वाया, ऐसा वहां के लेख से, जो वि० सं० १३४४ (ई० स० १२८७) ज्येष्ठ शुदि ५ का है, पाया जाता है. प्रतापसिंह † तक की शृंखलाबद्ध वंशावली लेखों से मिलती है. प्रतापसिंह

अनुमान हो सकता है, कि आल्हणसिंह या तो कृष्णराज का पुत्र हो और उसके पीछे उस (कृष्णराज) के दूसरे पुत्र प्रतापसिंह ने राज्य पाया हो, जिससे बड़े भाई का नाम छोड़ प्रतापसिंह को उसके पिता से मिला दिया हो. यदि आल्हणसिंह किसी दूसरे वंश का हो तो यही मानना पड़ेगा, कि उसने कान्हडदेव या उसके पुत्र से चंद्रावती छीन ली हो. एक दूसरा लेख वि० सं० १३२० का अजारी गांव से मिला है. जिसमें महाराजाधिराज अर्जुनदेव का नाम है. उसमें अर्जुनदेव के वंश का कुछ भी परिचय नहीं दिया, संभव है, कि अर्जुनदेव उक्त नाम का बघेल राजा हो. यदि वह बघेल न हो तो हमें यही मानना पड़ेगा, कि वह उपरोक्त आल्हणसिंह का उत्तराधिकारी हो और इसके पीछे प्रतापसिंह चंद्रावती का राजा हुआ हो. जब तक दूसरे लेखों से इन दो राजाओं के वंश का निर्णय न हो तबतक हम उनके विषय में निश्चयरूप से कुछ भी नहीं कह सकते, परन्तु इतना निश्चित है, कि वे इस प्रदेश के राजा थे, चाहें वे परमार हों वा अन्य वंश के.

† उपरोक्त वर्माण गांव के ब्रह्माणस्वामी नामक अपूर्व सूर्यमंदिर के एक स्तंभ पर वि० सं० १३५६ (ई० स० १२९९) जेठ वदि ५ का महाराजकुल विक्रमसिंह के समय का (महाराजकुलश्रीविक्रमसिंहकल्याणविजयराज्ये) लेख खुदा हुआ है. विक्रमसिंह किस वंश का था, यह उसमें नहीं लिखा. 'महाराजकुल' खिताब से उसका राजा होना निश्चित है. वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के गुहिलोतों तथा चौहानो के लेखों में यह खिताब पाया जाता है, जिसके लौकिकरूप 'महारावल' तथा 'महाराव' प्रसिद्ध हैं. संभव है, कि परमारों ने भी उसे धारण

के समय ही जालोर के चौहानों ने आबू से पश्चिम का परमारों का बहुतसा मुल्क दबा लिया था. इसके अन्तिम समय वा इसके पुत्र या वंशज ‡ से वि॰ सं॰ १३६८ (ई॰ स॰ १३११) के आसपास चौहान महाराव लुंभा ने आबू तथा चन्द्रावती नगरी, जो परमारों की राजधानी थी, छीनकर आबू के परमारों के राज्य की समाप्ति की.

किया हो. यदि ऐसा हुआ हो तो विक्रमसिंह का परमार राजा प्रतापसिंह का उत्तराधिकारी होना संभव है.

‡ भाटों की ख्यातों में ऐसा लिखा मिलता है, कि आबू के परमारों में अंतिम राजा हूण नाम का हुआ, जिसकी राणी का नाम पिंगला था. इस पिंगला का एक किस्सा भी लोगों में प्रसिद्ध है, जिसका सारांश यह है, कि "आबू के अंतिम परमार राजा का नाम हूण था, जिसकी राणी पिंगला पतिव्रता थी. अपनी राणी की परीक्षा करने की इच्छा से वह शिकार के बहाने से कुछ दिन तक कहीं दूर चला गया, जहां से सांढणी सवार के साथ राणी के पास अपनी पगड़ी भेजकर यह खबर पहुंचाई, कि राजा हूण शत्रु के हाथ से मारा गया. इसपर राणी पिंगला ने उस पगड़ी को अपनी गोद में रख विलाप करते करते प्राण छोड़ दिया, तो उसकी सखियों ने उसको जला दिया. इस बात की खबर पहुंचने पर राजा को बहुत कुछ पश्चात्ताप हुआ और पागल की नांई वह राणी की चिता की रात दिन परिक्रमा करता और 'हाय पिंगला' ! 'हाय पिंगला' ! करता रहा. अन्त में गोरख (गोरक्ष) नाथ के उपदेश से राणी की तरफ से चित्त हटाकर वैराग्य में मग्न हो संसार छोड़ चला गया, तब चौहानों ने आबू का राज्य ले लिया". हम इस किस्से पर विश्वास नहीं कर सकते.

प्रकरण तीसरा.

चौहान वंश.

चौहान भी इस समय परमारों की नांई अपने को अग्निवंशी प्रकट करते हैं और अपने मूलपुरुष चाहमान या चौहान का ऋषि वशिष्ठ-द्वारा आबू पर्वत पर अग्निकुंड से उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) के पहिले के चाहमान (चौहान) वंशी राजाओं के १०० से अधिक शिलालेख तथा ताम्रपत्र हमारे देखने में आये हैं, जिनमें इनका अग्निवंशी होना कहीं नहीं लिखा. ऐसे ही चौहानों के इतिहास के 'पृथ्वीराजविजय' † तथा 'हंमीरमहाकाव्य' नामक पुस्तकों के कर्ताओं को भी इनके अग्निवंशी होने की कथा

† अबतक 'पृथ्वीराजविजय' की एक ही अपूर्ण हस्तलिखित प्रति कश्मीर से मिली है, जो पूना के ' डेक्कन कालेज ' में रक्खे हुए प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के सर्कारी संग्रह में है. इस पर राजतरंगिणी (द्वितीय खंड) के कर्ता प्रसिद्ध जोनराज की टीका भी है. यह पुस्तक बहुत ही जीर्णावस्था में है और भोजपत्र पर लिखी हुई है. चौहानों के प्राचीन इतिहास के इस अपूर्व ग्रन्थ का जो कुछ अंश बचा है, उसका उद्धार होने की बड़ी ही आवश्यकता है.

मालूम न थी, ऐसा उक्त पुस्तकों से पाया जाता है. इसीसे इनको अग्निवंशी मानने में अब शंका होने लगी है, जिसके मुख्य कारण नीचे लिखे जाते हैं:—

(१) आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर में घुसते हुए बाहर की तरफ दाहिनी ओर सिरोही राज्य पर देवड़ों का राज्य स्थापित करने वाले राव लुंभा का एक शिलालेख वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) का लगा है. उसमें चौहानों की उत्पत्ति के विषय में यह लिखा है, कि 'पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रवंश अस्त होगये तो वत्स ऋषि ने दोष भय से ध्यान किया. वत्स के ध्यान और चन्द्रमा के योग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसने चौतरफ दैत्यों को देखा और उनको अपने शस्त्रों से मार वत्स को सन्तुष्ट किया. यह पुरुष चन्द्र के योग से उत्पन्न होने के कारण चन्द्रवंशी कहलाया.'

(२) टॉड साहिब ने अपने ' राजस्थान ' नामक पुस्तक में चौहानों का गोत्रोच्चार इस तरह लिखा है:—सामवेद, सोमवंश (चन्द्रवंश), माध्यंदिनी शाखा, वत्स गोत्र, पंच प्रवर आदि.

(३) हंमीरमहाकाव्य में, जो ग्वालियर के तंवरवंशी राजा वीरम के दर्बार में रहनेवाले जैनसाधु नयचंद्रसूरि ने वि० सं० १४६० (ई० स० १४०३) के आसपास बनाया, लिखा है, कि "ब्रह्माजी यज्ञ करने के निमित्त पवित्र भूमि की शोध में फिरते थे उस समय उनके हाथ में से पुष्कर (कमल का फूल) गिर गया. जहां

पर कमल गिरा उस भूमि को पवित्र मान वहीं यज्ञ का प्रारम्भ किया. परन्तु राक्षसों का भय होने से उन्होंने सूर्य का ध्यान किया, जिसपर सूर्यमंडल से एक दिव्यपुरुष उतर आया, जिसने यज्ञकी रक्षा की और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ. जिस स्थान पर ब्रह्माजी के हाथ से पुष्कर (कमल) गिरा था वह स्थान पुष्करतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सूर्यमंडल से बुलाया हुआ जो वीरपुरुष आया था वह चाहमान (चौहान) कहलाया और ब्रह्माजी की कृपा से महाराजा बनकर राजाओं पर राज्य करने लगा."

इन प्रमाणों को देखते यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि यदि राव लुंभा के समय में चौहान अग्निवंशी माने जाते थे तो फिर उस वक़ इनको चंद्रवंशी क्यों लिखा ? ऐसे ही टॉडसाहिब ने जो चौहानों का गोत्रोच्चार लिखा है उसमें अग्निवंशियों को चंद्रवंशी क्यों माना ? यदि हम्मीरमहाकाव्य के लिखे जाने के समय इनका अग्निवंशी होना प्रसिद्ध था तो फिर नयचंद्रसूरि को ऊपर दर्ज की हुई क्लिष्ट कल्पना क्यों करनी पड़ी ? उसने सीधा वशिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पन्न होना क्यों न लिखा ? दूसरी बात यह भी है, कि वशिष्ठ के अग्निकुंड से इनकी उत्पत्ति हो तो परमारों की नांई इनका वशिष्ठ गोत्र क्यों नहीं ?.

चौहानों के १०० से अधिक शिलालेख और तांबापत्र मिले हैं. जिनमें कहीं इनको अग्निवंशी नहीं लिखा और न कहीं इनका वशिष्ठ

से सम्बन्ध बतलाया गया. इसके विरुद्ध कई लेखों में इनका वत्सऋषि से सम्बन्ध होना स्पष्ट पाया जाता है, जैसे कि मेवाड़ राज्य के बीजोल्यां गांव के पास के एक चटानपर खुदेहुए चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि॰ सं॰ १२२६ (ई॰ स॰ ११७०) के लेख में चौहानों को वत्स के गोत्र का होना लिखा है और मारवाड़ के सूंधा पहाड़ पर के उपरोक्त देवी के मन्दिर में लगे हुए जालोर के चौहान राजा चाचिकदेव के समय के वि॰ सं॰ १३१६ (ई॰ स॰ १२६३) के लेख में भी चाहमान का वत्स से संबन्ध होना स्पष्ट लिखा है. इस प्रकार वत्सऋषि से इनका सम्बन्ध और वत्स ही गोत्र होने से कह सकते हैं, कि चौहानों का वशिष्ठ से कोई सम्बन्ध नहीं है और न वे अग्निवंशी हो सकते हैं.

अब यह बात दर्याफ्त करने की आवश्यकता है, कि पीछे से इनको अग्निवंशी क्यों कहने लगे और ये कबसे अग्निवंशी कहलाये. इस विषय में इतना कहा जा सकता है, कि वि॰ संवत् १४६० (ई॰ स॰ १४०३) के क़रीब हम्मीरमहाकाव्य लिखागया, जिसके कर्ता को. जो राजाओंके दर्बार में रहने वाला था और जिसने चौहानों के इतिहास का बड़ा ग्रन्थ लिखा, इनके अग्निवंशी होने का हाल मालूम न था. अर्थात् उस समय तक ये अग्निवंशी माने नहीं जाते थे. उसके बाद वि॰ संवत् १६०० (ई॰ स॰ १५४३) के आसपास 'पृथ्वीराज रासा' लिखा गया, जिसके कर्ताने प्रथम इनको अग्निवंशी ठहरा दिया. पृथ्वीराज

रासे के कर्ता को राजपूताने का पुराना इतिहास मालूम नहीं था. काव्यदृष्टि से उसकी पुस्तक प्रशंसनीय हो सकती है, परन्तु उस में जो इतिहास लिखा है उसमें से थोड़ा हिस्सा ही ठीक है बाकी सब कल्पित है. चौहानों के अग्निवंशी माने जाने का शायद यह कारण हो, कि पृथ्वीराजरासे के कर्ता को परमारों की उत्पत्ति की कथा मालूम होनेसे उसमें कुछ फेरफार कर उसने चौहानों को भी अग्निवंशी ठहरा दिया हो अथवा अजमेर का राजा अर्णोराज, जिसको आनाक, आना, आनलदेव और अग्निपाल भी कहते थे, बड़ा प्रतापी हुआ, जिससे संभव है, कि उसके वंशज अनलोत या अनलवंशी कहलाये हों और अनल अग्नि का नाम होने से पृथ्वीराजरासे के कर्ता ने वा किसी अन्य ने इनको अग्निवंशी लिख दिया हो और इसीसे इनका अग्निवंशी होना प्रसिद्ध होगया हो तो आश्चर्य नहीं.

चौहानों का राज्य प्रथम अहिच्छत्रपुर † में रहा. वहां से इनका

---

† उत्तरी पांचालदेश की राजधानी अहिच्छत्रपुर थी, जिसके खंडहर बरेली से २० माइल पश्चिम में रामनगर के पास हैं. ई० स० ६४० (वि० सं० ६९७) के आसपास प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्संग उस नगर में रहा था. वह उसके विषय में अपनी यात्रा की पुस्तक में, जो 'सीयुकी' नाम से प्रसिद्ध है, लिखता है, कि "अहिच्छत्रपुर का राज्य अनुमान ३००० ली (१ ली=⅙ माइल) के घेरे में है. उस नगर में बौद्धों के १० संघाराम (मठ) हैं, जिनमें १००० श्रमण (बौद्ध भिक्षुक, साधु) रहते हैं और विधर्मियों (वेदमतानुयाइयों) के ९ देवमंदिर हैं, जिनमें ३०० पुजारी रहते हैं. यहां के मनुष्य सच्चे और मिलनसार हैं. नगर के बाहर नागसर नाम का तालाब है."

राजपूताने में आना हुआ, जहां पर प्रथम इनका राज्य सपादलक्ष ‡ देश पर रहा और इनकी राजधानी शाकंभरी थी, जो सांभर नाम से प्रसिद्ध है. इसी राजधानी के नाम पर से ये 'शाकंभरीश्वर' (शंभरीराज) कहलाने लगे. सांभर से इनकी एक शाखा ने नाडोल (मारवाड़ के गोडवाड़ इलाके में) में अपना राज्य स्थापित किया, जहांके राजा कीर्तिपाल (कितू) ने जालोर को अपनी राजधानी बनाया. नाडोल के राजाओं के वंश में राजपूताना में सिरोही, बून्दी तथा कोटा के राजा हैं.

सांभर के चौहान राजा अजयदेव (अजयपाल) ने अजमेर बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया, जहां पर वीसलदेव, पृथ्वीराज आदि प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुए. राजपूताने में आने बाद दूसरे राजपूतों की नांई चौहानों की भी स्थान या प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से देवड़ा, सोनगरा, हाड़ा, खीची, सांचोरा, निर्वाण आदि कई शाखें हुईं, जिनमें से देवड़ा + शाखा में सिरोही के राजा हैं. भाटों (बड़वों) की

‡ सपादलक्ष—जोधपुर राज्य का नागोर परगना इस समय 'सवालक' या 'स्वालक' कहलाता है, जो 'सपादलक्ष' का अपभ्रंश है. पहिले सांभर तथा अजमेर के चौहानों के आधीन का सारा देश 'सपादलक्ष' कहलाता था. जिस समय चित्तौड़ के पूर्व के मेवाड़ के इलाकों पर चौहानों का राज्य था उस समय मांडलगढ़ (मेवाड़ में) का किला भी 'सपादलक्ष' में गिना जाता था ऐसा लिखा मिलता है.

+ देवड़ा शाखा की उत्पत्ति के विषय में मतभेद पाया जाता है. सिरोही की ख्यात में लिखा है, कि राव मानसिंह के पुत्र का नाम देवराज था, जिसके नाम पर से उसके

पुस्तकों में चौहान राजाओं की जो वंशावली मिलती है उसमें तेरहवीं शताब्दी के पूर्व होनेवाले राजाओं के नामों में से बहुत ही कम, शुद्ध मिलते हैं, अन्य बहुधा सब ही कृत्रिम † धर दिये हैं, इस

वंशज 'देवड़े' कहलाये. इस लेख को हम सर्वथा विश्वास योग्य नहीं मान सकते, क्योंकि राव मानसिंह जालोर के चौहान राजा समरसिंह का, जिसके समय के शिलालेख वि० सं० १२३९ और १२४२ (ई० स० ११८२ और ११८५) के मिल चुके हैं, पुत्र था. इसलिये उस (मानसिंह) के पुत्र देवराज का (जिसका नाम शिलालेखों में प्रतापसिंह मिलता है) वि० सं० १२६० (ई० स० १२०३) के पीछे होना संभव है और आबू पर अचलेश्वर के मंदिर के बाहर वि० सं० १२२५ और १२२९ (ई० स० ११६८ और ११७२) के लेख हैं, जिनमें देवड़ा नाम मिलता है, जो उपरोक्त ख्यात के कथन को निर्मूल सिद्ध करता है. बूंदी के प्रसिद्ध कवि मिश्रण सूर्यमल्ल के 'वंशभास्कर' में लिखा है, कि माणकराव चौहान के बेटे निर्वाण के वंश में देवट नामी पुरुष हुआ, जिसके वंशज देवड़े कहलाये, परन्तु निर्वाणों के हाल में उसके विरुद्ध यह लिखा है, कि निर्वाणशाखा देवड़ों से निकली है, इसलिये यह भी विश्वास योग्य नहीं है. मूंता नेणसी अपनी ख्यात में, जो देहली के बादशाह औरंगज़ेब के समय संग्रह की गई थी, लिखता है, कि नाडोल के राव लाखणसी के वंश में आसराज (अश्वराज) हुआ, इसके रूप और शौर्य से मोहित होकर देवी उसकी स्त्री होकर रही, जिसके पुत्र देवी के नाम से देवड़े कहलाये. एक दूसरी ख्यात में नाडोल के राव लाखणसी के पुत्र सोहिय (शोभित) के बेटे का नाम देवराज लिखा है, जिसका नाम शिलालेख तथा ताम्रपत्रों से बलिराज मिलता है. उपरोक्त भिन्न भिन्न लिखित प्रमाणों के आधार पर कहा जासकता है, कि देवराज नामक पुरुष से देवड़े कहलाये हों और संभव है, कि अन्तिम लेखानुसार राव लाखण के पौत्र बलिराज का दूसरा नाम देवराज हो, जैसा कि परमार राजा महीपाल का था (देखो ऊपर पृ० १४५) और उसीके नाम से उसके वंशज देवड़े कहलाये हों.

† भाटों (बड़वों) की पुस्तकों में लिखी हुई वंशावलियों में तेरहवीं शताब्दी से पहिले के

लिये हम चौहानों के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र तथा 'पृथ्वीराजविजय' आदि पुस्तकों के आधार पर उनकी वंशावली तथा इतिहास ‡ नीचे लिखते हैं:—

इस वंश का मूलपुरुष चाहमान हुआ, जो लोगों में चौहान नाम से प्रसिद्ध है. इसका ठीक समय मालूम नहीं हुआ. इसके वंश में वासुदेव हुआ, जिसने शाकंभरी (सांभर) का राज्य प्राप्त किया, जिससे उसके वंशज शाकंभरीश्वर (शंभरीराज) कहलाये. इस

अधिकतर नामों को कृत्रिम मानने का कारण यह है, कि उनमें चौहान राजाओं के जो नाम लिखे मिलते हैं, वे शिलालेखों तथा पृथ्वीराजविजय में दिये हुए नामों से नहीं मिलते और शिलालेखों के नाम परस्पर तथा पृथ्वीराजविजय में दिये हुए नामों से बहुधा मिलजाते हैं. दूसरा कारण यह भी है, कि एकही वंश के भाटों की दो भिन्न भिन्न पुस्तकों की नामावली परस्पर भी नहीं मिलती. हमने चौहानों की वंशावली की जांच के लिये वंशभास्कर में दी हुई चाहमान (चौहान) से लगाकर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक की नामावली का (जो बूंदी के बड़वे की पुस्तक से उद्धृत की गई है) सिरोही के बड़वे की पुस्तक की नामावली से मिलान किया तो वंशभास्कर में पृथ्वीराज तक १७३ और सिरोही के बड़वे की पुस्तक में २२८ नाम मिले, जिनमें से केवल ८ नाम परस्पर मिलते हैं बाकी सब नाम दोनों में बिलकुल भिन्न हैं. ऐसी दशा में उनकी नामावली को कृत्रिम ही मानना पड़ता है.

‡ इस पुस्तक में सांभर तथा अजमेर के समस्त चौहान राजाओं की वंशावली तथा इतिहास नहीं लिखा गया, किन्तु जहां से नाडोल की शाखा अलग हुई वहीं तक का लिखा गया है. इसी तरह नाडोल के राजाओं का भी वहीं तक का इतिहास लिखा गया है, जहां से सिरोही की शाखा अलग हुई.

के पीछे सामंतदेव हुआ, जिसके पीछे जयराज †, विग्रहराज, चंद्रराज, गोपेन्द्रराज ‡ और दुर्लभराज क्रमशः राजा हुए. दुर्लभराज के विषय में पृथ्वीराजविजय में लिखा है, कि यह गौडों से लड़ा था. दुर्लभराज का पुत्र गूवक + हुआ, जिसने नागावलोक नामक बड़े राजा की सभा में 'वीर' पद पाया, ऐसा शेखावाटी में 'ऊंचा' नामक पहाड़ पर के हर्षनाथ के मन्दिर में लगे हुए चौहान राजा विग्रहराज (दूसरे) के समय के वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) आषाढ़ सुदि १५ के शिलालेख में लिखा है. भड़ौंच (गुजरात में) पर राज्य करनेवाले

† अणहिलवाड़ा (पाटण) के पुस्तकभंडार से मिली हुई 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' की हस्तलिखित पुस्तक के अंत में चौहानों की वंशावली दी है, जिसमें जयराज के स्थान पर अजयराज नाम है, परन्तु उपरोक्त वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) के बीजोल्यां के लेख तथा पृथ्वीराजविजय में जयराज नाम दिया है.

‡ चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अंत की वंशावली में गोपेन्द्र के स्थान पर गोविन्दराज नाम लिखा है और उसमें यह भी लिखा है, कि उसने सुलतान बेगवरिस को जीता था, परन्तु इस नाम के सुलतान का होना पाया नहीं जाता. संभव है, कि नाम में अशुद्धि हुई हो. हि० सन ९९ (वि० सं० ७६१=ई० स० ७१८) में मुहम्मद बिन कासिमने सिंध पर चढ़ाई कर उसके कितनेक हिस्से पर मुसल्मानों का अधिकार जमा दिया था. उधर से राजपूताने की तरफ मुसल्मानों की चढ़ाइयां भी होने लगी थीं, अतएव संभव है, कि गोविंदराज (गोपेन्द्र) ने किसी मुसल्मान सेनापति को परास्त किया हो.

+ गूवक का नाम पृथ्वीराज विजय में छोड़दिया है, परन्तु उपरोक्त हर्षनाथ के मंदिर के तथा बीजोल्यां के लेख में उसका नाम मिलता है.

चौहान भर्तृवृद्ध (दूसरे) का एक ताम्रपत्र वि० सं० ८१३ (ई० स० ७५६) का मिला है, जिसमें उक्त भर्तृवृद्ध को राजा नागावलोक का सामंत लिखा है. सांभर का चौहान राजा गूवक भी उसी नागावलोक का समकालीन था अतएव इस (गूवक) का वि० सं० ८०० (ई० स० ७४३) के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है. गूवक के पीछे चंद्रराज (दूसरा), गूवक (दूसरा) और चंदनराज क्रम से सांभर के राजा हुए. चंदनराज ने रणखेत में तोमर (तंवर) वंशी राजा रुद्रेण को मारकर जयश्री प्राप्त की, ऐसा उपरोक्त हर्षनाथ के मन्दिर के लेख से पाया जाता है. चंदनराज का उत्तराधिकारी इसका पुत्र वाक्पतिराज हुआ, जिसको बप्पयराज भी कहते थे. इस राजा पर तंत्रपाल ने चढ़ाई की, परन्तु उसको हारकर भागना पड़ा, ऐसा हर्षनाथ के मंदिर के लेख से पाया जाता है. तंत्रपाल किस वंश का था, यह उसमें नहीं लिखा, परन्तु संभव है, कि वह तंवरवंशी हो. वाक्पतिराज के तीन पुत्र सिंहराज, लक्ष्मण और वत्सराज थे, जिनमें से बड़ा सिंहराज अपने पिता के पीछे सांभर के राज्य का स्वामी हुआ. दूसरे लक्ष्मण ने नाडोल में अपना राज्य स्थापित किया, जिसके वंश में सिरोही, बूंदी तथा कोटा के राजा हैं. वत्सराज को जयपुर का परगना (वर्तमान जयपुर से भिन्न) जागीर में मिला था. सिंहराज के वंश में वीसलदेव, पृथ्वीराज आदि कई प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुए, परन्तु उनका संबन्ध सिरोही राज्य से न होने के कारण उनका वृत्तान्त हमने यहां पर

नहीं लिखा (उनकी वंशावली आदि के लिये देखो हिंदी टॉड राजस्थान के ७ वें प्रकरण पर हमारी टिप्पणी नं० ११५, पृ० ३६८ से ४०५ तक).

वाक्पतिराज का दूसरा पुत्र लक्ष्मण राजपूताने में लाखणसी या राव लाखणसी † नाम से प्रसिद्ध है, जिसका दूसरा नाम माणिक्य (माणकराव) हो, ऐसा अचलेश्वर के मंदिर में लगे हुए उपर्युक्त वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) के लेख से, जो टूटा हुआ है, पाया जाता है. इसने अपने बाहुबल से नाडोल के इलाके पर नवीन राज्य स्थापित किया. इसके समय के दो शिलालेख वि० सं० १०२४ और १०३९ (ई० स० ९६७ और ९८२) के कर्नल टॉड साहब को मिले थे, ऐसा उनके 'राजस्थान' से पाया जाता है.

कर्नल टॉड ने लिखा है, " कि चौहानों की एक बड़ी शाखा नाडोल में आई, जिसका पहिला राजा राव लाखण था. उसने वि० सं० १०३९ (ई० सन् ९८२) में नहरवाले (अणहिलवाड़े) के राव से

---

† सिरोही के बडवे (भाट) की पुस्तक में माणिकराज और सिंहराज दोनों का भाई होना लिखा है और लाखणसी को सिंहराज का पुत्र लिखा है, परन्तु नाडोल से मिले हुए वहां के चौहान राव (राजकुल) आल्हणदेव के समय के वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) श्रावण वदि ५ के ताम्रपत्र में स्पष्ट लिखा है, कि शाकंभरी (सांभर) के चौहान वंशी राजा वाक्पतिराज का पुत्र लक्ष्मण नाडोल का राजा हुआ (शाकंभरीनामपुरे पुरासीच्चाहमानान्वयलब्धजन्मा । राजामहाराजनतांह्रियुग्म: ख्यातो वनौ वाक्पतिराजनामा ॥ २ ॥ नड्डूले समभूत्तदीयतनय: श्रीलक्ष्मणो भूपति:), जो अधिक विश्वासयोग्य है.

यह परगना छीन लिया. गज़नी के बादशाह सुबुक्तगीन व उसके पुत्र सुलतान महमूद ने राव लाखण पर चढ़ाई करके नाडोल को लूटा और वहां के मन्दिर तोड़ डाले, लेकिन् चौहानों ने फिर उस पर अपना दख़ल जमालिया. यहां से कई शाखें निकलीं, जिन सब का अन्त देहली के बादशाह अलाउद्दीन खिल्जी के वक्त में हुआ. मालूम होता है, कि नाडोलवालों ने सुल्तान शहाबुद्दीन गौरी की मातहती स्वीकार करली थी, क्योंकि वहां के पुराने सिक्कों पर एक तरफ़ राजा का, और दूसरी तरफ़ सुल्तान का नाम है. राव लाखण अनहिलवाड़ तक का दाण (सायर का महसूल) लेता था और मेवाड़ का राजा भी उसको ख़िराज देता था." कर्नल टॉड का यह लिखना पूरा सही नहीं है. गुजरात के अन्तिम चावड़ा राजा सामन्तसिंह को मारकर सोलंकी मूलराज ने वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६१) में अणहिलवाड़े में अपना राज्य जमाया. उस बखेड़े के समय चौहानों ने नाडोल के इलाके पर अपना अधिकार जमा लिया हो यह संभव है, परन्तु गज़नी के बादशाह सुबुक्तगीन का नाडोल पर चढ़ाई करना लिखा है वह सही नहीं है, क्योंकि सुबुक्तगीन पंजाब से आगे नहीं बढ़ा था. अल्बत्ता सुबुक्तगीन के पीछे सुल्तान महमूद ने सोमनाथ पर चढ़ाई की. उस समय वह अणहिलवाड़े होकर सोमनाथ को गया था, इसलिये संभव है, कि नाडोल के रास्ते से वह गया हो, जैसे कि शहाबुद्दीन गौरी वहां होकर अणहिलवाड़े गया था. ऐसे ही नाडोल के

राजाओं ने शहाबुद्दीन गोरी की मातहती कुबूल नहीं की थी और न कोई उन्होंने अपना सिक्का चलाया. कर्नल टॉड के संग्रह में अथवा प्राचीनसिक्कों के ब्रिटिश म्यूज़ियम आदि में जितने संग्रह आज तक हुए हैं उनमें नाडोल के राजाओं का एक भी सिक्का नहीं है. जिन सिक्कों की एक ओर राजा का और दूसरी तरफ़ सुल्तान का नाम है उनको कर्नल टॉड नाडोल के सिक्के ठहराते हैं, जो ठीक नहीं हैं, क्योंकि वे सिक्के उक्त साहिब से पढ़े ही नहीं गये हों. अवश्य कुछ सिक्के ऐसे मिलते हैं, जिनकी एक तरफ़ 'सुलतान महमद साम' और दूसरी तरफ़ 'श्री हमीर' या 'हमीर' लेख नागरी लिपि में मिलता है और जिनकी एक तरफ़ भाला धारण किया हुआ सवार और दूसरी तरफ़ नंदी बना है. ये सिक्के चौहानों की शैली के हैं, परन्तु ये नाडोल के किसी राजा के नहीं हैं. नाडोल के चौहानों ने अपना सिक्का चलाया होता तो उनका कोई सिक्का ज़रूर मिल आता. ऐसे ही अणहिलवाड़े तक राव लाखणसी का दाण लेना और मेवाड़ के राजा का इसके मातहत होना भी संभव नहीं, क्योंकि राव लाखणसी के समय अणहिलवाड़े में मूलराज सोलंकी और मेवाड़ में शक्तिकुमार व उसका पुत्र अंबाप्रसाद थे, जो स्वतंत्र राजा थे. यह वृत्तान्त शायद भाटों के किसी किस्से के आधार पर लिखा गया हो. राव लाखणसी बड़ा बहादुर हुआ और वर्तमान जोधपुर राज्य का कितना एक हिस्सा इसने अपने आधीन कर लिया था. वि० सं० १०४० (ई० स०

९८३) के पीछे राव लाखणसी अधिक समय तक जीता रहने न पाया हो.

राव लाखणसी के बाद इसका पुत्र शोभित हुआ, जिसको सोही भी कहते थे. शोभित का पुत्र बलिराज हुआ, जिसकी बहादुरी की बहुत कुछ प्रशंसा हुई. सूंधा के लेख से पाया जाता है, कि उसने मुंजकी सेना को हराया था. मुंज मालवे का परमार राजा था. जिसने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी, बलिराज के पुत्र न होने के कारण इसके पीछे इसका चचा विग्रहपाल नाडोल की गद्दी का मालिक हुआ और इसके पीछे इस-का पुत्र महेन्द्र हुआ, जो बड़ा शूरवीर था. सूंधा के लेख में विग्रहपाल का नाम नहीं है और बलिराज के बाद उसके चचेरे भाई महेन्द्र का राजा होना लिखा है, परन्तु उससे क़रीब १०० वर्ष पहिले के ना-डोल के दोनों ताम्रपत्रों में तथा बाली गांव (गोडवाड़ में) से मिले हुए चौहान रत्नपाल के ताम्रपत्र में, जो वि० सं० ११७६ (ई० स० १११९) जेठ वदि ८ का है, विग्रहपाल का राजा होना लिखा है, इसलिये कुछ समय तक इसने अवश्य राज्य किया होगा. उक्त लेख में महेन्द्र के बाद अश्वपाल का नाम है, जो शायद विग्रहपाल के वास्ते हो और ये दोनों नाम उसमें उलट पुलट लिखे गये हों. प्रसिद्ध जैन सूरि हेमाचार्य ने अपने द्व्याश्रयकाव्य में लिखा है, कि " मारवाड़ के राजा महेन्द्र ने अपनी बहिन दुर्लभदेवी का स्वयंवर रचकर दुर्लभ-राज को भी, जो गुजरात के सोलंकी राजा चामुंडराज का पुत्र था,

निमन्त्रण भेजा, जिससे वह अपने छोटे भाई नागराज सहित स्वयं-वर में गया, जहां पर अंगदेश, काशी, अवन्ति, चेदी, कुरू, हूण, मथुरा, विन्ध्य और आंध्र आदि देशों के राजा आये हुए थे. दुर्लभ-देवी ने वरमाला गुजरात के राजा दुर्लभराज को पहिनाई. फिर महेन्द्र ने अपनी दूसरी बहिन लक्ष्मी का विवाह नागराज के साथ कर-दिया ". हेमाचार्य ने यह हाल बहुत विस्तार और बढ़ावे के साथ लिखा है, परन्तु हमने केवल उसका खुलासा दिया है. यदि हेमाचार्य की लिखी हुई यह स्वयंवर की कथा सत्य हो तो महेन्द्र के प्रतापी होने में कोई सन्देह नहीं है.

महेन्द्र के पीछे इसका पुत्र अणहिल्ल राजा हुआ, जिसने गुजरात के राजा भीमदेव (प्रथम) की सेना को परास्त किया, मालवा के राजा भोज के सेनापति साढा को पकड़ कर उसका सिर काटा और अपार सैन्यवाले तुरुष्कों (तुर्कों) को परास्त किया. गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव ने वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२२) में राज्य पाने बाद विमलशाह नामक महाजन को फ़ौज के साथ आबू के परमार राजा धंधुक पर भेजा, उस समय नाडोल के राज्य पर भी भीमदेव की सेना ने हमला किया हो, जिससे अणहिल्ल को भीमदेव की सेना से लड़ना पड़ा हो. सूंधा के लेख में भीम के सैन्य को परास्त करना लिखा है, परन्तु अनुमान होता है, कि अंत में अणहिल्ल को भीमदेव की मातहती स्वीकार करनी पड़ी हो. भीमदेव जब सिंध की चढ़ाई में रुका हुआ था

उस समय भोज ने अपने सेनापति को अणहिलवाड़े पर भेजा, जो उस नगर को लूट कर विजयपत्र लिखवा लेगया था. इसका बदला लेने के लिये भोज के अन्तिम समय भीमदेव ने धारा नगरी पर चढ़ाई की और उधर से चेदीदेश का हैहयवंशी राजा कर्ण भी उसपर चढ़ आया. इन दोनों ने मिलकर धारानगरी को विजय किया था. संभव है. कि इस चढ़ाई के समय अणहिल्ल भीमदेव की सहायता करने को गया हो और भोज के सेनापति को मारा हो. तुर्कों से लड़ने का हाल महमूद ग़ज़नवी से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि वह गुजरात के राजा भीम के वक्त नाडोल व अणहिलवाड़े होकर वि० सं० १०८० (ई० स० १०२४) में सोमनाथ पर चढ़ा था. सूंधा के लेख में महेन्द्र और अण-हिल्ल के बीच 'अहिल' नाम और दर्ज है, परन्तु वह न तो नाडोल के दोनों ताम्रपत्रों में, न उपरोक्त बाली के दानपत्र में और न मूंता नेणसी की ख्यात में पाया जाता है, इसवास्ते हमने उस नाम को छोड़ दिया है. अहिल और अणहिल्ल ये दोनों नाम एकसे हैं.

अणहिल्ल के पीछे इसका पुत्र बालप्रसाद राजा हुआ, जिसने भीमदेव की सेवा में रहकर राजा कृष्णदेव को उसकी क़ैद से छु-ड़ाया. यह कृष्णदेव आबू के परमार राजा धंधुक का छोटा पुत्र होना चाहिये.

बालप्रसाद के बाद इसका भाई जेन्द्रराज नाडोल के राज्य का मालिक हुआ, जिसको जेन्द्रपाल तथा जयसलदेव भी कहते थे. इसने

सांडेराव के पास दुश्मनों को हराया था. इसके समय का एक लेख आउआ गांव (गोडवाड़ में) के कामेश्वर के मंदिर के एक स्तंभ पर खुदा हुआ है, जो वि० सं० ११३२ (ई० स० १०७५) आसोज वदि अमावास्या का है. इसके तीन पुत्र पृथ्वीपाल, जोजल और अश्वराज (आसराज) थे, जिनमें से पृथ्वीपाल इसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसने गुजरात के राजा कर्ण की सेना को हराया और कृषकों का कर छोड़ बड़ा यश पाया, ऐसा सूंधा के लेख में लिखा है, जिससे पाया जाता है, कि यह फिर स्वतंत्र राजा होगया हो. इसके रत्नपाल नामक पुत्र था, जो इसके पीछे राजा होने नहीं पाया हो.

पृथ्वीपाल के पीछे इसका भाई जोजलदेव राजा हुआ, जिसका नाम सूंधा के लेख में 'योजक' लिखा है. नाडोल के एक ताम्रपत्र में पृथ्वीपाल और जोजलदेव इन दोनों भाइयों के नाम छोड़कर तीसरे भाई आसराज के पुत्र ने अपने दादा के पीछे अपने पिता का ही नाम दर्ज कराया है, परन्तु पृथ्वीपाल और जोजलदेव इन दोनों ने राज्य किया ऐसा नाडोल के दूसरे ताम्रपत्र और सूंधा के लेख से स्पष्ट है इतना ही नहीं, किन्तु नाडोल के सोमेश्वर के मन्दिर के एक स्तंभपर जोजलदेव का वि० सं० ११४७ (ई० स० १०९०) वैशाख सुदि २ का लेख खुदा हुआ है, जिसमें उसको 'महाराजाधिराज' लिखा है और उसी दिन का दूसरा लेख सादड़ी गांव (गोडवाड़ में) से मिला है.

जोजलदेव के पीछे इसका छोटा भाई अश्वराज † राजा हुआ, जिसका प्रसिद्ध नाम आसराज था. सूंधा के उपरोक्त लेख में इसका नाम आशाराज लिखा है, जो लौकिक नाम आसराज का ही संस्कृत रूप है. इसके समय के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक वि० सं० ११६७ (ई० स० १११०) चैत्र सुदि १ का सेवाड़ी गांव (गोडवाड़ में) के महावीर स्वामी के मन्दिर में लगा हुआ है और दूसरा वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) का वालीगांव (गोडवाड़ में) के बोल माता के मन्दिर में है. सूंधा के लेख से पाया जाता है, कि 'इस की तलवार ने मालवे में सिद्धाधिराज (सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह) की जो सहायता की उससे प्रसन्न होकर उसने इसको सुवर्णकलश दिया.' सिद्धराज जयसिंह ने मालवा के परमार राजा नरवर्मा तथा उसके पुत्र यशोवर्मा पर चढ़ाई की और १२ बरस तक लड़ने बाद

† जोजलदेव के बड़े भाई पृथ्वीपाल के पुत्र रत्नपाल का एक ताम्रपत्र वि० सं० ११७६ (ई० स० १११९) जेठ वदि ८ का सेवारी गांव (गोडवाड़ में) से मिला है, जिसमें उसको नाडोल का राजा लिखा है, परन्तु नाडोल से मिले हुए वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) के दोनों ताम्रपत्रों में उसका राजाओं में नाम नहीं लिखा और न सूंधा के लेख में उसका नाम है. यदि वह नाडोल का राजा हुआ हो, तो हमको यही मानना पड़ेगा, कि अश्वराज से कुछ समय तक उसने राज्य छीन लिया हो. रायपाल नामक दूसरे राजा के कई लेख नारलाई (गोडवाड़ में) तथा नाडोल से मिले हैं, जो वि० सं० ११८९ से १२०२ (ई० स० ११३२ से ११४५) तक के हैं. इन लेखों से अनुमान होता है, कि रत्नपाल के पीछे रायपाल राजा हुआ हो, परन्तु ये दोनों नाडोल राज्य के एक हिस्से के ही स्वामी हों. रायपाल के दो पुत्र रुद्रपाल और अमृतपाल थे.

धारा नगरी विजय की, उस समय इस (अश्वराज) ने अपनी वीरता बतलाई हो. यह बड़ा ही धर्मनिष्ठ राजा था. इसने अनेक सदाव्रत, तालाब, बाग़, शिवालय, बावड़ियां, प्रपा (प्याऊ), कुएं आदि सैकड़ों धर्मस्थान बनवाये थे, ऐसा उपरोक्त सूंधा के लेख से पाया जाता है. अश्वराज (आसराज) के दो † पुत्रों के नाम कटुक और आल्हण लेखों में मिले हैं, जिनमें से कटुक (कटुकराज) वि० सं० ११६७ और ११७२ (ई०स० १११० और १११५) में विद्यमान था और युवराज पद पाचुका था, परन्तु अश्वराज (आसराज) के पीछे आल्हण राजा हुआ, जिससे पाया जाता है, कि कटुक का देहान्त अपने पिता की विद्यमानता में ही हो गया हो.

आल्हण या आल्हणदेव के समय के केराडू (मारवाड़ में) से मिले हुए वि० सं० १२०९ (ई० स० ११५३) माघ वदि १४ के लेख से पाया जाता है, कि सोलंकी राजा कुमारपाल का यह सामंत था. यह अपने पिताकी नांई वीर पुरुष था. सूंधा के लेख में इसके विषय में लिखा है, कि 'गुजरात के राजा (कुमारपाल) ने पग पग पर इसकी सहायता की और सौराष्ट्र में इसने विजय प्राप्त की तथा नाडोल में शिवमन्दिर बनवाया.' सौराष्ट्र (सोरठ) के मेहर (मेर) राजा समर

† मूंता नेणसी ने आल्हण के ४ पुत्र होना लिखा है और तीन के नाम दिये हैं (माणकराव, मोकल और आल्हण) चौथा कटुक होगा. इस माणकराव के वंश में बूंदी तथा कोटा के चौहान हैं.

(सौसर) पर कुमारपाल ने अपने प्रधान उदयन को भेजा, परन्तु वह उसके साथ की लड़ाई में मारा गया और पीछे से समर पर विजय प्राप्त हुई, जो इस (आल्हण) की वीरता से ही हुई हो. यह लड़ाई वि० सं० १२०५ (ई० स० ११४८) के आसपास हुई होगी. आल्हण ‡ के समय अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (चौथे) अर्थात् वीसलदेव ने नाडोल, पाली तथा जालोर पर चढ़ाई कर इन शहरों को बर्बाद किया. ऐसा उपर्युक्त बीजोल्यां के लेख से पाया जाता है. इसकी राणी अन्नल्लदेवी राठौड़ सहुल की पुत्री थी, जिससे तीन पुत्र केल्हण, गजसिंह और कीर्तिपाल (कीतू) हुए, जिनमें से कीर्तिपाल को इसने नारलाई के ताल्लुक के १२ गांव जागीर में दिये थे. इसके राज्य समय के तीन ताम्रपत्र तथा एक शिलालेख मिला है, जिनमें से सबसे पहिला वि० सं० १२०९ (ई० स० ११५३) माघ वदि १४ का (केराड़ू का लेख) तथा सबसे पिछला वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) श्रावण वदि १५ (अमावास्या) का (बामणेरा से मिला हुआ ताम्रपत्र) है. इसके उत्तराधिकारी केल्हणदेव का सबसे पहिला लेख वि०

‡ आल्हण का वि० सं० १२०५ (ई० स० ११४८) के आसपास से लगाकर वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) के अंत के आसपास तक और अजमेर के चौहान राजा वीसलदेव का वि० सं० १२०८ (ई० स० ११५१) के आसपास से लगाकर वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) तक राज करना पाया जाता है, इससे वीसलदेव की नाडोल आदि पर की चढ़ाई आल्हणदेव के समय ही होनी चाहिये.

सं० १२२१ (ई० स० ११६५) माघ वदि २ का सांडेराव (गोडवाड़ में) से मिला है, जिससे उक्त दोनों संवतों के बीच अर्थात् वि० सं० १२२० (ई० स० ११६४) के अन्त के आसपास आल्हणदेव का देहान्त और केल्हण की गद्दीनशीनी होनी चाहिये.

केल्हण ने भिलिम नामक राजा के तथा तुरुष्कों (तुर्कों) के सैन्य को हराया और सोमेश्वर के मन्दिर में (नाडोल में) सुवर्ण का तोरण बनवाया, ऐसा सूंधा के लेख से पाया जाता है. तुरुष्कों अर्थात् मुसल्मानों के सैन्य को हराना लिखा है, जो शहाबुद्दीन गोरी से संबंध रखता हो. वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७८) में शहाबुद्दीन गोरी ने अणहिलवाड़े पर चढ़ाई की उस वक्त आबू के नीचे कायद्रां गांव के पास बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें वह घायल हुआ और उसे हारकर लौटना पड़ा था, ऐसा 'ताजुल मआसिर' तथा 'तबकातिनासिरी' नामक फ़ारसी तवारीखों में लिखा है (देखो ऊपर पृ० १३७ तथा १५१-५२). केल्हण गुजरात के सोलंकियों का सामंत होने से गुजरात की सेना के शामिल हुआ होगा. इसके राज्यसमय के २ ताम्रपत्र और ६ शिलालेख मिले हैं, जिनमें सब से पहिला वि० सं० १२२१ (ई० स० ११६५) माघ वदि २ का सांडेराव का उपर्युक्त लेख तथा सबसे पिछला वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९३) माघ सुदि १० का पालड़ी गांव (सिरोहीराज्य में) का है. केल्हण के सब से छोटे भाई कीर्तिपाल (कीतू) ने अपने बाहुबल से जालोर का क़िला छीनकर अपना अलग राज्य स्थापित

किया. यहां से नाडोल के चौहानों की दो शाखें हुईं, परन्तु जालोर की छोटी शाखवालों ने प्रबल होकर बड़ी शाख का राज्य थोड़े समय बाद अपने राज्य में मिला लिया केल्हण के पीछे उसका पुत्र जयतसिंह † नाडोल के राज्य का स्वामी बना. इसकी युवराजगी के समय का एक शिलालेख भीनमाल के जगस्वामी के मन्दिर में लगा हुआ है, जो वि० सं० १२३९ (ई० स० ११८२) आश्विन वदि १० का है और जिसमें महाराजपुत्र जयतसिंहदेव का वहां पर राज्य होना लिखा है. दूसरा लेख सादड़ी (गोडवाड़ में) गांव में कचहरी से उत्तर के शिवालय में लगा हुआ है, जो वि० सं० १२५१ (ई० स० ११९४) आषाढ़ सुदि ११ का है. उसमें जयतसिंह को महाराजाधिराज तथा नाडोल का राजा लिखा है, जिससे स्पष्ट है, कि उक्त संवत् के पूर्व केल्हण का देहान्त होचुका था और उस समय जयतसिंह राजा था.

जयतसिंह के बाद सामंतसिंह के वि० सं० १२५६ और १२५८ (ई० स० ११९९ और १२०१) के लेख मिले हैं. सामंतसिंह जयतसिंह का उत्तराधिकारी होना चाहिये. वि० सं० १२५८ (ई० स० १२०१) के बाद नाडोल का राज्य जालोर के राज्य में मिल गया.

केल्हण के राज्यसमय उसका सबसे छोटा भाई कीर्तिपाल, जो

† पालड़ीगांव के उपर्युक्त लेख में केल्हण को नाडोल का राजा और जयतसिंह को उसका पुत्र लिखा है. (ॐ सं १२४०. वर्षे माघसुदि १० गुरौऽद्येह (रात्रौ)ह नडूले महाराजाधिराजश्रीकेल्हणदेवराज्ये तत्पुत्रराजश्रीजयतसीहदेवो विजयी..................)

राजपूताने में कीतू नाम से प्रसिद्ध है, जालोर का राजा हुआ. इसके विषय में सूंधा के लेख में लिखा है, कि 'इसने किरातकूट (कराडू) के राजा आसल को मारा, कासहृद (कायद्रां) की लड़ाई में मुसल्मानों को जीता और नाडोल के इस राजा ने जावालिपुर (जालोर) को अपना निवासस्थान बनाया.' कायद्रां की लड़ाई वही है, जिसका वर्णन ऊपर केल्हण के वृत्तान्त में किया गया है. यह अपने बड़े भाई के साथ मुसल्मानों से लड़ने को गया हो. नाडोल नगर समानभूमि पर बसा हुआ होने और कई बार टूट जाने से नष्टसा होगया था और वहांपर लड़ाई के योग्य ऊंची जगह न होने के कारण इस राजा ने जालोर को छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया. जालोर के पहाड़ का नाम सुवर्णगिरि (सोनलगिरि) होने के कारण इसके समय से जालोर के चौहान सोनगरे कहलाये. जालोर पर पहिले परमारों का राज्य था (देखो ऊपर पृ० १४८ का नोट). मूंता नेणसी लिखता है, कि 'कीतू बड़ा राजपूत हुआ. उसके समय जालोर का राजा परमार कुंतपाल था और सिवाणे का स्वामी परमार वीरनारायण था. कुंतपाल का मंत्री दहिया ‡ था, जिसको फोड़कर कीतू ने जालोर तथा सिवाणा (मारवाड़ में) छीन लिया.' कीर्तिपाल (कीतू) ने जालोर पर अपना अधिकार किस संवत् में जमाया यह मालूम नहीं हुआ.

---

‡ दहिया—राजपूतों की एक कौम है. सिरोहीराज्य में केर गांव का ठाकुर दहियो राजपूत है, मारवाड़ में जालोर के पास दहियों की जागीरें हैं.

कीर्तिपाल के पीछे इसका पुत्र समरसिंह जालोर का राजा हुआ, जिसने कनकाचल अर्थात् सोनलगिरि (जालोर के पहाड़) पर प्राकार (कोट) बनवा कर उसकी बुर्जों पर नाना प्रकार के लड़ाई के यन्त्र जमवाये. सोमवती अमावास्या को सुवर्ण का तुलादान किया और अपने नाम से 'समरपुर' नामक शहर बसाकर उसको बगीचों से रमणीय बना दिया, ऐसा सूंधा के लेख से पाया जाता है. इससे अनुमान होता है, कि कीर्तिपाल जालोर को विजय कर थोड़े ही बरसों बाद मर गया हो, जिससे उस किले को मज़बूत बनाने का काम उसके पुत्र समरसिंह ने किया हो. इसकी बहिन रूदलदेवी ने जालोर में दो शिवालय बनवाये. इसके दो पुत्रों † के नाम उदयसिंह और मानसिंह शिलालेखों में मिलते हैं, जिनमें से मानसिंह को आबू पर के अचलेश्वर के मन्दिर में लगे हुए उपर्युक्त वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) के लेख में उदयसिंह का बड़ा भाई ‡ लिखा है, परन्तु सिरोही के बड़वे की पुस्तक में छोटा भाई होना लिखा है, जो अधिक विश्वास योग्य है, क्योंकि जालोर का राजा उदयसिंह ही हुआ था. समरसिंह के राज्यसमय के दो शिलालेख जालोर के तोपखाने में लगे हुए हैं, जिनमें से एक वि० सं०

† गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे) की राणी लीलादेवी, जिसको चाहुमान राणक समरसिंह की पुत्री लिखा है, शायद इसी समरसिंह की पुत्री हो.

‡ समरसिंहसुतौ द्वौ सिंहशावाविवानुगौ । तयोरुदयसिंहोभूद्भ्राता राज्यधुरंधरः । १२ । यो वै परो शौर्यगुणैर्गरिष्ठस्तस्यात्मजो मानवसिंहनामा ।

१२३६ (ई० स० ११८२) वैशाख सुदि ५ का और दूसरा वि० सं० १२४२ का है.

समरसिंह के बाद इसका पुत्र उदयसिंह जालोर के राज्य का स्वामी हुआ, जो बड़ा ही पराक्रमी राजा था. इसने नाडोल का सारा राज्य अपने राज्य में मिलाकर ‡ जालोर को विस्तीर्ण राज्य बना दिया. इसके आधीन नाडोल, जालोर, मंडोर, बाहड़मेर, सुराचन्द्र, राटहृद, रामसेण, श्रीमाल (भीनमाल), रत्नपुर और सत्यपुर (साचोर) आदि देश (इलाके) थे, ऐसा सूंधा के लेख से पाया जाता है. यह गुजरात के राजा भीमदेव से स्वतन्त्र होगया था. मुसल्मान बादशाह शहाबुद्दीन गोरी व कुतुबुद्दीन ऐबकने हिन्दुओं पर जो अत्याचार किया था उसका वैर लेने का विचार इस वीर राजा के हृदय में अंकुरित हो रहा था इसलिये इसने मौका पाकर मुसल्मानों पर हमला करना शुरू किया. जिस पर दिल्ली के सुल्तान शमसुद्दीन अल्तिमश ने जालोर पर बड़ी सेना के साथ चढ़ाई की, जिसका हाल हसननिज़ामी ने अपनी रची हुई तवारीख 'ताजुलम आसिर' में इस तरह दिया है, कि—"हि० स० ६०७ (वि० सं० १२६७=ई० स० १२१०) में शमशुद्दीन अल्तिमश हिन्दुस्तान का सुल्तान हुआ. जब उसको यह खबर पहुंची, कि मुस-

‡ उदयसिंह ने नाडोल का राज्य अपने राज्य में कब मिलाया इसका ठीक संवत् मालूम नहीं हुआ, परन्तु वहां के अंतिम राजा सामंतसिंह के शिलालेख वि० सं० १२५८ (ई० स० १२०१) तक के मिले हैं, अतएव उक्त संवत् के बाद किसी समय यह घटना हुई होगी.

ल्मानों ने जो ख़ून बहाया है उसका बदला लेने के लिये जालोर वाले तय्यार हुए हैं, इस पर वह बड़ी फ़ौज के साथ जालोर के क़िले पर चढ़ा, जहां का राजा उदेशाह (उदेसिंह) क़िले में रहकर लड़ने लगा, परन्तु अन्त में क़िला विजय हुआ. उदेसिंह ने उसकी आधीनता स्वीकार की और १०० ऊंट व २० घोड़े ख़िराज में दे सुलह करली. जालोर पर इसके पहिले मुसल्मानों की चढ़ाई नहीं हुई थी. सुल्तान जालोर से दिल्ली को लौटा." हसननिज़ामी जालोर का क़िला फ़तह होना लिखता है, परन्तु सुंधा के लेख में लिखा है, कि उदयसिंह ने तुर्कों के बादशाह का गर्व गंजन कर दिया था और मूंता नेणसी लिखता है, कि उदयसिंह पर सुल्तान ने चढ़ाई की थी, परन्तु उसमें उसको भागना पड़ा था. इनमें से किसका लिखना ठीक है, इसका निर्णय करना हम पाठकों पर छोड़ देते हैं, परन्तु इतनी बात ध्यान में रखने की है, कि हसननिज़ामी जालोर के क़िले के लूटने या वहां के हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ने का कुछ भी हाल नहीं लिखता, सिर्फ़ १०० ऊंट व २० घोड़े लेकर बादशाह का लौटना लिखता है, जिससे इतना तो संभव है, कि यदि सुल्तान ने जालोर का क़िला फ़तह भी किया हो तो वह फ़तह नाम मात्र की थी और वह जालोर वालों को कमज़ोर करने नहीं पाया था. उदयसिंह ने सिंधुराज † को मारा और जालौर में २ शिवालय बनवाये थे. यह भारत आदि ग्रन्थों का ज्ञाता था. इसकी राणी

† यह सिंधुराज कहां का था यह मालूम नहीं होसका.

प्रल्हादनदेवी से चाचिगदेव और चामुंडराज नामक दो पुत्र हुए. इस राजा के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० १२६२ से १३०६ (ई० स० १२०५ से १२४९) तक के हैं. इसके पीछे चाचिगदेव ‡ सामन्तसिंह + और कान्हड़देव क्रमशः जालोर के स्वामी हुए. कान्हड़देव के समय देहली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर पर चढ़ाई भेज उसको विजय किया. इस लड़ाई में कान्हड़देव तथा उसका पुत्र वीरमदेव मारा गया और कान्हड़देव का भाई मालदेव ही बचने पाया. कान्हड़देव के साथ जालोर के चौहान राज्य की समाप्ति हुई. यह घटना तारीख फ़रिश्ता के लेखानुसार हि० स० ७०९ (ई० स० १३०९=वि० सं० १३६६) में और मूंता नेणसी के लेखानुसार वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) वैशाख सुदि ५ को हुई.

जालोर के उपरोक्त राजा समरसिंह का पुत्र और उदयसिंह का भाई × मानसिंह † हुआ, जिसके वंश में सिरोही के वर्तमान

‡ चाचिगदेव के राज्यसमय के शिलालेख वि० सं० १३१९ से १३३३ (ई० स० १२६२ से १२७६) तक के मिले हैं.

+ सामन्तसिंह के समय के शिलालेख वि० सं० १३३९ से १३५९ (ई० स० १२८२ से १३०२) तक के मिले हैं.

× आबू पर के अचलेश्वर के मन्दिर में लगे हुए वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) के शिलालेख में मानसिंह को उदयसिंह का बड़ा भाई लिखा है. यदि ऐसा हो तो हमें यही मानना पड़ेगा, कि उदयसिंह ने अपने बड़े भाई मानसिंह से जालोर का राज्य छीन लिया होगा.

† मानसिंह के अधिकार में कोनसा इलाक़ा था यह जाना नहीं गया.

राजकर्ता हैं. शिलालेखों में मानसिंह के स्थान पर मानवसिंह और महणसिंह भी लिखा हुआ मिलता है और लोगों में इसका नाम महणसी प्रसिद्ध है. इसका पुत्र प्रतापसिंह † और उसका बीजड हुआ, जिसको दशस्यंदन (दशरथ) भी कहते थे. इसके समय का एक शिलालेख वि० सं० १३३३ (ई० स० १२७७) फाल्गुन वदि ६ का सिरोही राज्य के टोकरां गांव से, जो आबू के पश्चिम में आबू के नीचे ही है, मिला है, जिससे पाया जाता है, कि उस वक्त तक इसने आबू से पश्चिम का कितनाक मुल्क परमारों से छीन लिया होगा. बीजड की स्त्री नामल्लदेवी थी, जिससे ४ पुत्र लावण्यकर्ण, लुंढ (लूंभा) लक्ष्मण, और लूणवर्मा (लूणा) हुए. लावण्यकर्ण का देहान्त अपने पिता के सामने ही हो गया था, जिससे इसका छोटा भाई लुंभा अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ. महाराव लूंभाने परमारों से आबू तथा चन्द्रावती छीनकर चौहानों का नया राज्य स्थापित किया, जो इस समय ' सिरोहीराज्य ' नाम से प्रसिद्ध है.

---

† सिरोही के बड़वे की पुस्तक में प्रतापसिंह के स्थान पर देवराज नाम लिखा है और इसी के नाम पर से चौहानों की देवड़ा शाखा की उत्पत्ति होना लिखा है, जो मानने योग्य नहीं है (देखो ऊपर पृ० १६२–१६३ का नोट).

चौहानों का वंशवृक्ष (चाहमान से लगाकर महाराव लुंभा तक).

चाहमान (के वंश में).

- १ वासुदेव (सांभर का राजा)
  - २ सामंतराज
    - ३ जयराज
      - ४ विग्रहराज
        - ५ चंद्रराज
        - ६ गोपेन्द्रराज
          - ७ दुर्लभराज
            - ८ गूवक
              - ९ चन्द्रराज
                - १० गूवक (दूसरा)
                  - ११ चंदनराज
                    - १२ वाक्पतिराज
                      - १३ सिंहराज (सांभर व अजमेर की शाखा)
                        - १४ विग्रहराज (वि० सं० १०३०)
                      - १३ लक्ष्मण (नाडोल की शाखा) (वि० सं० १०२४-१०३९)
                        - १४ शोभित
                          - १५ बलिराज
                        - १६ विग्रहपाल
                          - १७ महेन्द्र
                            - १८ अणहिल्ल
                              - १९ बालप्रसाद
                              - २० जेन्द्रराज
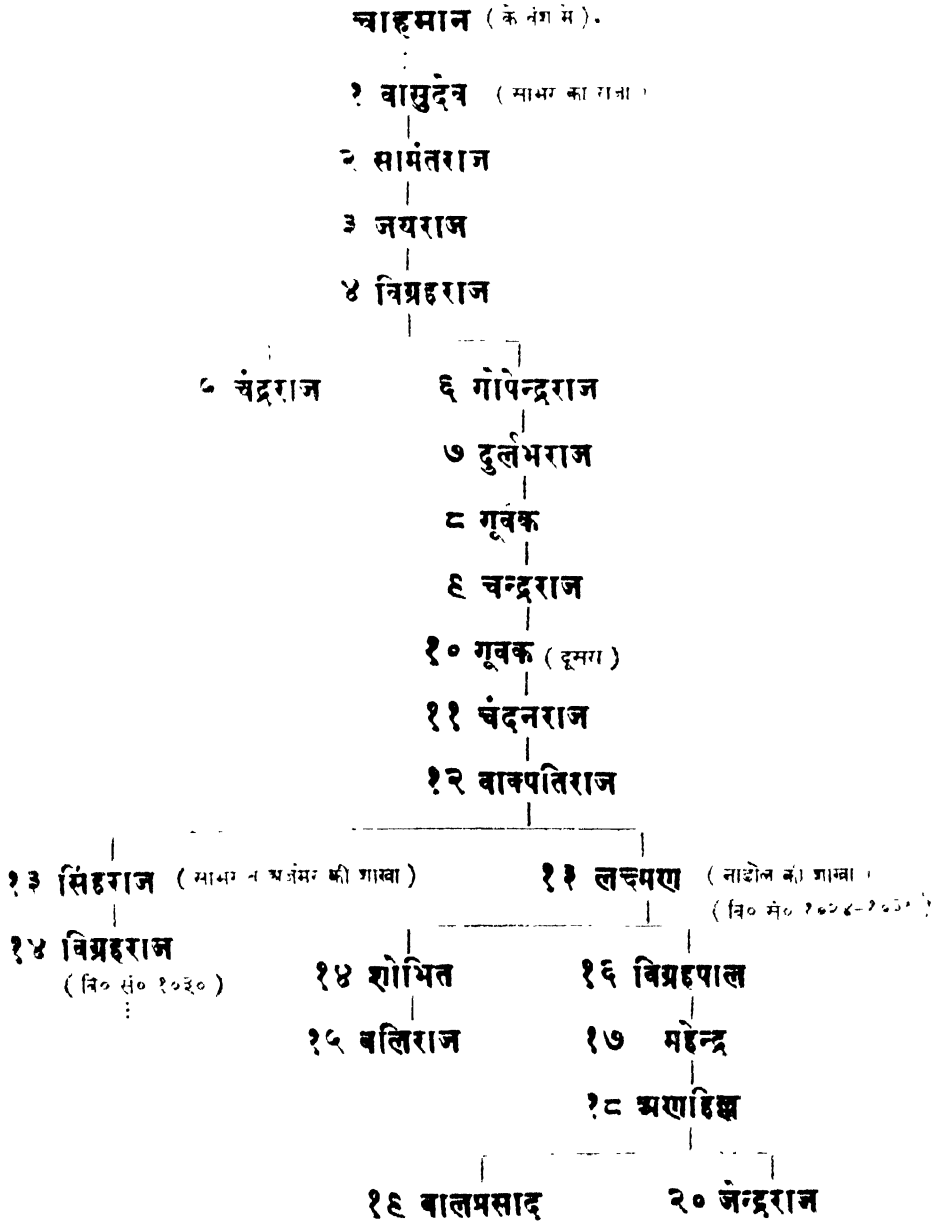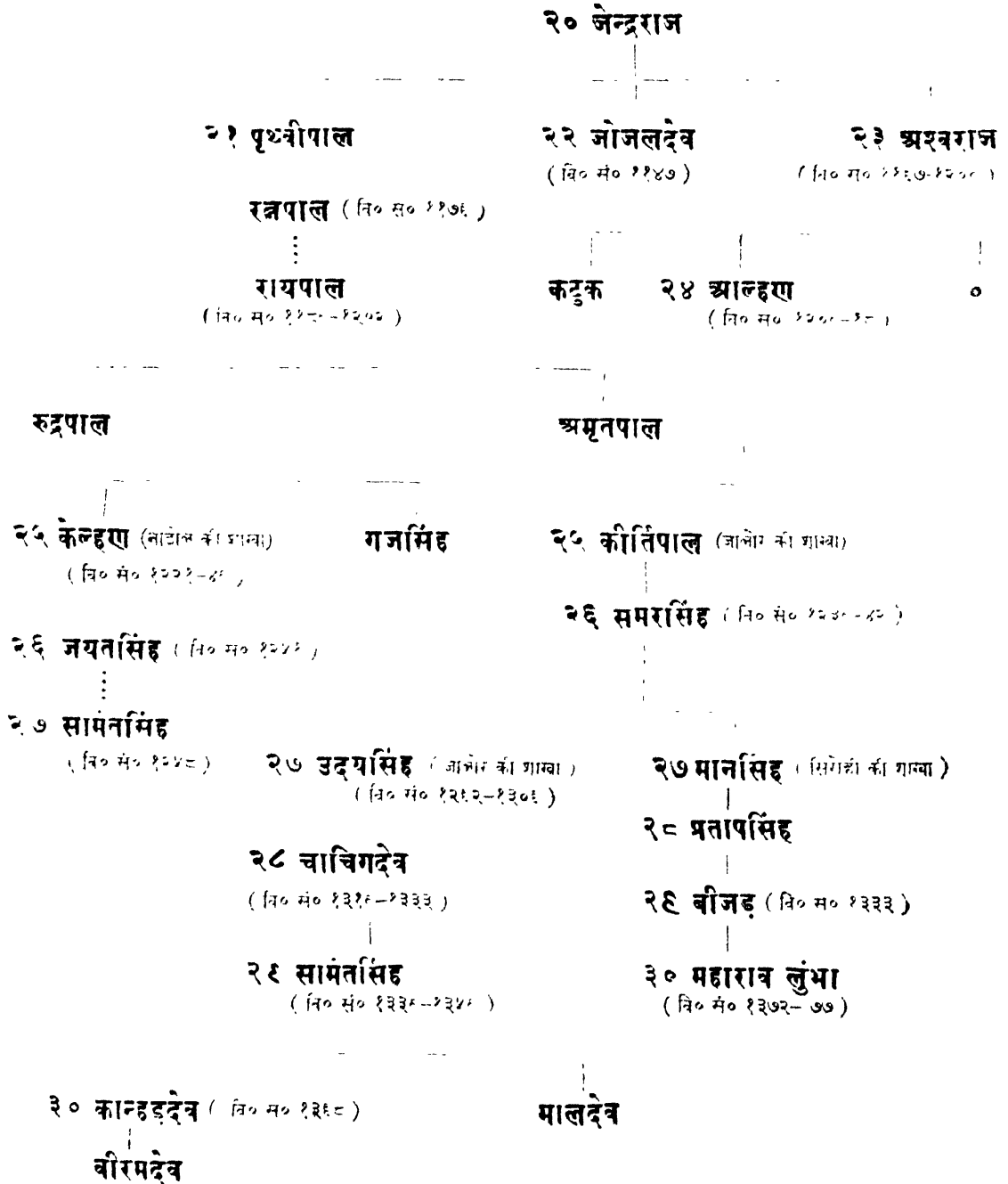
इस वंशवृक्ष में राजाओं के नाम तथा उनका क्रम अंकों से बतलाया गया है.

प्रकरण चौथा.

महाराव लुंभा से महाराव मानसिंह तक का वृत्तान्त.

महाराव लुंभा आबू के राज्य पर, जो इस समय 'सिरोही-राज्य' के नाम से प्रसिद्ध है, चौहानों (देवड़ों) का राज्य स्थापित करनेवाले हुए. आबू पर के अचलेश्वर के मंदिर में लगे हुए इन्हीं के समय के वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) के शिलालेख में लिखा है, कि 'इन्होंने अपने प्रताप से चंद्रावती तथा अर्बुद (आबू) का दिव्यदेश प्राप्त किया.' यह घटना वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) के आसपास ‡ हुई. इन्होंने आबू का राज्य किस परमार राजा से छीना इस विषय में लेखों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं मिलता. मूंता

‡ मूंता नेणसी की ख्यात में इस घटना का वि० सं० १२१६ (ई० स० ११६०) माघ-बदि १ का होना लिखा है, जो सर्वथा असंभव है, क्योंकि उक्त संवत् तक तो चौहानों का जालोर पर अधिकार भी नहीं हुआ था और उस समय नाडोल का राजा आल्हण था. सिरोही के बड़वे की पुस्तक में वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) लिखा है, जो ठीक जचता है.

नेणसी की ख्यात तथा बड़वों की पुस्तकों में उसका नाम हूण लिखा है. इस विषय में यह कथा प्रसिद्ध है, कि इन देवड़ों के पास राज्य न था, जिससे वे दूसरों का राज्य किसी बहाने से लेने के उद्योग में थे और आबू की तलहटी में आ रहे थे, जहां पर इनको एक चारण मिला, जिससे इन्होंने कहा, कि हमारे २५ लड़कियां कुँवारी हैं, उनके लिये वर नहीं मिलते. चारण ने कहा, कि आबू का राजा हूण परमार है, जिसका कुटुंब बहुत बड़ा है और उसके कई भाई बेटे कुँवारे हैं उनसे क्यों नहीं परणा देते ? जिसपर इन्होंने कहा, कि वह बड़ा राजा है और हम थोड़ीसी जागीर के मालिक हैं, वह हमारी बेटियां कैसे लेगा. चारण ने कहा, कि इसका बन्दोबस्त मैं कर आता हूं. फिर उसने आबू पर जाकर सारा हाल राजा से कहा, जिसपर एक पुरुष बोल उठा, कि ये लोग नाडोल से मुल्क दबाते हुए चले आते हैं, इसवास्ते इनके साथ संबन्ध सोच विचार कर करना चाहिये. राजा हूण ने उस चारण से कहा, कि अगर पांचों भाइयों में से (ख्यातों में महाराव बीजड़ के ५ बेटे होना लिखा है) एक भाई आबू पर हमारे पास ओल में चला आवे तो हम शादी करने को चलेंगे. चारण ने इनके पास आकर वह हाल कहा, जिस पर महाराव लुंभा खुद उस चारण के साथ ओल में गये. चौहानों ने २५ जवान लड़कों को लड़कियों के कपड़े पहिनाकर तय्यार किया और उनको यह समझा दिया, कि फेरे के वक्त परमारों को एक साथ कटारों से मार डालना. परमारों के २५

दूल्हे बरात के साथ ब्याहने आये तो चौहानों ने उनका बड़ा सत्कार किया और सबको खूब शराब पिलाकर ग़ाफ़िल कर दिया. फिर दूल्हों को भीतर लेगये और बरातियों को पड़दे के बाहिर रक्खा. भीतरवालों को तो उन लड़कों ने, जो दुलहिन के भेष में थे, मारडाला और बाहिरवाले चौहानों ने बरातियों में से एकको भी जीता न छोड़ा. इस तरह सब परमार, चौहानों के हाथ से मारेगये. फिर एक राजपूत आबू पर पहुंचा. उसवक्त महाराव लुंभा आबू के राजा से बातचीत कर रहे थे. इन्होंने उससे पूछा, कि शादी में यश किसको मिला. उसने उत्तर दिया, कि चौहानों को. यह सुनते ही इन्होंने राजा हूण पर हमला कर उसको वहीं मारडाला. इस प्रकार चौहानों के हाथ से आबू के परमारों का अंत हुआ. यह घटना आबू के नीचे बाड़ेली गांव में हुई बतलाते हैं. हम इस कथा पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि परमारों का राज्य उस समय कमज़ोर होचुका था और टोकरां के शिलालेख से, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, स्पष्ट पाया जाता है, कि वि॰ सं॰ १३३३ (ई॰ स॰ १२७६) में चौहान आबू की पश्चिम का उक्त पहाड़ के नीचे तक का इलाक़ा दबा चुके थे और दिन दिन वे आगे बढ़ते रहे होंगे. इससे संभव है, कि परमार अपना राज्य बचाने के लिये इनसे लड़े हों और लड़ाई में मारे गये हों.

आबू पर महाराव लुंभा के समय के ३ शिलालेख मिले हैं, जिनमें से दो विमलशाह के देलवाड़े के मंदिर में और तीसरा अच-

लेश्वर के मंदिर में है. विमलशाह के मंदिर के लेख वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१६) चैत्र वदि ८ और १२७३ (ई० स० १२१७) चैत्र वदि .... के हैं और अचलेश्वर के मंदिर का लेख वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) वैशाख सुदि ८ का है. महाराव लुंभा ने अचलेश्वर के मंदिर के मंडप का जीर्णोद्धार कराया और उक्त मन्दिर में अपनी व अपनी राणी की मूर्त्तियां स्थापित कीं तथा हेटूंजी गांव, जो आबू पर है, अचलेश्वर के मन्दिर के अर्पण किया. इनका मुख्य मंत्री साह देवसीह था. संस्कृत लेखों में इनके नाम लूणिग, लुंढ, लुंढिग, लुंढागर और लुंभ मिलते हैं. इनके दो पुत्रों के नाम तेजसिंह और तिहुणाक विमलशाह के मन्दिर में लगे हुए वि० सं० १३७८ (ई० स० १३२१) के लेख में मिलते हैं. वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) के अन्त के आसपास इनका स्वर्गवास हुआ और इनके उत्तराधिकारी इनके पुत्र तेजसिंह हुए.

महाराव तेजसिंह की राजधानी चंद्रावती नगरी थी. इनके समय के तीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक वि० सं० १३७८ (ई० स० १३२१) जेठ सुदि ६ का आबू पर विमलशाह के मंदिर में लगा हुआ है, दूसरा वि० सं० १३८७ (ई० स० १३३१) माघ सुदि का अचलेश्वर के मंदिर में और तीसरा वि० सं० १३६३ (ई० स० १३३६) का है. इन्होंने झावटूं (झांवटूं), ज्यातुली और तेजलपुर † ये तीन

† इस समय तेलपुर कहलाता है. यह गांव गिरवर से क़रीब २ माइल उत्तर-पूर्व में है.

गांव वशिष्ठ के मंदिर के अर्पण किये थे. वि० सं० १३९३ (ई० स० १३३६) में ‡ इनका स्वर्गवास हुआ.

महाराव तेजसिंह के पीछे इनके पुत्र महाराव कान्हड़देव आबू के राज्य के स्वामी हुए. इनके राज्यसमय आबू पर का प्रसिद्ध वशिष्ठ का मंदिर नया बना, जिसको इन्होंने वीरवाड़ा गांव भेट किया. इनकी पत्थर की बनी हुई मूर्त्ति आबू पर अचलेश्वर के मंदिर के सभामंडप में रक्खी हुई है, जिसके गले में दो लड़ी कंठी (मोतियों की हो), दोनों हाथों में कड़े और भुजबंध, गले में समेटा हुआ दुपट्टा (जिसके दोनों किनारे घुटनों तक लटकते हुए हैं), लटकती हुई धोती पर कमरबंधा बंधा हुआ है (जिसमें कटार लगा हुआ है), सिरपर केश और गरदन से नीचे तक डाढ़ी है. ये चिन्ह उस समय की पोशाक आदि के सूचक हैं. कान्हड़देव के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें से पहिला वि० सं० १३९४ (ई० स० १३३७) वैशाख सुदि १० का आबू पर वशिष्ठ के मंदिर में और दूसरा वि० सं० १४०० (ई० स० १३४३) का उपर्युक्त कान्हड़देव की मूर्त्ति के नीचे खुदा हुआ है. कान्हड़देव के पीछे सामन्तसिंह राजा हुए, जिन्होंने वशिष्ठ के मंदिर को लुहुली, छापुली (सापोल) और किरणथला

‡ महाराव तेजसिंह का सबसे पिछला शिलालेख वि० सं० १३९३ (ई० स० १३३६) का और उनके उत्तराधिकारी महाराव कान्हड़देव का सबसे पहिला लेख वि० सं० १३९४ (ई० स० १३३७) वैशाख सुदि १० का मिला है, जिससे पाया जाता है, कि महाराव तेजसिंह का देहान्त वि० सं० १३९३ (ई० स० १३३६) के अंत के आसपास होना चाहिये.

ये तीन गांव भेट किये.

सिरोही की ख्यात तथा मूंता नेणसी की ख्यात में महाराव तेजसिंह, कान्हड़देव और सामंतसिंह के नाम नहीं हैं, परन्तु आबू पर इन तीनों के शिलालेख मिले हैं, जिनसे स्पष्ट है कि महाराव लुंभा के पीछे ये तीनों क्रमशः आबू के राज्यसिंहासन पर बैठे थे. मूंता नेणसी की ख्यात में जहां पर सिरोही के राजाओं की वंशावली दी है, वहां तो महाराव तेजसिंह का नाम नहीं किन्तु महाराव लुंभा के पीछे महाराव सलखा का नाम है, परन्तु आबू लेने के हाल में मूंता नेणसी ने लिखा है, कि " देवड़ा बीजड़ के बेटे जसवंत, समरा, लूणा, लुंभा और तेजसी थे. लुंभा राजा हूण से लड़कर मारा गया तो तेजसिंह आबू का राजा हुआ." मूंता नेणसी का यह लिखना भी भरोसे के लायक नहीं है, क्योंकि आबू लेने बाद भी महाराव लुंभा विद्यमान थे और उन्होंने आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था. तेजसिंह महाराव लुंभा के भाई नहीं किन्तु पुत्र थे, ऐसा शिलालेखों से पाया जाता है. ख्यातों में महाराव तेजसिंह, कान्हड़देव तथा सामंतसिंह के नाम छोड़ देने और महाराव लुंभा के पीछे महाराव सलखा, रणमल और शिवभाण (शोभा) के नाम दर्ज करने का कारण ऐसा अनुमान किया जाता है, कि महाराव लुंभा के दो पुत्र थे, जिनमें से बड़े पुत्र तेजसिंह के घराने में सामंतसिंह तक राज रहने बाद छोटे पुत्र तिहुणाक के वंश में राज गया हो और उसमें महाराव सलखा पहिले

राजा हुए हों, जिससे ख्यात लिखनेवालों ने उनका सम्बन्ध महाराव लुंभा से मिलाकर उनके बड़े पुत्र तेजसिंह के वंशजों के नाम छोड़ दिये हों, जैसे कि नाडोल से मिले हुए एक ताम्रपत्र में जेन्द्रराज के बाद राज करनेवाले उनके दो बड़े पुत्रों (पृथ्वीपाल और जोजलदेव) के नाम छोड़कर (जेन्द्रराज के पीछे) उनके छोटे ही छोटे पुत्र आसराज का नाम लिखा है, जिसका वंश पीछे से नाडोल पर राज करता रहा था. अन्य अन्य रियासतों के इतिहास में भी ऐसे उदाहरण मिल आते हैं.

महाराव सामंतसिंह ‡ के बाद महाराव सलखा आबू के राजा हुए. इनके पीछे इनके पुत्र महाराव रणमल राज्यसिंहासन पर बैठे, जिनके दो पुत्र शिवभाण (शोभा) और गजा थे, जिनमें से बड़े शिवभाण अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए और छोटे गजा के पुत्र डुंगर के वंश में डुंगरोत देवड़े हैं.

महाराव शिवभाण ने, जिनका प्रसिद्ध नाम शोभा था, सिरणवा नामकी पहाड़ी के नीचे वि० सं० १४६२ (ई० स० १४०५) में एक शहर बसाया और उक्त पहाड़ी के ऊपर एक क़िला बनवाया. वह शहर महाराव शिवभाण के नाम से शिवपुरी कहलाया, जो वर्तमान सिरोही से अनुमान २ माइल पूर्व में खंडहररूप अबतक विद्यमान है और

‡ फ़ार्बस साहब ने भी अपनी पुस्तक ' रासमाला ' में कान्हड़देव के पीछे सामंतसिंह का आबू का राजा होना लिखा है.

जिसको लोग पुरानी सिरोही कहते हैं.

महाराव शिवभाण के पीछे उनके पुत्र सहस्त्रमल्ल गद्दीनशीन हुए, जो सैंसमल नाम से प्रसिद्ध हैं. इन्होंने वि० सं० १४८२ (ई० स० १४२५) वैशाख सुदि २ को वर्तमान सिरोही नगर बसाया और आसपास का मुल्क दबाकर अपना राज्य बहुत बढ़ाया. वि० सं० १४८४ (ई० स० १४२७) में इन्होंने आबू से पश्चिम का पालड़ी गांव, जो परमारों के समय ब्राह्मणों को दान में मिला था, ब्राह्मणों से छीन लिया, जिसपर वहां के ब्राह्मणों ने सिरोही जाकर धरणा दिया और तीन ब्राह्मण जीवित जल मरे, जिसपर इन्होंने वि० सं० १४८४ (ई० स० १४२७) वैशाख वदि २ को वह गांव उन मरनेवाले ब्राह्मणों के पुत्रों में से ओझा बूटा तथा दवे काना को पीछा दान में देकर उनको संतुष्ट कर दिया. ऐसी भी प्रसिद्धि चली आती है, कि महाराव सैंसमल ने सोलंकियों का कितनाक इलाक़ा भी दबा लिया था, जो वर्तमान सिरोही और जोधपुर राज्यों की सरहद के निकट माळमगरे के आसपास के प्रदेश के स्वामी थे. इनके समय से चन्द्रावती राजधानी छूटकर सिरोही राजधानी हुई. चंद्रावती जैसे प्राचीन और प्रसिद्ध शहर को छोड़कर सिरोही को नई राजधानी बनाने का कारण ऐसा मालूम होता है, कि कुतबुद्दीन ऐबक ने चंद्रावती को प्रथम लूटा और अलाउद्दीन खिलजी के वक़्त में उसकी और भी बर्बादी हुई, जिससे नई राजधानी बसाने की ज़रूरत हुई हो. अहमदाबाद को बसानेवाले सुल्तान

अहमदशाह ने भी यहां के बहुतसे मन्दिर आदि तोड़कर बहुतसा संगमर्मर अहमदाबाद पहुंचाया था, ऐसी भी प्रसिद्धि है.

महाराव सैंसमल के समय मेवाड़ के राजा महाराणा कुंभा थे, जो बड़े ज़बर्दस्त और अपना राज्य दूर दूर तक बढ़ानेवाले हुए. उन्होंने आबू के मज़बूत क़िले को अपने राज्य में मिलाना चाहा और उसके लिये राव शूलजी के बेटे डोडिआ नरसिंह को फौज के साथ सिरोही पर भेजा, जिसने आबू तथा वसंतगढ़ आदि पर मेवाड़वालों का दख़ल जमा दिया. महाराणा कुंभा ने, जिनको क़िला बनाने का बड़ा शौक था, वसंतगढ़ का क़िला बनवाया और आबू पर वि० सं० १५०६ (ई० स० १४५२) में अचलगढ़ का क़िला तथा अचलेश्वर के मंदिर के पास कुंभस्वामी का मन्दिर और कुंड बनवाये. महाराणा कुंभा के आबू आदि छीनने का कारण ऐसा माना जाता है, कि महाराव सैंसमल इधर उधर का देश दबाकर अपना राज्य बढ़ाना चाहते थे और इन्होंने सिरोही की सीमा से मिले हुए मेवाड़ के कितनेक गांवों पर अपना अधिकार जमा लिया था, जिससे नाराज़ होकर महाराणा कुंभा ने आबू आदि को छीना था.

सिरोही की ख्यात में यह लिखा है, कि "महाराणा कुंभा गुजरात के सुल्तान की फौज से हारकर महाराव लाखा की रजामन्दी से आबू पर आ रहे थे और सुल्तान की फौज के लौट जाने पर आबू खाली करने को उनसे कहा गया, परन्तु उन्होंने कुछ न माना, जिस

पर महाराव लाखा ने उनसे लड़कर आबू पीछा लेलिया और उस वक़्त से प्रण किया, कि आयंदा किसी राजा को आबू पर चढ़ने न देंगे. संवत् १८९३ (ई० स० १८३६) में जब मेवाड़ के महाराणा जवानसिंह ने आबू की यात्रा करनी चाही उस समय मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल स्पीअर्स साहिब ने बीच में पड़कर उक्त महाराणा के लिये आबू पर जाने की मंज़ूरी दिलाई. उस वक़्त से राजा लोग फिर आबू पर जाने लगे." सिरोही की ख्यात का यह लेख हमारी राय में भरोसे लायक नहीं है, क्योंकि प्रथम तो महाराणा कुंभा ने महाराव सैंसमल के समय आबू आदि पर अपना अधिकार जमाया था, न कि महाराव लाखा के समय, और यह घटना वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) के† पहिले किसी समय हुई, उस वक़्त तक गुजरात के सुल्तान से उनकी लड़ाई होना भी पाया नहीं जाता और शिलालेखों तथा फ़ारसी तवारीख़ों से भी यही पाया जाता है, कि महाराणा कुंभा ने आबू आदि छीने थे. मिराते सिकंदरी में लिखा है, कि "हि० स० ८६० (वि० सं० १५१३=ई० स० १४५६) में सुल्तान कुतबुद्दीन ने नागोर का बदला लेने की इच्छा से राणा के राज्य पर चढ़ाई

† महाराणा कुंभा का एक ताम्रपत्र वि० सं० १४९४ (ई० स० १४३७) का मिला है, जिसमें अजाहरी (अजारी) परगने के चूरडी (सवरली) गांव में भूमि देने का उल्लेख है, अतएव उन्होंने आबू आदि उक्त संवत् से पहिले छीने होंगे.

की. मार्ग में सिरोही के राजा खेता † (लाखा) देवड़ा ने आकर सुल्तान से कहा, कि मेरे बाप दादों का निवासस्थान आबू का क़िला राणा ने मुझसे छीन लिया है, वह मुझ को पीछा दिला दो. इस पर सुल्तान ने मलिक शहबान इमादुलमुल्क को राणा के सिपाहियों से क़िला छीन खेता (लाखा) देवड़ा के सुपुर्द करा देने को भेजा. मलिक तंग घाटियों के रास्ते से चला, परन्तु ऊपर से शत्रुओं ने चौतरफ़ हमला किया, जिसमें वह (मलिक) हारा और उसकी फौज के बहुतसे सिपाही मारे गये." इससे स्पष्ट है, कि महाराणा कुंभा को आबू खुशी से दिया नहीं गया था, किन्तु उन्होंने छीना था. मेवाड़ के शिलालेखों तथा संस्कृत पुस्तकों से भी यही पाया जाता है. महाराव सैंसमल के पुत्र महाराव लाखा हुए, जो अपने पिता के पीछे सिरोही के राज्यसिंहासन पर विराजे.

महाराव लाखा की गद्दीनशीनी वि० सं० १५०८ (ई० स० १४५१) में हुई, ऐसा सिरोही की ३ ख्यातों में लिखा है. ये बड़े ही वीरप्रकृति के राजा थे. इनको वसंतगढ़ तथा आबू के क़िलों पर महाराणा

† हाथ की लिखी हुई "मिराते सिकंदरी" की प्रतियों में कहीं 'खेता' और कहीं 'कंथा' पाठ मिलता है, परन्तु ये दोनों पाठ अशुद्ध हैं, क्योंकि सुल्तान कुतबुद्दीन के वक्त में उक्त नाम का कोई राजा सिरोही पर नहीं हुआ. फ़ारसी लिपि के दोष से नामों में कुछ का कुछ पढ़ा जाता है और एक प्रति से दूसरी प्रति लिखे जाने में नक़ल करनेवाले नामों को बहुत कुछ बिगाड़ डालते हैं, ऐसा ही हाल उक्त पुस्तक में महाराव लाखा के नाम का हुआ हो.

कुंभा का अधिकार रहना बिलकुल पसंद न था, परन्तु महाराणा कुंभा जैसे प्रबल राजा से लड़कर क़िला खाली कराना सर्वथा असंभव था किन्तु ऐसे में महाराणा कुंभा को दबाने के लिये गुजरात के सुल्तान कुतबुद्दीन ने और मांडू (मालवे) के सुल्तान महमूद ने मिलकर हि० स० ८६१ (वि० सं० १५१४=ई० स० १४५७) में उन (कुंभा) पर चढ़ाई की, जिससे आबू पर की मेवाड़ की अधिकतर फौज कुंभलगढ़ की तरफ़ चली गई और थोड़े ही आदमी आबू पर रहे. उस समय महाराव लाखा ने आबू पर अपना अधिकार पीछा जमा लिया, ऐसा सिरोही की ख्यात से पाया जाता है, परन्तु इस विषय में तारीख़-फ़रिश्ता में लिखा है, कि हि० स० ८६१ (वि० सं० १५१४=ई० स० १५७१) में चांपानेर के अहदनामे के अनुसार कुतबशाह (कुतबुद्दीन) ने चित्तौड़ की तरफ़ प्रस्थान किया और मार्ग में आबू का क़िला छीनकर वहां पर अपनी फौज रक्खी, जिसके पीछे वह आगे बढ़ा. इससे पाया जाता है, कि गुजरात के सुल्तान कुतबुद्दीन की सहायता से महाराव लाखा ने आबू पर पीछा अपना अधिकार जमाया हो.

महाराणा कुंभा और कुतबुद्दीन के बीचकी लड़ाइयों से रियासत सिरोही को बहुत कुछ हानि पहुंचती रही, क्योंकि मुसल्मानों की फौज जहां होकर निकलती थी वहां लूट मचाये बिना नहीं रहती थी. तबक़ाते अक़बरी का कर्त्ता लिखता है, कि ‘सुल्तान कुतबुद्दीन राणा कुंभा को सज़ा देने के इरादे पर सिरोही की तरफ़ चला तो सिरोही

का राजा, जो कुंभा का नज़दीकी रिश्तेदार था, भागकर पहाड़ों में चला गया. सुल्तान ने तीसरी बार सिरोही को जलाया और आस-पास के कस्बों को लूटा.' इससे स्पष्ट है, कि इन लड़ाइयों से सिरोही राज्य को, जिसमें होकर सुल्तान की फौज निकला करती थी, बहुत हानि पहुंचती थी.

महाराव लाखा ने सोलंकियों का रहा सहा इलाक़ा भी अपने राज्य में मिलाना चाहा और उन पर चढ़ाई कर सोलंकी भोज को मारा † और उसका सारा इलाक़ा छीन लिया, जिससे भोज का बेटा रायमल्ल व पोते शंकरसी, सामंतसी, सखरा और भाण सिरोही के इलाक़े से निकल मेवाड़ में महाराणा रायमल्ल के कुंवर पृथ्वीराज के पास चलेगये और देसूरी के मादडेचों को मारने बाद देसूरी का इलाक़ा उनको जागीर में मिला. सोलंकियों की ख्यात में लिखा है, कि 'सोलंकी भोज और सिरोही के महाराव लाखा के बीच वि० सं० १४८८ (ई० स० १४३१

† इस विषय में ऐसा प्रसिद्ध है, कि देवड़ों और सोलंकियों के बीच लड़ाई शुरू हुई उस समय सोलंकी पहाड़ (मालमगरे) के ऊपर थे और देवड़े उसके नीचे थे, जिससे वे सोलंकियों को जीत न सके. फिर महाराव लाखा ने अपनी फौज के दो हिस्से कर एक को रांवाड़े की तरफ़ से पहाड़ पर चढ़ने की आज्ञा दी और दूसरे को नीचे की ओर से लड़ने की. फि लड़ाई होने लगी इतने में उस फौज ने, जो रांवाड़े की तरफ़ से पहाड़ पर चढ़ी थी, पीछे सोलंकियों पर हमला किया. इस प्रकार दोनों तरफ़ से सोलंकियों पर हमला होने से उनके पैर उखड़ गये और उनके बहुतसे राजपूत मारे गये.

कार्तिक सुदी १० शुक्रवार को लड़ाई हुई, जिसमें महाराव लाखा अपने तीन पुत्रों सहित और सोलंकी भोज अपने ५ पुत्रों सहित मारा गया परन्तु महाराव लाखा का लड़ाई में मारा जाना पाया नहीं जाता और न सोलंकियों की ख्यात में लिखा हुआ इस लड़ाई का वि० सं० १४८८ (ई० स० १४३१) भरोसे लायक है, क्योंकि उक्त संवत् में महाराव लाखा गद्दीनशीन भी नहीं हुए थे. यह लड़ाई वि० सं० १५३० और १५४० (ई० स० १४७३ और १४८३) के बीच किसी समय हुई हो. सही संवत् मालूम नहीं होसका.

महाराव लाखा बहादुर राजा हुए. इन्होंने सिरोही की आबादी बढ़ाई और सिरोही से कुछ दूरी पर कालिका माता + का मन्दिर तथा अपने नाम से लाखेलाव नामक तालाव बनवाया. इनके ८ राणियां थीं, जिनमें से इनकी पटराणी अपूर्वदेवी ने वि० सं० १५२६ (ई० स० १४६६) ज्येष्ठ वदि २ को सारणेश्वरजी में हनुमान की मूर्ति स्थापित की. इनकी एक राणी मेवाड़ के महाराणा कुंभा की पुत्री लक्ष्मीकंवर थी. इनके ७ पुत्र जगमाल, हंमीर, ऊदा †, शंकर, पृथीराज, मांडण और राणेराव थे ‡ और उनकी कुंवरी चंपाकुंवर का

+ एक ख्यात की पुस्तक में लिखा है, कि कालिका माता की मूर्ति पावागढ़ से वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) में लाई गई थी.

† ऊदा के वंश में नींबज, डमाणी, भटाणा आदि के ठाकुर हैं.

‡ महाराव लाखा के वंशज लाखावत या लखावत नाम से प्रसिद्ध हुए.

विवाह मेवाड़ के महाराणा रायमल से हुआ था. वि० सं० १५४०(ई० स० १४८३) में महाराव लाखा का स्वर्गवास हुआ और इनके बड़े कुंवर जगमाल सिरोही की गद्दी पर विराजे.

महाराव जगमाल अपने भाइयों से बड़ा ही स्नेह रखनेवाले तथा उदार प्रकृति के राजा थे.

'तारीख़ मिरातिसिकंदरी' में लिखा है, कि "हि० स० ८९२ (वि० सं० १५४४=ई० स० १४८७) में गुजरात के सुल्तान महमूद बेगड़ा के पास जाकर कितने एक ब्यौपारियों ने † शिकायत की, कि हम ईरान व ख़ुरासान से ४०० ईरानी और तुर्की घोड़े तथा कितनेक हिन्दुस्तानी कपड़े हुजूर के नज़र करने के लिये लेकर आते थे, परन्तु आबू पहाड़ के नीचे पहुंचने पर सिरोही के राजा ने सब घोड़े और माल हमसे छीन लिया, यहांतक कि हमारे पास पुराना पायजामा तक रहने न दिया. इस पर सुल्तानने घोड़े व मालकी क़ीमत की फ़र्द उनसे लेली और उस फ़र्द के मुवाफ़िक रुपये ब्यौपारियों को चुकादिये और कहा, कि ये रुपये मैं सिरोही के राजा से वसूल करलूंगा. सुल्तान ने सिरोही पर फौजकशी करने की तय्यारी की और वहां के राजा के नाम एक पत्र इस आशय का लिखा, कि जो घोड़े व माल ब्यौपारियों से छीना है उसे तुरन्त लौटा दो नहीं तो सुल्तान फौज के साथ आता है. राजा ने उस पत्र के पहुंचते ही सब घोड़े और माल पीछा भेज दिया और

† ये ब्यौपारी देहली से अहमदाबाद को जारहे थे.

क्षमा मांगी." ऐसा ही वृत्तान्त 'मिराते अहमदी' और 'तारीखफ़ारिश्ता' में भी मिलता है. 'तबकाते अकबरी' में ४०३ घोड़े छीनना और उनमें से ३७० वापस देना और ३३ की क़ीमत देना लिखा है. उक्त फ़ारसी किताबों में सिरोही के राजा का नाम नहीं दिया, परन्तु यह घटना हि० स० ८९२ (वि० सं० १५४४=ई० स० १४८७) की है. और उक्त संवत् में सिरोही के स्वामी महाराव जगमाल ही थे.

बंबई गैज़ेटिअर की पांचवीं जिल्द में पालणपुर की तवारीख में लिखा है, कि " एक वार मलिक मजाहिदखां † शिकार खेल रहा था ऐसे में सिरोहीवालों ने उस पर हमला कर उसे क़ैद कर लिया और उसको सिरोही ले गये जहां पर उसके साथ बड़ी कृपा का वर्ताव किया जाता था. उसके रहने के लिये एक महल दिया गया था और उसकी इच्छानुसार आराम का सब बन्दोबस्त था. उसको पकड़ लेजाने का बदला लेने के लिये उसकी फौज के मुखिये मलिक मीना व प्यारा ने सिरोही का इलाक़ा लूटा और एक रातको जिस महल में मलिक मजाहिद क़ैद था वहां पर वे दोनों पहुंचे और उन्होंने उसको एक खूबसूरत वेश्या के संग बैठा हुआ पाया. मलिक ने उस वेश्या को छोड़कर वहां से चले जाने से इन्कार किया, जिस पर वे दोनों ना-उम्मेद होकर लौट गये, लेकिन थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने सिरोही के राव के पाटवी कुंवर मांडन को, जब कि वह एक रात को शिकार

† यह जालोर का स्वामी था, जिसके वंशज पालनपुर के नव्वाब हैं.

के लिये एक तालाब के पास बैठा हुआ था, क़ैद कर लिया, जिससे राजा ऐसा डरा, कि उस (मलिक मज़ाहिदखां) को छोड़ दिया इतना ही नहीं, किन्तु बड़गांव का इलाक़ा भी दिया. फिर पांच बरस जालोर में राज्य करने बाद वह (मलिक मज़ाहिदखां) हि० स० ९१५ (ई० स० १५०९= वि० सं० १५६६) में मरा." पालनपुरवालों ने मलिक मज़ाहिदखां के क़ैद होने का यह हाल तरफ़दारी के साथ लिखा हो, ऐसा उसी पर से झलक आता है, क्योंकि प्रथम तो जब कि मीना और प्यारा उसके पास पहुंचे और उसको क़ैद से छुड़ाकर लेजाने लगे उस वक़्त उसने एक वेश्या के लिये क़ैद में पड़ा रहना पसंद किया, फिर महाराव जगमाल ने उसे छोड़ा उस समय उसने अपने ठिकाने को जाना पसंद किया, यही संशय उत्पन्न करानेवाली बात है. सिरोही की ख्यात में उसका लड़ाई में क़ैद होना तथा ९००००० फ़ीरोज़े दण्ड के देने बाद मलिक का क़ैद से छूटना लिखा है, जो अधिक विश्वास योग्य है.

मूंता नेणसी ने अपनी ख्यात में महाराव अखेराज का जालोर के खान को पकड़ कर क़ैद रखना लिखा है, परन्तु पालनपुर की तवारीख़ से पाया जाता है, कि हि० स० ९१५ (वि० सं० १५६६=ई० स० १५०९) में मज़ाहिदख़ां मरा, जिससे ५ वर्ष पूर्व वह क़ैद से छूटा था, अतएव यदि पालनपुर की तवारीख़ में दिया हुआ संवत् सही हो तो उसका वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) के आसपास क़ैद से छूटना

पाया जाता है. उस समय सिरोही की गद्दी पर महाराव अखेराज नहीं किन्तु उनके पिता महाराव जगमाल थे, इसलिये यह घटना महाराव जगमाल के समय की होनी चाहिये‡.

महाराव जगमाल का छोटा भाई हंमीर बड़ा ही चालाक था. उसने अपने भाई का क़रीब क़रीब आधा राज अपने आधीन कर लिया था. उसके अधिकार में आबू से पश्चिम का बहुधा सारा इलाक़ा था. इतनी बड़ी जागीर मिलने पर भी संतुष्ट न होकर वह शासनिक गावों को छीनने लगा. असावा गांव छीनने में मामला यहांतक बढ़ा, कि उसने वहां के कितने ही ब्राह्मणों को मारडाला, जिससे उनकी स्त्रियां जीवित जलमरीं. इस घटना से उसकी बहुत कुछ बदनामी हुई और महाराव जगमाल उससे बहुतही अप्रसन्न रहनेलगे, जिससे उसके भाइयों तथा उसके पक्षवाले देवड़ों ने उसको समझा कर वह गांव पीछा उन मारे हुए ब्राह्मणों के पुत्रों को वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में मनमानी सीमासहित दिलाकर ब्राह्मणों को संतुष्ट करदिया (देखो ऊपर पृ० ५४). हंमीर के पास राजपूतों का बल होजाने के कारण उसको अपनी जागीर बढ़ाने का ही विचार रहा, जिससे दोनों भाइयों के बीच वैमनस्य बढ़ता ही गया. अन्त में दोनों में लड़ाई हुई, जिसमें हंमीर मारा गया और उसकी सारी जागीर छीनली गई.

---

‡ महाराव अखेराज के मांडन नामक कोई पुत्र न था, परन्तु महाराव जगमाल के उक्त नाम का एक भाई था.

महाराव जगमाल के पांच राणियां थीं, जिनमें से एक मेवाड़ के महाराणा रायमल की कुंवरी आनंदाबाई थी †. इनके तीन पुत्र अखेराज, मेहाजल और देदा तथा एक पुत्री पद्मावतीबाई थी ‡, जिसका विवाह जोधपुर के महाराव गांगा से हुआ था, जिससे प्रसिद्ध मालदेव तथा उनके भाई बेरसल व मानसिंह और एक कुंवरी सोनाबाई उत्पन्न हुई थी. उसका विवाह जैसलमेर के महारावल लूणकरण से हुआ था. पद्मावतीबाई ने जोधपुर में पदमलसर तालाब बनवाया और वह अपने पति के साथ वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में सती हुई. वि० सं० १५८० (ई० स० १५२३) में महाराव जगमाल का देहान्त हुआ और इनके ज्येष्ठ पुत्र अखेराज सिरोही के राजा हुए.

महाराव अखेराज धर्मनिष्ठ तथा बहादुर राजा थे. इनकी बहादुरी की बहुतसी बातें प्रसिद्ध हैं और सिरोही राज्य में ये अब-

† ऐसी प्रसिद्धि है, कि महाराव जगमाल दूसरी राणियों के कथन में आकर सीसोदणी आनन्दाबाई को दुःख दिया करते थे, इस पर उस (आनन्दाबाई) के भाई कुंवर पृथ्वीराज ने सिरोही आकर अपनी बहिन का दुःख मिटा दिया. महाराव जगमाल ने अपने वीर साले का बहुत कुछ सन्मान किया, परन्तु सिरोही से कुंभलगढ़ जाते समय ज़हर मिली हुई ३ गोलियां उसको देकर कहा, कि ये बंधेज की गोलियां बहुत अच्छी हैं कभी इनको आज़माना. पृथ्वीराज ने कुंभलगढ़ के निकट पहुंचने पर वे गोलियां खाई, जिससे थोड़े ही समय में कुंभलगढ़ के नीचे ही उसका देहान्त हो गया. कर्नल टॉड साहब ने भी इस घटना का उल्लेख अपनी 'राजस्थान' नामक पुस्तक में किया है.

‡ इसका सुसराल का नाम माणिकदे था.

तक 'ऊडणा अखा' या 'ऊडणा अखेराज' नाम से प्रसिद्ध हैं. वि० सं० १५८० (ई० स० १५२३) में इन्होंने लोयाणा का किला बनवाया, जो इस समय जोधपुर राज्य में है. वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) वैशाख वदि ५ को आबू जाते हुए इनका ठहरना पालड़ी गांव के पास हुआ, जहां के ब्राह्मणों को इनके अहलकारों ने उस गांव की चौकीदारी की लागत के वास्ते तंग किया, जिसपर ब्राह्मणों ने गांव के पास वाले लीलाधारी नामक शिवालय में जाकर धरणा दिया और एक वृद्ध ब्राह्मणी, जो दवे कल्ला की पुत्री और ओझा चत्रभुज की स्त्री थी, जीवित जल मरने को तय्यार हुई. यह ख़बर सुनते ही इस धर्म्मनिष्ठ राजा ने स्वयं वहां पहुंच कर उस ब्राह्मणी को चिता पर से उतारा और उस गांव की चौकीदारी मुआफ़ करदी. इनके दो कुंवर रायसिंह और दूदा थे. वि० सं० १५९० (ई० स० १५३३) † में इन का परलोकवास हुआ.

महाराव रायसिंह का जन्म वि० सं० १५७८ (ई० स० १५२१) पौष वदि ९ को हुआ था. ये उदार प्रकृति के राजा थे. इनकी उदारता की बहुत कुछ प्रसिद्धि अबतक चारणों के मुख से सुनने में आती हैं. इन्होंने चारण माला आसिया को करोड़पसाव में खांण गांव दिया,

† उपरोक्त पालड़ीगांव (आबू की तलहटी में) से एक माइल पर वाडला नामक ऊजड़ गांव के एक मन्दिर के बाहर देवी की एक मूर्ति रक्खी हुई है, जिसपर महाराव अखेराज के समय का वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२) पौष वदि ७ का लेख है.

जिसमें ३०० रहट चलते थे. ऐसे ही पत्ता कलहट को करोड़पसाव † में माटासण गांव दिया, जो बड़गांव के निकट है और जिसमें ५० रहट चलते थे. मूंता नेणसी लिखता है, कि "राव रायसिंह ने मेवाड़ और मारवाड़ के राजाओं का वहुत कुछ उपकार किया था." इनके समय में भीनमाल का इलाक़ा जालोरी पठानों के कब्ज़े में था, जिसको अपने आधीन करने की इच्छा से इन्होंने भीनमाल पर चढ़ाई की और उक्त शहर को घेरा. उस समय क़िले के भीतर से एक तीर ऐसा आया, जो इनके बख़्तर को चीरकर बगल में जा लगा और उसीसे इनका देहान्त हुआ. इनकी दग्धक्रिया कालंद्री गांव में हुई. यह घटना वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में हुई. इनकी राणी चंपाबाई जोधपुर के महाराव गांगा की बेटी थी.

महाराव रायसिंह के देहान्त समय इनके कुंवर उदयसिंह बालक थे, जिससे इन्होंने अपने सर्दारों को बुलाकर यह आज्ञा दी, कि मेरा कुंवर उदयसिंह बालक है, इसलिये मेरे बाद मेरे भाई दूदा को गद्दी पर बिठलाना. वह मेरे बालक पुत्र का पालन पोषण करेगा. इनकी आज्ञानुसार सर्दारोंने इनके पीछे इनके छोटे भाई दूदा को सिरोही की गद्दी पर बिठलाया.

---

† कवियों को दी हुई बड़ी बख़्शिश को लाखपसाव और करोड़ (कोड़) पसाव कहते हैं. लाखपसाव में कई हज़ार के मूल्य के ज़ेवर तथा सिरोपाव और एक गांव बहुधा दिया जाता है और करोड़पसाव में इससे बहुत अधिक.

महाराव दूदा का जन्म वि० सं० १५८० † (ई० स० १५२३) पौष वदि ६ को हुआ था. ये बड़े ही सत्यव्रत थे और केवल अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करने के निमित्त सिरोही की गद्दी पर बैठे थे. इनको राज्य का तनिक भी लालच न था और ये सदा अपने को अपने भतीजे का सेवक ही मानते रहे तथा अपने पुत्र मानसिंह को अपने पीछे राज्य देने का कभी विचार तक न किया, इतना ही नहीं, किन्तु उसको अपने पासतक आने नहीं देते थे. इन्होंने १० वर्ष तक राज्य किया और देहान्त समय सर्दारों को अपने पास बुलाकर यह आज्ञा दी, कि राज्य का हक़दार मेरा पुत्र मानसिंह नहीं, किन्तु मेरे बड़े भाई के पुत्र उदयसिंह हैं, इसवास्ते मेरे बाद सिरोही की गद्दी पर इन्हींको बिठलाना. फिर उदयसिंह को अपने पास बुलाकर कहा, कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे पुत्र मानसिंह को लोहियाणा गांव जागीर में देना. वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में इनका परलोकवास हुआ और उदयसिंह सिरोहीराज्य के स्वामी हुए.

उदयसिंह ने गद्दी पर बैठते ही मानसिंह को लोहियाणा जागीर में दे दिया, परन्तु थोड़े ही दिनों बाद इनको लालच यहांतक बढ़ा, कि ये अपने चचा दूदा का सारा उपकार भूल गये और मानसिंह

† जोधपुर के सुप्रसिद्ध मुन्शी देवीप्रसाद के संग्रह में एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक है, जिसमें कई राजाओं आदि की जन्मकुंडलियां हैं. उसी प्राचीन पुस्तक से महाराव दूदा तथा मानसिंह के जन्मसंवत उद्धृत किये गये हैं, उनके लिये दूसरा कोई प्रमाण नहीं मिला.

को लोहियाणे से निकाल कर उसकी जागीर छीन लेने का इन्होंने पक्का इरादा कर लिया. एक साल तक तो ये चुपचाप ही रहे, परन्तु पीछे से इन्होंने एक दिन मानसिंह पर तुक्का चलाया, जिससे दूसरे राजपूतों ने इनसे अर्ज़ किया, कि उसके बापने तो आपके साथ यहांतक भलाई की है, कि अपने पुत्र को राज्य से विमुख रख आपको राज्य दिया और मानसिंह भी आपके हुक्म की तामील करनेवाला सेवक है, इसवास्ते उसके साथ दग़ा विचारना अच्छा नहीं है. इनके दिलपर उनके कहने का कुछ भी असर न हुआ और इन्होंने दूसरे साल मानसिंह को लोहियाणे से निकाल ही दिया, जिस पर वह मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के पास चला गया. महाराणा ने उसको वरकाणा बीजेवास की १८ गांव की जागीर दी. मानसिंह ने भी दो चार बार शिकार में बहादुरी बतलाकर महाराणा को प्रसन्न किया. कितनेक बरसों बाद महाराव उदयसिंह को शीतला की बीमारी हुई, जिसकी ख़बर सिरोही से आए हुए एक आदमी ने मानसिंह को दी. उस समय महाराणा उदयसिंह कुंभलगढ़ की तरफ़ शिकार को गये हुए थे. उसी बीमारी से इनका देहान्त वि० सं० १६१६ † (ई० स० १५६२) में हुआ. उस

† जोधपुर के चंडवाणी ज्योतिषियों के यहां के प्राचीन हस्तलिखित पंचांगों में कहीं कहीं ऐतिहासिक घटनाएं भी मालूम होने पर लिखदी जाती थीं. उनमें इनका देहान्तसंवत १६१६ (ई० स० १५६२) आसोज सुदि ११ को होना लिखा है और हमको मिलीहुई सिरोही की ख्यात में वि० सं० १६२० (ई० स० १५६३) लिखा है. इस प्रकार एक वर्ष का अंतर पड़ता है

समय सिरोही के राजपूतों ने सोचा, कि महाराव के पुत्र नहीं है और मानसिंह दूदावत महाराणा उदयसिंह के पास है, इसलिये यदि इनके स्वर्गवास होने का हाल महाराणा को मालूम होजावे तो शायद वे मानसिंह को वहीं मारडालें और कुंभलगढ़ से आकर सिरोही का राज दबा लेवें तो देवड़ों का राज ही चला जावे. इसपर सर्दारों ने मिलकर साहणी जयमल को, जो एक नेक और भरोसे का पुरुष था, सब बात समझा कर रात में ही मानसिंह के पास भेजा और महाराव उदयसिंह के देहान्त का हाल दोपहर दिन चढ़े तक प्रकट न होने दिया. जयमल रातभर चला और पहर दिन चढ़ने के पहिले कुंभलगढ़ पर मानसिंह के डेरे पर पहुंचा. इधर दोपहर के बाद महाराव की दग्धक्रिया हुई, जिसमें निम्नलिखित सात राणियां सती हुईं:—

१ महाराणा उदयसिंह की कुंवरी हरखां (हरकुंवर बाई).

२ कूंपा मेहराजोत की बेटी.

३ जगमाल वीरमदेवोत की बेटी.

४ झाली.

५ पुरवणी.

६ भटियाणी.

७ सरवाणी.

इन सात राणियों के अतिरिक्त तीन और राणियां भी सती होना चाहती थीं, परन्तु उनको बड़ी मुशकिल से रोकीं. वे ये हैं:—

१ बीकानेरी (महाराव कल्याणमल की पुत्री), गर्भवती.

२ सिंधल सीहा की बेटी.

३ बाघेली.

जयमल कुंभलगढ़ पर पहुंचा उस समय मानसिंह महाराणा उदयसिंह के पास कुंभलगढ़ के क़िले पर था, इसलिये उस (जयमल) ने सारा हाल चीबा सांवतसी से कहा, जो उस समय मानसिंह के डेरे पर था. जयमल फिर वहां से क़िले पर गया, जिसको देखते ही मानसिंह समझ गया, कि सिरोही में कुशल नहीं है और किसी बहाने से अपने डेरे चला आया. जयमल ने सब हाल मानसिंह से कहा, जिसपर उसने चीवा सांवतसी से कहा, कि मैं तो सिरोही जाता हूं और महाराणा का कोई आदमी आवे तो तुम कह देना, कि मानसिंह तो सूअरों की भाल (तलाश) में गया है. फिर मानसिंह ५ सवारों के साथ तेज़ी से सिरोही की तरफ़ चला और पहर रात जाने के पहिले सिरोही के निकट पहुंच कर एक बाग़ में ठहरा. जयमल ने मानसिंह के आपहुंचने की ख़बर तुरन्त ही राजपूतों को दी. जिसपर उसी समय वे मानसिंह के पास हाज़िर होगये और दूसरे दिन इनकी गद्दीनशीनी हुई.

उधर महाराणा ने मानसिंह को बुलाया तो चीबा सांवतसी ने कहला भेजा, कि मानसिंह अहेड़िये (शिकारगाह) में दो सूअर रहगये हैं उनके लिये वहां पर गये हैं सो अभी आते ही होंगे. शाम के

वक़ फिर महाराणा ने उसको याद किया उस समय एक शख़्स ने यह निवेदन किया, कि मानसिंह पांच सवारों के साथ सिरोही की तरफ़ भागा हुआ जाता था और मध्याह्न के समय यहां से १० कोस पर मुझको मिला था. इसपर महाराणा ने उससे पूछा, कि 'सिरोही जाता था यह बात तुझको कैसे मालूम हुई'? उसने निवेदन किया, कि 'मेरे यहां सिरोही से एक आदमी आया था, जिसने यह ख़बर दी थी, कि महाराव उदयसिंह को शीतला निकली है और बीमारी असाध्य है.' इसपर महाराणा ने फ़र्माया, कि 'इससे यह पायाजाता है, कि राव उदयसिंह का देहान्त होगया हो.' दूसरे दिन महाराणा ने मानसिंह के डेरे पर जो राजपूत थे उनको बुलाया तो देवड़ा जगमाल, जो उनमें मुख्य था, महाराणा के पास हाज़िर हुआ. महाराणा ने उससे पूछा कि मानसिंह क्यों भाग गया ? हम उसका क्या नुकसान करते थे ? जगमाल ने निवेदन किया, कि यह बात तो मानसिंह जाने. इसपर महाराणा ने उसे फ़र्माया, कि सिरोही के ४ परगने हमको लिख दो. जगमाल ने सोचा, कि यदि मैं नट जाऊं और ये सिरोही पर फौज भेज दें तो सहज में नुकसान हो जावेगा. इसलिये उसने निवेदन किया, कि मानसिंह हुज़ूर का ही राजपूत है मुझे क्या उज़्र है, चाहे सिरोही का राज्य हुज़ूर रक्खें चाहे मानसिंह को बख़्शें. फिर ४ परगनों के बाबत रुक्का लिख दिया गया, इतने में रात बहुत चली गई, जिससे उसपर दस्तख़त न हुए. दूसरे दिन प्रातःकाल जगमाल शस्त्र बांध तय्यार होकर

सीख मांगने के लिये महाराणा के पास जा रहा था, इतने में उनके आदमी, जो उसको बुलाने के लिये आते थे, मार्ग में ही मिले. जगमाल जब महाराणा के पास गया तो उन्होंने उसे फ़र्माया, कि रात को ४ परगनों के बाबत जो रुक्का लिखा गया है उस पर दस्तख़त कर दो. इसपर जगमाल ने अर्ज़ किया, कि मेरे दिये हुए सिरोही के परगने नहीं जा सकते, क्योंकि मानसिंह और सिरोही के सब सर्दार वहां हैं, यह सुनकर महाराणा ने कहा, कि इस राजपूत ने क्या पेचीदा जवाब दिया है. फिर उसको हुक्म दिया, कि तेरे साथ सिपाही भेजे जाते हैं सो चारों परगनों पर हमारे थाने बिठला देना. इस पर जगमाल ने निवेदन किया, कि 'मानसिंह भी हुज़ूर का राजपूत और रिश्तेदार है. हुज़ूर ऐसी बात क्यों फ़र्माते हैं? पुरोहित या किसी भले आदमी को मेरे साथ भिजवादीजिये, ताकि मानसिंह जो उत्तर देगा उसको वह हुज़ूर को मालूम करदेगा.' यह बात महाराणा को भी पसंद आई और उन्होंने अपने पुरोहित को जगमाल के साथ रवाना कर दिया. मानसिंह के साथ के जगमाल आदि राजपूत महाराणा के पुरोहित को साथ लेकर सिरोही आये. महाराव मानसिंह ने पुरोहित का बहुत कुछ सत्कार किया और कुछ दिनों बाद इन्होंने एक हाथी और ४ घोड़े महाराणा के नज़र करने के लिये अपने आदमियों के साथ दे पुरोहित को सिरोही से रवाना किया और पत्र में लिखा, कि चार

परगनों की क्या बात है सिरोही का सारा राज ही दीवाणजी † का है और मैं भी दीवाणजी का ही राजपूत हूं. महाराणा उदयसिंह भी. जो सिरोही का कुछ इलाक़ा दबाना चाहते थे, इस पत्र को पढ़कर प्रसन्न हो गये.

महाराव मानसिंह के गद्दी पर बैठने बाद एक दिन महाराव उदयसिंह की माता चंपाबाई ने इनसे कहलाया, कि मेरे पुत्र की राणी बीकानेरी के गर्भ है इसलिये यदि कुंवर पैदा हुआ तो तुम गद्दी से ख़ारिज समझे जावोगे. इस पर इनको बहुत क्रोध चढ़ा और इनके तथा चंपाबाई के बीच वैर बंध गया. फिर एक दिन बोलचाल यहां- तक बढ़ गई, कि इन्होंने ज़नाने में जाकर चंपाबाई तथा बीकानेरी दोनों को मार डाला. बीकानेरी के पेट से आठ मास का पुत्र निकला. जिसको भी इन्होंने वहीं मार डाला. इनके हाथ से राजपूत और राजा के न करने योग्य महाकलंक का यह काम क्रोधवश राज्यतृष्णा के कारण हुआ, जिसका कलंक सदा के लिये इनपर लग गया. यह घटना वि० सं० १६२० ‡ (ई० स० १५६३) चैत्र सुदि ६ के दिन हुई.

मूता नैणसी लिखता है, कि 'महाराव मानसिंह बड़े ज़बरदस्त राजा हुए. इन्होंने बादशाही फौजों से बहुतसी लड़ाइयां लड़ीं. सिरोही

† उदयपुर (मेवाड़) के राज्य के स्वामी एकलिंगजी महादेव और उनके दीवान महाराणा माने जाते हैं, इसीसे मेवाड़ के राजा 'दीवान' कहलाते हैं.

‡ चंडू पंचाग में इस घटना का संवत १६२० (ई० स० १५६३) चैत्र सुदि ६ लिखा है.

इलाक़े में (सांतपुर से लगाकर पालणपुर तक) कोलियों का मेवासा था, जहां के कोली पहिले सिरोही के किसी राजा के ताबे नहीं हुए थे, इसलिये इन्होंने एक ही दिन २२ जगह पर फौज भेजी और सब जगह अपना अधिकार जमाकर कोलियों को निकाल दिया और मेवासे में अपने थाने बिठला दिये. ६ मासतक वहां पर थाने रहे, जिसके बाद सब कोली आकर इनके पैरों में गिरे और इनकी आज्ञा सिर-पर चढ़ाई, जिससे इन्होंने प्रसन्न होकर कोलियों को उनकी ज़मीन पीछी दे दी और अपने थाने वहां से उठालिये.

इन्होंने अपने प्रधान पंचायण परमार को देवड़ों के साथ वैर रखने के कारण मरवा डाला था, जिसका भतीजा कल्ला परमार इनकी सेवा में रहता था. उसको भी एक दिन आबूपर चढ़ते समय इन्होंने धमकाया जिससे रात को जब ये भोजन कर रहे थे उस समय उस (कल्ला) ने अचानक इनपर कटार का वार किया और वह तुरंत ही वहां से भाग गया. कटार लगने बाद एक पहर तक ये जीते रहे, उस समय सरदारों ने इनसे पूछा कि आपके पुत्र नहीं हैं, इसलिये आपके बाद सिरोही की गद्दी पर किसको बिठलावें. इसपर इन्होंने कहा, कि मेरे पीछे सुरताण भाणावत † को सिरोही की गद्दीपर बिठलाना. फिर थोड़ेही समय बाद इनका परलोक-वास होगया. यह घटना वि० सं० १६२८ (ई० स० १५७१) में हुई. इनकी दग्धक्रिया आबू पर अचलेश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर के सामने हुई,

† भाणावत=भाण का पुत्र.

जहां पर इनकी माता धारबाई ने मानेश्वर का मंदिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) में हुई. इनके साथ पांच राणियां सती हुईं, जिनकी मूर्तियां उक्त मंदिर में बनी हुई हैं. इनकी माता धारबाई ने सिरोही के पास धारावती नामक बावड़ी बनवाई, जो अबतक उसी नाम से प्रसिद्ध है. महाराव मानसिंह के उंकारकंवर नामक राजकुमारी थी, जिसका विवाह वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६८) आषाढ़ वदि १२ को जोधपुर के महाराव चंद्रसेन के साथ हुआ था और दूसरी का विवाह मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के भाई जगमाल से हुआ था.

महाराव मानसिंह स्वभाव के बड़े ही क्रोधी थे और क्रुद्ध होने की दशा में इनको कुछ भी विचार नहीं रहता था. जिससे चाहे सो कर बैठते थे.
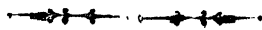
प्रकरण पांचवां.

महाराव सुरतान†.

महाराव मानसिंह की इच्छानुसार सर्दारों ने महाराव सुरतान

† महाराव मानसिंह तथा सुरताण का परस्पर क्या सम्बन्ध था, यह नीचे लिखेहुए वंशवृक्ष में बतलाया गया है:—
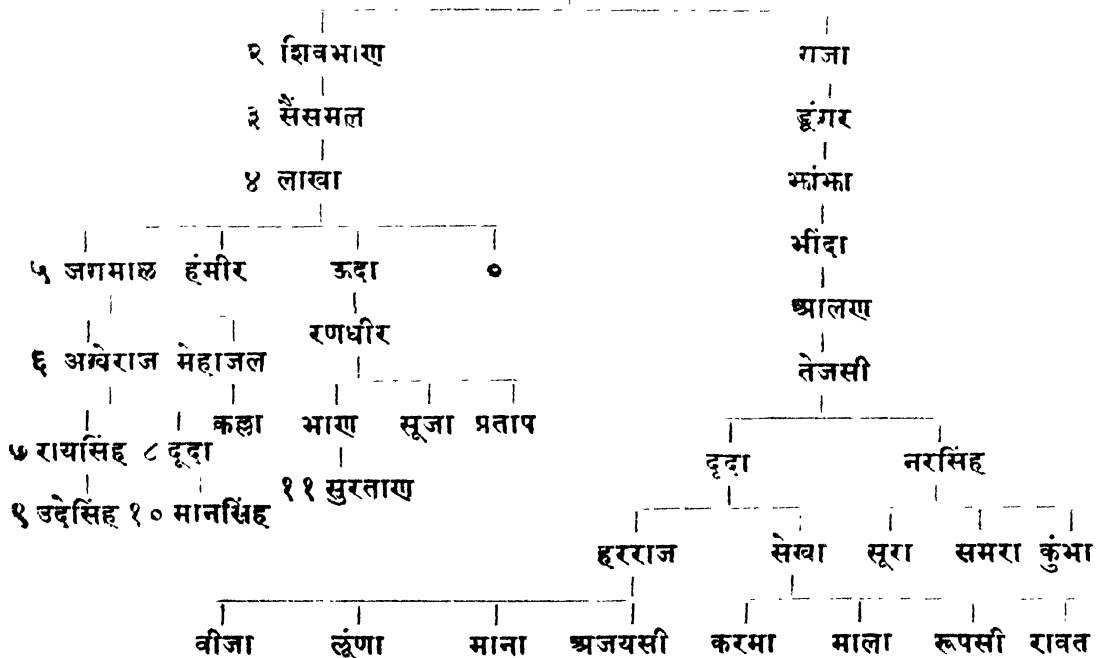
इस वंशवृक्ष में राजाओं के नाम तथा उनका क्रम अंकों से बतलाया गया है.

को वि० सं० १६२८ † (ई० स० १५७१) में सिरोही की गद्दी पर बिठलाया उस समय इनकी अवस्था केवल १२ ‡ वर्ष की थी और महाराव मानसिंह की राणी बाहड़मेरी के गर्भ था, जिससे राज्य में वैसा ही आपस का झगड़ा फिर खड़ा होने की संभावना रही जैसा कि

† महाराव सुरताण की गद्दीनशीनी वि० सं० १६२८ (ई० स० १५७१) में होना कितनीक ख्यातों में लिखा है और कितनीक में वि० सं० १६२२ (ई० स० १५६५) में होना लिखा है. अबतक बहुत तलाश करने पर भी वि० सं० १६२२ और १६२८ के बीच का कोई लेख हमको नहीं मिला, जिससे इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं होसका, परन्तु हमारी राय में इनकी गद्दीनशीनी वि० सं० १६२८ (ई० स० १५७१) में होना ही दुरुस्त है.

‡ सिरोही की एक ख्यात में इनका जन्म वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में होना लिखा है, जो सत्य भासता है, क्योंकि उदयपुर के दधवाड़िया चारण खेमराज ने, जिसको मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह ने महाराव अखेराज की नाबालिगी के समय सिरोही भेजा था, वि० सं० १७०७ (ई० स० १६५०) में महाराव अखेराज की प्रशंसा के कुछ छंद बनाये, जिनमें महाराव सुरतान का ५१ वर्ष जीना लिखा है:—

भाणेर कियो भारथ भयान, मारे कई हिन्दू मुसलमान ।
शीशोद कमंध खागां चढ़ाय, जद राव दतांणी जीत पाय ॥
दतांणी खेत रो विरद दीध, कई सोढ़ प्रवाड़ा अशा कीध ।
एकावन वरस जीव्यो अनाड़, जीतो निज बावन महागाड़ ॥
पालिआ लाड़ कवियां अपार, सासण चोरासी दिया सार ।
(सोढ़=सुरतान. प्रवाड़ा=काम. अनाड़=वीर) ॥

इन (सुरतान) का स्वर्गवास वि० सं० १६६७ (ई० स० १६१०) में हुआ, अतएव इनका जन्म वि० सं० (१६६७–५१=) १६१६ (ई० स० १५५९) में होना निश्चित होता है.

महाराव मानसिंह के समय हुआ था और बाहड़मेरी के पुत्र होते ही उस फ़साद की जड़ जम गई, जिससे बाहड़मेरी अपने पुत्र को लेकर अपने पीहर इस अभिप्राय से चली गई, कि मेरे पुत्र का कल्याण सिरोही में न रहने से ही होगा. महाराव सुरतान गद्दीनशीन हुए, उस समय के पहिले से ही राज का काम देवड़ा बीजा † (बजा) हरराजोत करता था. उसने देखा, कि यदि महाराव सुरतान को ख़ारिज कर महाराव मानसिंह के बालक पुत्र को गद्दी पर बिठलाया जावे तो राज का सारा काम मेरे ही अधिकार में रह जायगा. इस विचार से उसने डूंगरावत देवड़ों को अपने पक्ष में लेकर महाराव सुरतान को मारडालने या इनसे राज्य छीनने का प्रपंच रचा और राज का सब काम अपनी इच्छानुसार करने लगा. महाराव का चचा सूजा रणधीरोत बहादुर राजपूत था और अपने पास अच्छे अच्छे घोड़े तथा मरने मारनेवाले राजपूत रक्खा करता था, जिससे देवड़ा बीजा उससे जलता था. बीजाने सोचा, कि महाराव सुरतान से राज्य छीनकर महाराव मानसिंह के कुंवर को गद्दी पर बिठलाने में जबतक सूजा ज़िन्दा है तब तक सफलता न होगी, इसलिये पहिले उसको मारने का उपाय करना चाहिये. इस काम को करने के लिये उसने अपने पक्षवालों (डूंगरावतों) से कहा, जिन्होंने उसके विरुद्ध राय दी, परन्तु

† देवड़ा बीजा का महाराव सुरतान से क्या सम्बन्ध था, यह ऊपर (पृ० २१७ में) दिये हुए वंशवृक्ष में स्पष्ट बतलाया गया है.

उसने उनका कहना न मानकर एक दिन मौक़ा पाकर अपने चचेरे भाई रावत सेखावत की मारफ़त सूजा के मकान पर राजपूत भेज उसको मरवा डाला, फिर उसकी जागीर पर जाकर वीजा ने उसका सारा माल असबाब तथा घोड़े छीन लिये. सूजा की स्त्री ने अपने पुत्र पृथ्वीराज और स्यामदास को एक खड्डे में छिपाकर बचालिया और उनको लेकर वह आबू की तरफ़ चली गई. सूजा का पुत्र माला उस (वीजा) के साथ की लड़ाई में मारा गया था.

सूजा को मारने बाद वीजा ने महाराव मानसिंह के कुंवर को बाहड़मेर से बुलाया और उसके आने की ख़बर पाकर वह उसकी पेशवाई करने को गया, तब महाराव को निश्चय होगया, कि अब वीजा मुझको भी मारडालने का यत्न करेगा, इसलिये ये शिकार के बहाने सिरोही से चलकर रामसेण को चलेगये और इनके चचा सूजा की स्त्री भी अपने पुत्रों को लेकर इनके पास वहीं चली आई.

देवड़ा वीजा ने महाराव मानसिंह के पुत्र की पेशवाई कर उसको अपनी गोद में लिया ऐसे में दैवइच्छा से वह बालक एकाएक मर गया, जिसपर निराश होकर वह (वीजा) पीछा लौटा और सिरोही की गद्दी पर बैठने का उद्योग करने लगा. उसने देवड़ा सूरा व समरा से, जो डूंगरोत देवड़ा तेजसिंह के पुत्र नरसिंह के बेटे थे, कहा कि मुझको सिरोही की गद्दी पर बिठलादो और उनको बहुत कुछ समझाया, लेकिन् उन्होंने अपनी कुलमर्यादा से न हटकर यही जवाब दिया, कि

महाराव लाखा के वंश में अभी तो बीस आदमी मौजूद हैं, जहांतक उनके वंश का एक बरस का लड़का भी विद्यमान होगा, तबतक तुम सिरोही की गद्दी पर नहीं बैठ सकते. इसपर वीजा के साथ उनका बिगाड़ होगया और वह (वीजा) अपनी इच्छानुसार सिरोही की गद्दी पर बैठ ही गया, जिससे वे नाराज़ होकर सिरोही से चले गये.

वीजा ने सिरोही की गद्दी पर बैठकर ४ महीने तक वहां का राज्य किया. जब यह वृत्तान्त उदयपुर के प्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंह को मालूम हुआ तब उन्होंने देवड़ा कल्ला को, जो महाराव जगमाल के छोटे पुत्र मेहाजल का बेटा और उदयपुर का भानजा था, फ़ौज देकर सिरोही पर भेजा और वहां की गद्दी पर बिठला दिया, जिससे वीजा भागकर ईडर चला गया.

देवड़ा कल्ला सिरोही का राव हुआ, परन्तु जैसे महाराव सुरतान की गद्दीनशीनी के समय देवड़ा वीजा ज़बरदस्त बनकर राज्य का काम अपनी इच्छानुसार करने लगा वैसे ही इस (कल्ला) के वक़्त में चीबा† खींवा भारमलोत ने राज्य का सब काम अपने हाथ में रक्खा. देवड़ा समरा, सूरा और देवड़ा हरराज (जो डुंगरावत तेजसी का पोता और देवड़ा सूरा का चचेरा भाई था) राव कल्ला के पास चले गये, लेकिन् वे इससे प्रसन्न न रहे. इसके वक़्त में चीबों का ज़ोर यहांतक बढ़ गया,

† चीबा भी देवड़ों की एक शाखा है, ऐसा मुंता नेणसी लिखता है. पहिले सिरोही राज्य में कई गांव चीबों के थे, जो सब इस समय पालनपुर राज्य में हैं.

कि वे दूसरे सर्दारों को तुच्छ समझने तथा उनका द्वेष करने लगे. एक दिन राव कल्ला तो दर्बार से उठ गया और देवड़ा समरा, सूरा व हरराज जाजम पर बैठे हुए थे. इनको देखकर चीबा पाता ने फ़र्राशसे कहा कि 'जा जाजम उठा ला.' फ़र्राश वहां गया उस समय देवड़ा समरा, सूरा व हरराज उसपर बैठे हुए थे, जिससे वह चुपचाप लौट आया. फिर चीबा पाता ने उससे पूछा, कि जाजम क्यों नहीं लाया? इसपर उसने उत्तर दिया कि ठाकुर समरा, सूरा और हरराज उस पर बैठे हुए हैं. इसपर उसने क्रुद्ध होकर फ़र्राश से कहा कि क्या वे तेरे बाप लगते हैं ? जा जाजम उठा ला. ये शब्द सुनने बाद वह पीछा वहां पर गया तो उन सर्दारों ने ही उससे पूछा कि क्या चीबा पाता जाजम मंगवाता है ? फ़र्राश ने कहा कि हां. इस पर वे उस जाजम पर से उठ गये और इतना ही बोले कि 'ईश्वर ने चाहा तो अब हम राव कल्ला की जाजम पर ही न बैठेंगे.' उसी वक्त से वे महाराव सुरतान को फिर सिरोही की गद्दी पर बिठलाने के उद्योग में लगे. उन्होंने महाराव के पास रामसेण जाकर इनके राजतिलक निकाला और अपनी तरफ़ से इन्हींको सिरोहीराज्य के स्वामी समझने लगे. अब उन्होंने बीजा को अपने पक्ष में लेना चाहा, जो उस वक्त ईडर के राव के पास था और उसको पीछा महाराव सुरतान के पास बुलाया. बीजा ईडर से मदद लेकर सिरोत्रां गांव में होता हुआ रोह में पहुंचा तब फौज के साथ उसके आने का हाल राव कल्ला तथा चीबा खींवा को

मालूम हुआ, जिसपर उन्होंने तुरंत ही देवड़ा रावत हांमावत को ५०० सवारों के साथ गिरवर की घाटी के नाके पर वीजा को रोकने के लिये भेजा. रावत हांमावत मालगांम में आ ठहरा इतने में वीजा वरमाण में पहुंचा. उस वक़ वीजा के साथ १५० सवार थे. वरमाण से १ कोस पर उनकी लड़ाई हुई, जिसमें वीजा की जीत हुई और रावत के ४० आदमी मारे गये, ६० घायल हुए और वह (रावत) स्वयं ज़ख्मी हुआ. वीजा की तरफ़ का केवल १ आदमी मारा गया. इस लड़ाई में विजय पाकर वीजा रामसेण जाकर महाराव सुरतान के पास उपस्थित हुआ और अपने अपराध की उसने क्षमा मांगी. उसके आने से महाराव सुरतान का फिर ज़ोर बढ़ा. अब इन्होंने सोचा, कि राव कल्ला तो सिरोही का मालिक है और उसके पास फौज बहुत है इसलिये उससे लड़कर राज्य छीनने में बड़ी फौज की आवश्यक्ता होगी. इसपर वीजा ने यह राय दी, कि जालोर का मालिक मलिकखां यदि अपना सहायक बनजावे तो अपना इरादा पार पड़ सकता है. महाराव सुरतान को भी उसकी यह राय पसंद हुई और मलिकखां के पास आदमी भेजकर कहलाया, कि अगर आप हमारी मदद करें तो रु० १०००००) हम आपको देंगे, जिसपर मलिकखां ने यही उत्तर दिया, कि एक लाख रुपयों के लिये मैं अपने भाई बन्धुओं को मरवाना नहीं चाहता, यदि सिरोही के ४ परगने सियाणा, बड़गांव, लोहियाणा और डोडियाल देना स्वीकार करो तो मैं आपकी मदद करने को तय्यार हूं. कितनेक सरदारों की

यह राय हुई, कि ये परगने दे दिये जावें. दूसरों ने यह कहा कि ये परगने दे देना तो अच्छा नहीं. इसपर वीजा ने कहा, कि मलिकखां ये परगने मुफ्त में लेना नहीं चाहता, किन्तु अपना सिर देकर मांगता है, इस वास्ते उनके देने में कुछ हानि नहीं है. वीजा की यह राय महाराव सुरतान को भी पसंद हुई और चारों परगने मलिकखां को देना स्वीकार किया, जिसपर वह १५०० सवार लेकर महाराव सुरतान से आमिला. यह ख़बर पाते ही राव कल्ला ४००० फ़ौज लेकर कालंद्री में आया और वहां पर मोरचेबंदी कर बैठा, जिसकी ख़बर महाराव सुरतान के पास पहुंची उस समय इनके पास भी ३००० फ़ौज इकट्ठी हो चुकी थी. महाराव (सुरतान) ने कालंद्री पर चढ़ाई कर राव कल्ला से लड़ना चाहा, परन्तु देवड़ा समरा, सूरा, वीजा आदि को, जो दूरदर्शी और वीर राजपूत थे, महाराव की राय पसंद न हुई, जिससे उन्होंने निवेदन किया, कि अपने कालंद्री से क्या प्रयोजन है, अपने को तो सीधा सिरोही पर जाना चाहिये. यदि राव कल्ला को लड़ना स्वीकार होगा तो वह स्वयं लड़ने को चला आवेगा. महाराव ने भी इस कथन को स्वीकार किया. फिर फ़ौज के तीन टुकड़े कर सिरोही की तरफ़ भेजे. कालंद्री से एक कोस पर राव कल्ला ने आकर उनका रास्ता रोक लिया, जिससे वहां पर लड़ाई हुई. उसमें महाराव सुरतान की जीत हुई और राव कल्ला भाग निकला. महाराव की तरफ़ के बीस आदमी मारे गये, जिनमें देवड़ा सूरा नरसिंहोत (जो देवड़ा

समरा का भाई था) मुख्य था, राव कल्ला की तरफ़ के बहुतसे राजपूत मारे गये, जिनमें मुख्य चीबा पाता, सीसोदिया मुकुंददास, सीसोदिया दलपत और सीसोदिया श्यामदास थे. इस लड़ाई में विजय पाने के बाद महाराव सुरतान सिरोही आकर दूसरी बार वहां की गद्दी पर बैठे, इस वक़्त इनकी अवस्था १५ वर्ष के क़रीब थी. राव कल्ला का ज़नाना सिरोही में था, जिसको इन्होंने हिफाज़त व इज़्ज़त के साथ जहां राव कल्लाथा वहां पहुंचा दिया. कल्लाके वंशज गोडवाड़ में वीसलपुर, वांकली और कोरटा में रहे.

देवड़ा वीजा फिर सिरोही का मुसाहिब बना और उसने फिर अपना ढंग पहिलेकासा ही इख़्तियार करना शुरू किया. थोड़े ही समय में वह फिर ज़बरदस्त बनगया, जिससे महाराव उससे अप्रसन्न रहने लगे. इन्हीं दिनों महाराव का विवाह बाहड़मेर हुआ था और राणी बाहड़मेरी भी, सिरोही में थी. उसने वीजा का यह ढंग देख महाराव से निवेदन किया, कि सिरोही के राजा आप हैं या वीजा ? इन्होंने उत्तर दिया कि सिरोही का राजा तो मैं हूं परन्तु वीजा को यहां से निकाले विना मेरा काम चलना कठिन है और उसके लिये अच्छे राजपूत चाहियें, जो अभी मेरे पास नहीं हैं, महाराव का यह कथन सुनकर बाहड़मेरी ने, जो एक बुद्धिमान और वीरप्रकृति की स्त्री थी, उत्तर दिया, कि यदि पेटभर खाने को दोगे तो राजपूत बहुत मिल जायेंगे. इस पर महाराव ने बाहड़मेरी की सलाह से २० अच्छे राजपूत बाहड़मेर से बुलाकर अपने पास रक्खे, जिससे वीजा का ज़ोर कम होता गया. स्वयं

बीजा के दो छोटे भाई लूंणा व माना, जो बहादुर राजपूत थे, अपने भाई का पक्ष छोड़कर महाराव की सेवा में आ रहे. इस प्रकार दिनों दिन बीजा का पक्ष निर्बल होता गया और थोड़े समय बाद वह सिरोही से निकाला जाने पर अपनी जागीर में जा रहा, परन्तु उसकी खटपट करने की आदत वैसी ही बनी रही.

इन दिनों में बीकानेर के महाराव रायसिंह सोरठ को जाते हुए सिरोही के समीप पहुंचे तो महाराव सुरतान ने उनका आतिथ्य किया और उन्होंने भी इनकी बहुत कुछ इज्ज़त की. खटपटी स्वभाव का देवड़ा बीजा भी बहुत से आदमी साथ लेकर महाराव से मिला और बड़ी लाचारी के साथ अपना पक्ष लेने की उनसे प्रार्थना की और यहांतक लालच दिया, कि यदि मुझको सिरोही का राज्य मिलजावे तो मैं आधा राज्य बादशाह अकबर के नज़र कर दूं, परन्तु महाराव ने उसका कहना न माना, क्योंकि वे यह बात भलीभांति जानते थे, कि उसका सिरोही-राज्य पर कुछ भी हक़ नहीं है, तो भी आधा राज्य बादशाह को दिलवाकर अपनी खैरख्वाही बतलाना उन्हें भी इष्ट था, जिससे उन्होंने महाराव सुरतान से कहा, कि यदि आप अपना आधा राज्य बादशाह को देदेवें तो बीजा की तरफ़ का खटका ही दूर कर दूं महाराव ने इसे स्वीकार किया जिससे उन्होंने बीजा को सिरोही-राज्य के बाहर निकाल दिया और जो आधा राज्य बादशाह को दिया था उसके प्रबन्ध के लिये ५०० सवारों सहित राठौड़ मदना पातावत

को नियतकर वे सोरठ को चले गये. फिर उन्होंने बादशाह अकबर के नाम इस आशय की अर्ज़ी लिखी कि 'सिरोही के राव सुरतान को उसके रिश्तेदार बीजा ने ऐसा तंग किया, कि उसने मुझसे मिलकर अपने राज्य का आधा हिस्सा हुज़ूर के नज़र करना स्वीकार किया, जिसपर मैंने बीजा (हरराजोत) को निकाल कर सिरोही का आधा राज्य जो शाही खालिसे में आया उसपर थाने के तौर अपने साथ के ५०० आदमी छोड़ आया हूं, आगे जैसी हुज़ूर की इच्छा.' इस अर्ज़ी के पहुंचने पर बादशाह के दीवान और बख़्शी आदि सिरोही के आधे राज्य की व्यवस्था करने लगे.

अब सिरोही राज्य पर एक नई आपत्ति आपड़ी, जिसका वर्णन किया जाता है:—

वि० सं० १६२८ (ई० स० १५७१) फाल्गुन सुदि १५ को मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह का देहान्त उदयपुर से ८ कोस पश्चिम में गोगूंदा गांव में हुआ. महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र प्रसिद्ध वीर प्रतापसिंह थे और छोटे बहुतसे थे. महाराणी भटियाणी के ऊपर महाराणा का प्रेम विशेष होने के कारण उन्होंने अपने राज्य की बिगड़ी हुई दशा में भी ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को राज्य न देना और भटियाणी के पुत्र जगमाल को छोटा होने पर भी अपने पीछे मेवाड़राज्य का मालिक बनाना चाहा और उसके लिये सब प्रबन्ध कर दिया, परन्तु उनका देहान्त होने पर सरदारों ने सोचा, कि बादशाह अकबर जैसा

प्रबल शत्रु मेवाड़ के महत्त्वको नष्ट करना चाहता है, चित्तोड़ का प्रसिद्ध किला छूट गया है और नवीन राजधानी उदयपुर पर भी बादशाही अधिकार है, ऐसे विपत्ति के समय में प्रतापसिंह जैसे वीर और हक़दार को राज्य से विमुख कर जगमाल को गद्दी पर बिठलाने से मेवाड़ की और भी बर्बादी होगी. इस विचार से सरदारों ने महाराणा की इच्छा के विरुद्ध उनके बड़े कुंवर प्रतापसिंह को ही गद्दी पर बिठलाया, जिससे जगमाल नाराज़ होकर जहाजपुर चला गया और वहां से बादशाह की सेवा में जा रहा. बादशाह को मेवाड़वालों के गौरव को नष्ट करने के लिये उनमें आपस की फूट फैलाना इष्ट था, इसलिये जगमाल को जागीर देने का विचार हो ही रहा था, इतने में महाराव रायसिंह की उपर्युक्त अर्ज़ी बादशाह की सेवा में पहुंची, जिसपर दीवान और बख़्शी ने प्रार्थना की, कि 'सीसोदिया जगमाल की शादी सिरोही के राव मानसिंह की पुत्री से हुई है, सिरोही के मुल्क से वह परिचित भी है और उसके लिये अर्ज़ भी कराता है. इस पर बादशाह ने फ़र्माया कि जगमाल राणा का बेटा है और लायक है, इसलिये सिरोही का आधा राज्य उसी को बख़्शा जावे. फिर जगमाल शाही हुक्म लिखवाकर सिरोही आया तो महाराव सुरतान ने अपना आधा राज्य उसके सुपुर्द कर दिया. बीजा देवड़ा भी सिरोही का आधा राज्य पाने की उम्मेद में बादशाह के पास गया था, परन्तु देहली में उसकी दाल न गली तब सीसोदिया जगमाल से मेलकर वह उसके साथ सिरोही चला आया.

अब एक मिआन में दो तलवार की नांई सिरोही में दो राजा रहने लगे. महाराव सुरतान तो राजमहलों में रहते थे और जगमाल दूसरे मकानों में. पहिले इन दोनों के बीच किसी प्रकार का वैरभाव न था, परन्तु जगमाल की स्त्री को वैर की आग सुलगाने की बुद्धि सूझी और उसपर फूस डालने का काम वीजा ने किया. एक दिन जगमाल को उसकी स्त्री ने कहा, कि मेरे सामने मेरे बाप के रहने के महलों में दूसरे रहें, यह मुझसे सहन नहीं हो सकता. इसपर जगमाल ने महाराव सुरतान के रहने के महलों पर अपना अधिकार जमाना चाहा, जिससे दोनों के बीच वैरभाव खड़ा होगया, जिसको वीजा अपनी हिकमतअमली से बढ़ाता गया. एक दिन महाराव सुरतान कहीं गये हुए थे, ऐसे अवसर पर जगमाल और वीजा ने उनके महलों पर हमला कर दिया, परन्तु उस समय सोलंकी सांगा, चारण आसिआ दूदा और कितने ही दूसरे राजपूतों ने, जो वहां पर थे, ऐसी बहादुरी के साथ उनका सामना किया, कि जगमाल राजमहलों पर अधिकार न कर सका और बड़ी शर्मिंदगी के साथ उसको वहां से लौटना पड़ा. अब जगमाल ने देखा, कि महाराव के आते ही सिरोही छोड़ना पड़ेगा, इसलिये वह वीजा को साथ लेकर पहिले ही वहां से चल धरा और बादशाह अकबर के पास पहुंचकर प्रार्थी हुआ तो बादशाह ने उसकी मदद के वास्ते महाराव रायसिंह चंद्रसेनोत (जोधपुर के महाराव चंद्रसेन का तीसरा पुत्र) और दांतीवाड़ा के मालिक कोलीसिंह की मातहती में सिरोही

पर अपनी फौज भेजी. जगमाल के शाही फौज के साथ आने की खबर पाकर महाराव सुरतान ने सिरोही छोड़ आबू पर रहना इस विचार से स्वीकार किया, कि वहां पर रहकर लड़ने में विजय की संभावना विशेष है. जगमाल ने सिरोही पर अपना अधिकार जमा लिया और वह राजमहलों में रहने लगा. फिर उसने शाही फौज की सहायता से लड़ाई कर आबू का क़िला भी महाराव से छीनना चाहा और उसके लिये फौज के साथ आबू की तरफ़ कूच किया. उधर महाराव सुरतान भी उसका सामना करने को आये और उसकी फौज से २ कोस पर अच्छे मौक़े की जगह में ठहरे. जगमाल की सहायक फौज ने महाराव पर हमला करने में हार होने की संभावना देखकर यह सोचा, कि पहिले सर्दारों के ठिकानों पर हमला किया जावे तो सर्दार लोग अपने अपने ठिकानों की रक्षा करने के लिये महाराव को छोड़कर चले जायेंगे, उस वक़्त इन पर हमला करेंगे तो सहज में जीत जायेंगे. यह राय सबको पसंद हुई और देवड़ा वीजा हरराजोत, राठौड़ खींवा मांडणोत आदि को कई मुसल्मान सिपाहियों के साथ परगना भीतरट पर भेजना निश्चय हुआ. इस पर देवड़ा वीजा ने सीसोदिया जगमाल तथा राठौड़ रायसिंह से कहा, कि सुरतान बड़े ही वीर पुरुष हैं और मैं इनकी युद्धकुशलता से परिचित हूं. आप मुझको अलग करना चाहते हैं तो मैं भीतरट पर जाने को तय्यार हूं; परन्तु जिस वक़्त महाराव आपपर हमला करें उस वक़्त सावधान रहना. इस पर राठौड़ों ने ताने के तौर पर कहा, कि जहां पर

मुर्ग़ नहीं होता वहां तो सदा रात ही रहती होगी. यह सुनकर वीजा लज्जित होगया और भीतरट की तरफ़ लाचार उसको जाना पड़ा.

इधर महाराव सुरतान ने देवड़ा समरा को ख़बर दी, कि वीजा फौज के साथ परगने भीतरट की तरफ़ गया है, जिसपर उसने यही राय दी, कि अब देरी करने का वक्त नहीं है. गांम दताणी में सीसोदिया जगमाल और राव † रायसिंह का डेरा है, उनपर एक दम हमला कर देना चाहिये. वि० सं० १६४० (ई० स० १५८३) कार्तिक सुदि ११ के दिन देवड़ा समरा की राय के अनुसार महाराव सुरतान ने नक्क़ारा बजाते हुए उनपर हमला कर दिया. बड़ी देर तक लड़ाई होती रही, जिसमें महाराव सुरतान की वीरता देखकर सामनेवाले भी चकित होगये. अन्त में सीसोदियों तथा राठौड़ों ने पीछे पैर दिये और फतह का झंडा महाराव के हाथ रहा. इस लड़ाई में सीसोदिया जगमाल, राव रायसिंह चन्द्रसेनोत तथा कोलीसिंह दांतीवाड़ावाला तीनों मुखिये काम आये और उनके साथ के बहुतसे आदमी मारे गये. राव रायसिंह के जो राजपूत मारे गये उनमें मुख्य राठौड़ गोपालदास किसनदासोत गांगावत, राठौड़ सादूल महेसोत कूंपावत, राठौड़ पूरणमल मांड़णोत कूंपावत, राठौड़ लूंणकरण सुरताणोत गांगावत, राठौड़ केसोदास

† बादशाह अकबर ने वि० सं० १६३६ (ई० स० १५८२) में जोधपुर के महाराव चंद्रसेन के तीसरे पुत्र रायसिंह को 'राव' की पदवी दी और सोजत का इलाक़ा उसको जागीर में दिया था.

ईसरदासोत, पड़िहार गोरा राघवोत, पड़िहार भाण अभावत, देवा उदावत, बारहट ईसर, मांगलिया किसना, मांगलिया गोपाल भोजावत, धांधू खेतसी, भाटी कान अबावत, राठौड़ खींवा रायसलोत, चौहान सेखा झांझणोत, सेहलोत बाला, पंचोली भाण अभावत आदि थे †.

बादशाह अकबर की भेजी हुई सेना की बुरी तरह हार हुई और थोड़े ही आदमी भागकर बचने पाये. महाराव रायसिंह का नक्कारा ‡, शस्त्र, घोड़े तथा सामान, ऐसे ही सीसोदिया जगमाल आदि का सब सामान महाराव सुरतान के हाथ लगा. इस लड़ाई में महाराव सुरतान की फौज के थोड़े ही राजपूत मारे गये, जिनमें मुख्य देवड़ा समरा नरसिंहोत था. जब महाराव सुरतान ने खेत सम्भाला, उस समय प्रसिद्ध चारण कवि आढ़ा दुरसा को, जो राव रायसिंह के साथ था, ज़ख्मी हुआ पाया. महाराव के साथ के एक राजपूत ने उस-

† ये नाम मूंता नैणसी की ख्यात से उद्धृत किये गये हैं. जोधपुर की ख्यात की हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक की (जो ५ जिल्दों में पूर्ण हुई है) पहिली जिल्द में केवल राव रायसिंह के साथके ३२ प्रसिद्ध पुरुषों की नामावली दी है, जो इस लड़ाई में मारे गये थे. उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है, कि सीसोदिया जगमाल के साथ के २५ राजपूत तथा दांतीवाड़ा के कोलीसिंघ के १५ आदमी मारे गये. दूसरे भी कितने ही मारे गये और घायल हुए, परन्तु उनकी संख्या मालूम नहीं हुई.

‡ यह नक्कारा अबतक सिरोही में रक्खा हुआ है. जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के समय इस नक्कारे तथा राव रायसिंह के दूसरे सामान को, जो महाराव सुरतान ने छीना था, पीछा लेने का यत्न किया गया था, परन्तु उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई.

को देखकर कहा. कि इस सर्दार को भी दूध पिलाना (मारडालना) चाहिये, इस पर दुरसा ने कहा, कि मैं राजपूत नहीं, किन्तु चारण हूं, राजपूतों को मेरा मारना उचित नहीं है. इस पर महाराव ने कहा, कि यदि तुम चारण हो तो इस समरा देवड़ा की तारीफ़ में, जो अभी मारा गया है, कोई दोहा कहो. इस पर उसने तत्क्षण यह दोहा कहा:—

धर रावां जश डूंगरां, व्रद पोतां सत्र हाण ।
समरे मरण सुधारियो, चहु थोकां चहुआण ॥ १ ॥

भावार्थ—समरा ने चारों तरह से अपना मरण सुधारा अर्थात् महाराव के राज्य की रक्षा की, डूंगरों (पहाड़ों) की तारीफ़ करवाई (जिनमें रहकर लड़ाई की), अपने वंशजों को सन्मान दिलाया (कि उनका पूर्वज ऐसा वीरपुरुष हुआ) और शत्रुओं को हानि पहुंचाई.

यह दोहा सुनते ही महाराव बहुत ही प्रसन्न हुए और उसकी यहांतक क़द्र की. कि उसको पालकी में बिठला कर अपने साथ लेगये और उसके घावों का इलाज करवाया. फिर उसके आराम होने पर उसको अपना पोलपात बनाकर अच्छी जागीर ‡ दी.

‡ महाराव सुरतान ने आढा दुरसा को पेसुआ तथा साल गांव जागीर में दिये थे, फिर उसको जांखर तथा ऊड़ गांव जागीर में मिले. दुरसा की वीररस की कविता राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध है. उसकी कविता से प्रसन्न होकर जोधपुर तथा उदयपुर के राजाओं ने उसके तथा उसके पुत्रों को कई गांव दिये और उनका बहुत कुछ सन्मान किया. दुरसा वीरप्रकृति का पुरुष

इस लड़ाई में विजय पाने से महाराव सुरतान की वीरता की बहुत कुछ प्रसिद्धि हुई, क्योंकि यह विजय केवल इनकी वीरता से ही प्राप्त हुई थी.

सीसोदिया जगमाल के मारेजाने के कारण सिरोहीराज्य पर से सीसोदियों का अधिकार तो उठगया, परन्तु बीजा हरराजोत को महाराव सुरतान से पूर्ण द्वेष बना रहा, जिससे वह फिर बादशाह अकबर के पास पहुंचा और सिरोही का राज्य प्राप्त करने का उद्योग करने लगा. बादशाह भी राव रायसिंह आदि के मारेजाने और अपनी सेना के भाग आने के कारण महाराव से अप्रसन्न हो रहा था, जिससे उसने जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह को राव रायसिंह का बदला लेने को फौज के साथ सिरोही पर भेजा और जामबेग को उनके साथ कर दिया, बीजा भी इनके साथ लौट आया, इन्होंने आकर देश को लूटना शुरू किया. महाराव सुरतान सिरोही छोड़कर आबू पर चले गये. मोटे राजा ने वि० सं० १६४४ (ई० स० १५८४) फागुन सुदि ५ को नीतोरा गांव को लूटा और एक मास तक सारी फौज सहित वे वहीं रहे, परन्तु आबू पर चढ़कर महाराव से लड़ने में

था. वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह ने चारणों से अप्रसन्न होकर उनके कुल गांव छीन लिये, जिसपर बहुतसे चारण तागा (खुदकशी) करके मरमिटे. उस समय आढा दुरसा ने भी अपने गले में छुरी मारी थी. दुरसा के वंशज आढा ओपा की ईश्वरभक्ति की कविता बड़ी ही सरल और नैसर्गिक सौन्दर्ययुक्त मिलती है.

सब प्रकार हानि देखकर उन्होंने सोचा, कि अब किसी प्रकार अपनी बात रखनी चाहिये. इसपर उन्होंने दगा करना चाहा और आपस में सुलह करने के बहाने से बगड़ी के ठाकुर राठौड़ वैरसल पृथ्वीराजोत की मार्फ़त किसी प्रकार का छल कपट न करने का वचन दिलाकर महाराव की तरफ़ के देवड़ा सांवतसी सूरावत, देवड़ा पत्ता सूरावत, राड़बरा हंमीर कुंभावत, राड़बरा बीदा सिकरावत, चीबा जेता तथा देवड़ा सांवतसी को अपने पास बुलाया और उनको धोखे से राम रतनसीहोत के हाथ से मरवा डाला. राठौड़ वैरसल अपना वचन भंग होने के कारण बहुत ही बिगड़ा और उसने मोटे राजा के डेरे पर जाकर उनके सामने राम रतनसीहोत को मारा. फिर वह भी अपने ही हाथ से कटार खाकर मर गया, जिसका स्मारकचिन्ह (चबूतरा) नीतोरा गांव में बना है. इस प्रकार उनका उद्योग निष्फल होने पर देवड़ा वीजा वास्थानजी की तरफ़ से आबू पर चढ़ने के इरादेसे जामबेग आदि को सेना सहित उधर ले चला, जिसकी ख़बर मिलते ही महाराव सुरतान भी वास्थानजी के निकट आपहुंचे और वहीं लड़ाई हुई, जिसमें वीजा मारा गया. जामबेग का भाई घायल हुआ और उनकी फौज भाग निकली. फिर मोटा राजा उदयसिंह राव कल्ला को दूसरी बार सिरोही की गद्दी पर बिठला कर शाही फौज के साथ लौट गये, जिसके पीछे महाराव आबू से सिरोही आये तो राव कल्ला विना लड़े सिरोही छोड़कर चला गया और सिरोही पर पीछा महाराव का अधिकार होगया †.

† बीकानेर की तवारीख़ में लिखा है, कि "जगमाल के सिरोही में मारे जाने के कुसूर पर

महाराव सुरतान का ऊपर जो वृत्तान्त लिखा गया है वह सिरोही की ख्यात, जोधपुर की ख्यात, मूंता नैणसी की ख्यात तथा जोधपुर से मिले हुए कितने एक पुराने कागज़ों के आधारपर लिखा गया है. अब हम महाराव सुरतान के विषय में जो कुछ अबुलफज़ल ने अपने अक़बरनामे में लिखा है उसका खुलासा यहां पर लिखते हैं:—

" हि० स० ६७६ (वि० सं० १६२८=ई० स० १५७१) में जब अक़बर बादशाह ने अजमेर से अपने सर्दार ख़ानकलां को गुजरात फ़तह करने के वास्ते भेजा उस समय मार्ग में सिरोही के पास पहुंचने पर एक राजपूत ने उक्त ख़ानकी पीठ में जमधर मारदिया. ख़ान सख़्त घायल हुआ, परन्तु उसकी जान बचगई और वह राजपूत वहीं मारा गया. इसका बदला लेने के लिये शाही फौज सिरोही में दाख़िल हुई. राव (सुरतान) सिरोही छोड़ पहाड़ों में चला गया. १५० राजपूतों ने सिरोही में शाही फौज का सामना किया और वे सब लड़कर मारे गये."

अकबर बादशाह ने राव रायसिंह को फौज देकर सिरोही भेजा. उन्होंने चार दिन तक लड़ाई की और पांचवें दिन सिरोही के राव को पकड़ लिया. जिसपर राव के चारण दूदा आसिया ने राव रायसिंह को शाइरी सुनाकर खुश किया तो रायसिंह ने उसकी शाइरी के इनाम में राव सुल्तान को बादशाह से सिरोही दिलाने का वादा किया और बादशाह के पास पहुंचकर इस इक़रारको पूरा किया." इस लेख को हम विश्वास योग्य नहीं मान सकते. महाराव रायसिंह के विषय में ऊपर (पृ० २२६—२२७में) जो लिखा गया है, वह मूंता नैणसी की ख्यातसे उद्धृत किया गया है और उसीको हम प्रामाणिक समझते हैं.

" हि० स० ९८४ (वि० सं० १६३३=ई० स० १५७६) में जालोर के ताजखां और सिरोही के राव सुरतान ने बग़ावत की, जिसपर बादशाह अक़बर ने तरसूखां, बीकानेर के राव रायसिंह और सय्यद हाशम को फौज देकर उनको ताबे करने के लिये भेजा. वे पहिले जालोर पर गये और ताजखां को आधीन किया फिर उसको साथ लेकर सिरोही पर आये. राव सुरतान ने उनसे मुलाक़ात करली तब वे ताजखां को साथ लेकर बादशाह के पास गये. उस वक़्त बादशाह मेवाड़ में था और राना प्रतापसिंह से लड़ाई हो रही थी. बादशाह के बांसवाड़े पहुंचने पर ख़बर लगी, कि राव सुरतान ने फिर फ़साद शुरू किया है जिससे रायसिंह बीकानेरी व सय्यद हाशम को फिर सिरोही पर भेजा. सुरतान क़िले में बैठकर उनका सामना करने लगा. शाही फौज ने कई वार क़िले पर हमला किया लेकिन् उसको हरवक़्त हारकर लौटना पड़ा. इस तरह लड़कर क़िला फ़तह करने की उम्मेद निष्फल जाने पर वे क़िले को घेर कर पड़े रहे. इन्हीं दिनों राव रायसिंह बीकानेरी का ज़नाना बीकानेर से आता हुआ सिरोही की हद में पहुंचा, जिसकी ख़बर पाकर महाराव सुरतान उसको लूटने † के लिये गया, लेकिन् वह रायसिंह के राजपूतों से हारकर आबू पर चला गया. रायसिंह क़िले पर अधिकार कर आबू पर जा पहुंचा. राव सुरतान ने सुलह

† अबुलफज़ल के इस लेख में कहांतक सचाई है, यह हम नहीं कह सकते, परन्तु इसका उल्लेख न तो मूंता नेणसी ने किया है और न बीकानेर की किसी ख्यात में लिखा मिलता है.

करना चाहा और राव रायसिंह से मिलकर उसके साथ बादशाह के पास चला गया और सय्यद हाशम हाकिम के तौर पर सिरोही में रहा."

"हि॰ स॰ ९८९ (वि॰ सं॰ १६३८=ई॰ स॰ १५८१) में राव सुरतान के बड़े बेटे ने कुछ फौज इकट्ठी कर सय्यद हाशम को मार डाला और वह (राव सुरतान) भी अपने बेटे से जा मिला. इस पर बादशाह ने राणा प्रतापसिंह के भाई जगमाल को सिरोही का राज्य देकर ऐतमादखां जालोरी को लिखा, कि सिरोही का राज्य सुरतान से छीन जगमाल को दिला देना. जगमाल जालोर गया, जहां से ऐतमादखां को साथ ले सिरोही पर गया. सुरतान ने उसका मुक़ाबला किया, लेकिन् हारकर पहाड़ों में जाना पड़ा. जगमाल सिरोही पर क़ाबिज़ होगया. फिर ऐतमादखां, राव मालदेव राठोड़ के पोते रायसिंह, बीजा देवड़ा और बहुतसी फौज जगमाल की मदद के लिये छोड़कर जालोर चला गया. हि॰ स॰ ९९१ (वि॰ सं॰ १६४०= ई॰ स॰ १५८३) में जालोरवालों ने कुछ फ़साद किया. जिसको मिटाने के लिये देवड़ा बीजा तो जालोर गया और सुरतान, जो घात में लगा हुआ था, पोशीदा रास्तों से अपने महलों में चला आया. उस वक़्त जगमाल और रायसिंह को, जो सोये हुए थे, घेर लिया तो उन दोनों ने सामना किया, परन्तु दोनों मारे गये."

अक़बरनामे में जगमाल, सीसोदिये को सिरोही का राज्य

मिलने का जो हाल लिखा है, वह ऊपर हमारे लिखे हुए जगमाल के शाही फौज के साथ दूसरी बार सिरोही में आने से सम्बन्ध रखता है और जगमाल व रायसिंह के मारेजाने का वृत्तान्त जो उस (अक्बरनामे) में लिखा गया है उसमें बिलकुल सचाई नहीं है, क्योंकि उसमें जगमाल व राव रायसिंह का सिरोही के महलों में माराजाना लिखा है. वास्तव में वे दोनों दत्ताणी की लड़ाई में मारे गये थे. खास रियासत जोधपुर की ख्यात से तथा वहीं से मिले हुए वि० सं० १६६८ और १६६९ (ई० स० १६११ और १६१२) के काग़ज़ों में रायसिंह का दत्ताणी के रणखेत में कितने ही नामी राठौड़ों के साथ माराजाना लिखा है और उनके साथ जो मारे गये उनमें से कई एक के नाम भी लिखे हुए हैं. इसी तरह मूंता नेणसी भी अपनी ख्यात में उनका दत्ताणी की लड़ाई में माराजाना लिखता है. अबुलफज़ल ने शाही फौज के हारेजाने के कारण असली बात को छिपाकर महलों में माराजाना लिखा है, जो सर्वथा बनावटी है. देवड़ा बीजा का जालोर का फ़साद मिटाने के लिये वहां जाना लिखा है उसमें भी सत्यता पाई नहीं जाती, क्योंकि प्रथम तो बीजा को जालोर से कोई ताल्लुक़ ही नहीं था. फिर क्या शाही फौज में कोई अफ़सर ही नहीं था, कि बीजा जालोर भेजा जावे. राव रायसिंह आदि की राय से बीजा भीतरट परगने पर भेजा गया था, जिसका वास्तविक हाल हम ऊपर दर्ज कर चुके हैं और मूंता नेणसी भी वैसाही लिखता है. अक्बरनामे में यह भी लिखा है,

कि 'हि० स० १००१ (वि० सं० १६५०=ई० स० १५६३) में अक़बर बादशाह ने मोटे राजा को सिरोही के राव (सुरतान) को ताबे करने के लिये भेजा,' परन्तु मोटे राजा ने सिरोही पर जाकर क्या किया, इस विषय में अबुलफज़ल ने कुछ भी नहीं लिखा, जिसका कारण मूंता नेणसी के लेख से यही अनुमान होता है, कि मोटे राजा महाराव सुरतान को ताबे न करसके, जिससे वे मुल्क को लूटने बाद निराश होकर ही पीछे लौटे हों.

टॉड साहब ने अपने 'राजस्थान' की दूसरी जिल्द के ६ ठे प्रकरण में लिखा है, कि जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के समय आसोप का कूंपावत मुकुंददास (नाहरखां) आबू पर से राव सुरतान को छल से पकड़कर उक्त महाराजा के पास लेगया और वे इनको बादशाह के दर्बार में लेगये. परन्तु ये (राव सुरतान) बादशाह के आगे सिर झुकाना नहीं चाहते थे, इसलिये इनको एक छोटीसी खिड़की के मार्ग से इस अभिप्राय से लेगये, कि सिर झुकाये बिना भीतर जाना ही न होसके, परन्तु इसका मतलब ये जानगये, जिससे इन्होंने पहिले पैर अन्दर डाले फिर बिना सिर झुकाये भीतर गये. टॉड साहब का यह लिखना भी निर्मूल है, क्योंकि महाराज जसवंतसिंह वि० सं० १६६५ (ई० स० १६३८) के जेठ में जोधपुर के राजा हुए, जिससे क़रीब २८ वर्ष पहिले महाराव सुरतान का स्वर्गवास हो चुका था.

महाराव सुरताण बड़े ही वीरप्रकृति के राजा थे. इनको मेवाड़

के महाराणा प्रतापसिंह की नांई स्वतंत्रता ही प्रिय थी, जिससे बहुधा अपनी सारी अवस्था इन्होंने आराम छोड़कर लड़ने भिड़ने में ही व्यतीत की. इन्होंने ५२ लड़ाइयां लड़ीं (देखो ऊपर पृ० २१८ का नोट), परन्तु धैर्य को कभी न छोड़ा. कई बार इनसे राज्य छूट गया और लगातार आपत्ति उठाने पर भी ये बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं का सामना करते रहे. लड़ते लड़ते इनकी हिम्मत बहुतही बढ़गई थी और आबू जैसे पहाड़ का सहारा होने से ये शत्रु की बड़ी सेना को कुछ भी नहीं समझते थे तथा सदा वीरता के साथ उसका मुकाबला करते थे. शाही फौजों से ये कई बार लड़े और उनको शिकस्त दी. अक़बरनामे में लिखा है, कि ये अक़बर के पास गये थे. यदि ऐसा हुआ हो तो भी वह नाममात्र के लिये हो. इन्होंने बादशाह की आधीनता कभी स्वीकार न की और समय के कई हेरफेर देखकर इस सच्चे वीरपुरुष ने ३६ वर्ष राज्य कर वि० सं० १६६७ (ई० स० १६१०) आसोज वदि ६ को इस असार संसार को छोड़ा और अपना नाम प्रसिद्ध वीरों की नामावली में सदा के लिये लिखवा लिया.

महाराव सुरतान जैसे बहादुर थे वैसे ही विद्वानों का सन्मान करनेवाले तथा उदार प्रकृति के राजा थे. सिरोही राज्य के अनेक गांवों में इनके नाम के शिलालेख मिलते हैं, जो इनकी उदारता का स्मरण कराते हैं. इन्होंने ८४ गांव दान में दिये ऐसी प्रसिद्धि है (देखो ऊपर पृ० २१८ का नोट). वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) में इन्होंने

अपने पुरोहितों को कोजरा गांव दान में दिया. वि० सं० १६३६ (ई० स० १५८२) में ये आबू जारहे थे, उस समय हाथल गांव के ब्रह्माणों ने इनसे निवेदन किया, कि सैकड़ों वरसों पहिले यह (हाथल) गांव हमारे पूर्वजों को दान में मिला था और अबतक यह हमारे अधिकार में है, परन्तु इसका ताम्रपत्र खोगया है. इसलिये आप कृपाकर इसका नया ताम्रपत्र खुदवा दीजिये. यह सुनकर इस दानी राजा ने जेठ सुदि १० को अपने नाम की नई सनद कर दी तथा उसका शिलालेख खुदवा दिया. वि० सं० १५६३ में नामी कवि आढा दुरसा को, जिसको इन्होंने अपना पोलपात बनाया था, कोड़पसाव दिया, जिसमें पेसुआ गांव दिया और दूसरे अनेक ब्राह्मण आदि को बहुतसी भूमि दान में दी थी.

पालड़ी गांव (आबू के नीचे) के ब्राह्मण भील तथा मीनों के उपद्रव से तंग होकर एक दिन इनके पास पहुंचे और अपनी आपत्ति का हाल कहकर यह निवेदन किया, कि आप कृपाकर हमारे गांव की रक्षा का प्रबन्ध करदीजिये. उसके बदले में हम प्रसन्नतापूर्वक अपना आधा गांव आप के नज़र करते हैं, परन्तु इस दानी राजा को यह मालूम था, कि वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में महाराव अखेराज ने उस गांव की चौकीदारी की लागत मुआफ़ करदी थी, जिससे स्पष्ट कह दिया, कि दान में दी हुई भूमि हम पीछी लेना नहीं चाहते, परन्तु तुम्हारे गांव की रक्षा का प्रबन्ध करदेंगे. फिर इन्होंने अपने चचा सूजा के

बेटे श्यामदास (सांमीदास) व पृथ्वीराज को उस गांव की रक्षा करने की आज्ञा दी, जिन्होंने पीछे से वि० सं० १६६६ (ई० स० १६१०) फाल्गुन सुदि १ को ब्राह्मणों से उनका आधा गांव देने की तहरीर अपने नाम लिखवाली. महाराव सुरतान की उदारता के और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं, परन्तु हम विस्तारभय से उन सबको यहां लिखना उचित नहीं समझते.

ये बड़े ही मिलनसार थे और राजपूताने के कई राजाओं के साथ इनकी मैत्री थी. जोधपुर के महाराव चन्द्रसेन को बादशाह ने मारवाड़ से निकाल दिया उस वक़ दो बरस तक वे सिरोही राज्य में रहे. उस समय इन्होंने उनका बहुत कुछ सन्मान किया और जब वे डूंगरपुर बांसवाड़े की तरफ़ गये उस समय अपनी माता तथा राणियों को सिरोही † छोड़ गये थे. मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह का छोटा भाई जगमाल दताणी की लड़ाई में इनके हाथ से मारा गया, परन्तु महाराणा के साथ इनका स्नेह वैसाही बना रहा. जब उक्त महाराणा की विद्यमानता में उनके कुंवर अमरसिंह की पुत्री केसरकंवर (सुखकंवर) का सम्बन्ध महाराव सुरतान से होने की बातचीत होती देख उनके भाई सगर ने उनसे निवेदन किया,

† जोधपुर के महाराव मालदेव पर बादशाही चढ़ाई हुई और जोधपुर उनसे छूट गया, उस समय उन्होंने भी अपने जनाने को हिफ़ाजत के लिये सिरोही भेज दिया था. उस वक़ सिरोही के राजा महाराव दूदा थे.

कि अपने भाई जगमाल को सुरतान ने ही मारा है, इसलिये सिरोही वालों से तो वैर लेना चाहिये, परन्तु उक्त महाराणा ने इनके साथ के स्नेह के कारण सगर के निवेदन पर कुछ भी ध्यान न दिया, जिससे उसने अप्रसन्न होकर कहा, कि मुझे सीख दो. इस पर महाराणा ने यही उत्तर दिया, कि 'तुम चाहो तो भले ही चले जाओ, परन्तु नामवरी तो जब जानें, कि हमारे घराने के नाम से देहली जाकर मुसल्मानों की सेवा से पेट न भरो'. इस प्रकार अपने भाई से बिगाड़कर के भी उक्त महाराणा ने अपनी पौत्री का विवाह अपने समान गुणशील वाले इन महाराव से कर ही दिया. इसी से इन दोनों राजाओं के बीच की मैत्री का अनुमान होसक्ता है.

महाराव सुरतान के १२ राणियां थीं, जिनमें से चंपाकंवर ईडरेची ने वि० सं० १६३९ (ई० स० १५८२) में सिरोही के पास चंपावती नामक बावड़ी बनवाई. इन राणियों से इनके दो पुत्र राजसिंह और सूरसिंह हुए थे, जिनमें से बड़े राजसिंह इनके पीछे सिरोही के राजा हुए.

प्रकरण छठा.

महाराव राजसिंह से लगाकर महाराव जगत्सिंह तक का वृत्तान्त.

महाराव सुरतान का स्वर्गवास होनेपर उनके ज्येष्ठ पुत्र राव राजसिंह वि० सं० १६६७ (ई० स० १६१०) आसोज वदि ६ को सिरोही की गद्दी पर विराजे. ये सीधे साधे और भोले राजा थे, जिससे इनका छोटा भाई सूरसिंह इनसे राज्य छीनने का प्रपंच करने लगा. वह राज्य का मुसाहिब होने के कारण प्रतिदिन अपना पक्ष दृढ़ करता गया, जिससे राज्य में दो दल होगये. देवड़ा भैरवदास समरावत व राघव डूंगरोत आदि कई देवड़े उसके पक्ष में बंध गये, परन्तु देवड़ा पृथ्वीराज सूजावत आदि अपने स्वामी महाराव राजसिंह के ही सहायक रहे. सूरसिंह राज्य के इलाके दबाने लगा और सिरोही का राज्य छीनने के लिये जोधपुर के महाराव सूरसिंह को अपना सहायक बनाना चाहा. महाराव सुरतान ने दताणी की लड़ाई में राव रायसिंह चंद्रसेनोत को मारा था, जिसका वैर उसने मिटाना चाहा और उसके

लिये यह बात तै हुई, कि महाराव सूरसिंह के कुंवर गजसिंह का विवाह देवड़ा सूरसिंह की लड़की से हो और उसी दिन २९ दूसरे राजपूतों के, जिनके रिश्तेदार दताणी की लड़ाई में मारे गये थे, सूरसिंह के पक्ष के राजपूतों की लड़कियों से हों, देवड़ा बीजा का जड़ाऊ कटार कुंवर गजसिंह के नज़र किया जावे और राव रायसिंह के डेरे का सब सामान तथा उनका नक्कारा जो महाराव सुरतान ने छीना था, पीछा दे दिया जावे. इसकी एवज़ में महाराज सूरसिंह देवड़ा सूरसिंह को सिरोही की गद्दीपर बिठलावें और बादशाह के पास लेजाकर उसको बादशाही सेवा में दाखिल करावें और उस (सूरसिंह) का पुत्र सिरोही के राज्य से कभी निकाला न जावे, इसका प्रबन्ध करें. यह बात आपस में तै हुई, जिसकी तहरीर वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) के फाल्गुन महीने में हुई और जोधपुर के महाराज सूरसिंह ने देवड़ा सूरसिंह को सिरोही का मालिक क़बूल कर लिया. इस खटपट से महाराव राजसिंह और सूरसिंह के बीच द्वेषभाव बढ़ता गया और अंत में दोनों भाइयों के बीच लड़ाई हुई, जिसमें महाराव की विजय हुई, जिससे सिरोही की गद्दी पर बैठने की उम्मेद सूरसिंह के दिल ही में रहगई इतना ही नहीं, किन्तु उसको सिरोही का राज्य छोड़कर भागना पड़ा.

सूरसिंह के हारकर भागने बाद देवड़ा पृथ्वीराज सूजावत राज्य का मुसाहिब बना और थोड़े ही दिनों में उसने वैसा ही ढंग इख़्तियार किया जैसा कि देवड़ा बीजा ने महाराव सुरतान के वक़्त में

किया था, जिससे महाराव राजसिंह और उसके बीच अनबनत बढ़ने लगी और उस (पृथ्वीराज) के भाई भतीजे आदि का बल होने के कारण वह मुल्क को लूटने लगा. मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह की पुत्री का विवाह महाराव सुरतान के साथ हुआ था और महाराव राजसिंह उक्त महाराणा के दोहिते थे. इस रिश्तेदारी के कारण उक्त महाराणा के कुंवर करणसिंह ने सिरोही की ऐसी दशा होनी ठीक न समझकर महाराव राजसिंह व देवड़ा पृथ्वीराज के बीच मेल कराने की इच्छा से इन दोनों को उदयपुर बुलाया और समझाइश के तौर पर बहुत कुछ कहा, जिसपर पृथ्वीराज ने उस समय तो वैसा ही वर्ताव करना स्वीकार किया, जिससे कुंवर करणसिंह ने दोनों को वहां से सीख दी, परन्तु सिरोही पहुंचते ही पृथ्वीराज ने अपना वचन तोड़कर फिर पहिलेकासा ही ढंग पकड़ा, इतना ही नहीं, किन्तु दिन दिन उसने अधिक ज़ोर पकड़ा, जिससे देश की दुर्दशा होने लगी.

वि० सं० १६७४ (ई० स० १६१७) भाद्रपद सुदि ६ को कुंवर गजसिंह (जोधपुरवाले) ने जालोर को विजय कर वहां के थानेपर भाटी गोपालदास आसावत और भाटी दयालदास को नियत किया, जिनसे महाराव राजसिंह ने कहलाया, कि यदि तुम पृथ्वीराज को सिरोही की हद से निकाल दो तो हम तुमको १४ गांव देंगे. उन्होंने यह बात कुंवर गजसिंह को मालूम करवाई और उनकी स्वीकृति होने पर भाटी दयालदास जोधपुर की फौज के साथ पृथ्वीराज पर चढ़ा

और उसको उसने सिरोहीराज्य से निकाल दिया, जिससे खूंणी परगने के १४ गांव कोट्टा, पालड़ी, नांवी, रांवाड़ा, मांचाल, आल्पा, पोसाल्या, वांडका, बाघीण, खेजड़िआ, भेव, अणदोर, अटवाड़ा और नारादणा जोधपुर वालों को दिये गये, परन्तु पृथ्वीराज पीछा चला आया, जिससे दूसरे साल उन गांवों पर पीछा महाराव ने अपना अधिकार कर लिया.

वि० सं० १६७४ (ई० स० १६१७) में महाराव ने प्रसिद्ध कवि आढा दुरसा की कविता से प्रसन्न होकर उसको जांखर गांव बख़्शा और भैरवदास समरावत को पाडीव की जागीर देकर अपने पास रक्खा. अब पृथ्वीराज महाराव और भैरवदास दोनों को मारने की घात में लगा और एक दिन महाराव सारणेश्वरजी के दर्शन करने को गये और भैरवदास पीछे रह गया, ऐसे में पृथ्वीराज के इशारे से उसके पांच बेटों तथा दो भतीजों ने मिलकर अचानक भैरवदास पर हमला कर उसको मारडाला. महाराव राजसिंह ने उसकी सेवा की क़द्रकर पाडीव की जागीर उसके बेटे रामा (भैरवदासोत) को बख़्श दी और उसको अपने पास रक्खा. अब पृथ्वीराज ने महाराव राजसिंह को छल से मारने का विचार किया और एक दिन अपने बेटे नाहरखां और चांदा तथा अपने भतीजे रामा व रायसिंह आदि को साथ लेकर वह अचानक महलों में आ पहुंचा. उस वक़्त महाराव के पास थोड़े से आदमी थे, क्योंकि पृथ्वीराज के अचानक वहां पहुंचने की संभावना तक न थी. इन लोगों को आते हुए देखकर महाराव ने अपना हाथ

तलवार पर डाला और पृथ्वीराज के पक्ष के २ राजपूतों को मारकर तलवार के कई घाव लगने बाद ये गिरे. इनके मारेजाने बाद वे लोग सीसोदिया पर्वतसिंह व रामा भैरवदासोत पर गये, परन्तु उन्हों-ने ऐसी बहादुरी से मुक़ाबला किया, कि पृथ्वीराज के साथियों को पीछा हटना पड़ा. वह (पृथ्वीराज) उस स्थानपर भी पहुंचा, जहां महाराव राजसिंह के ढाई बरस की अवस्था के कुंवर अखेराज थे, परन्तु उन-की धायने उनको एक कोटड़ी में लेजाकर बिस्तरों के बीच छिपा दिया. पृथ्वीराज ने उनको भी मारडालने के लिये इधर उधर बहुत कुछ हेरा, परन्तु उनका पता न लगा. लोगों में ऐसा भी प्रसिद्ध है, कि धायने कुंवर अखेराज की रक्षा करने के लिये उनको एक नाली के अन्दर छिपा दिया और अपने पुत्र को उनके बिस्तर पर सुला दिया. जब पृथ्वीराज ने आकर उससे पूछा, कि कुंवर कहां हैं तो धायने अपने पुत्र की तरफ़ अंगुली की, जिससे वह उस लड़के को मारकर चला गया. इस प्रकार धायकी बुद्धिमानी से कुंवर अखेराज की जान बचगई.

महाराव के ऊपर चूक होते ही महलों में हाका मच गया और बहुतसे राजपूत दौड़ आये, जिन्होंने पृथ्वीराज आदि को घेर लिया. देवड़ा रामा भैरवदासोत को मालूम होगया, कि कुंवर अखेराज की जान बच गई है, परन्तु पृथ्वीराज आदि घिरे हुए भी महलों में होने के कारण कुंवर (अखेराज) को हिफ़ाज़त की जगह में रखना उचित समझ कर उसने उनको बाहर निकाल लिया. फिर उसने तल-

कारकर पृथ्वीराज से कहा, कि 'हरामखोर ! तूने तो कुंवर अखेराज को भी मारना चाहा था, परन्तु ईश्वर ने उनको बचा लिया है.' पृथ्वीराज आदि दो पहर तक घिरे रहे और उनपर गोली व तीर चलते रहे. ऐसी दशा में शाम होने आई जिससे पृथ्वीराज ने सोचा कि यदि रातभर यहीं रहे तो अवश्य मारे जायेंगे. इसलिये कितने एक राजपूतों को आगे, कितने एक को पीछे और दूसरों को अपनी दोनों तरफ़ रखकर वह (पृथ्वीराज) वहां से भागा. महाराव के राजपूतों ने उसका पीछा किया. जिससे वह भी पीछे फिरकर उनसे लड़ता हुआ आगे बढ़ता गया, अतएव उसके बहुतसे आदमी मारे गये तो भी वह सहीसलामत अपने डेरे पर पहुंच गया, जहां से घोड़े पर सवार होकर अपने बचे हुए आदमियों को साथ ले पालड़ी गांव को भागगया. यह घटना वि० सं० १६७७ (ई० स० १६११) में हुई.

पृथ्वीराज को शहर सिरोही से निकालने बाद सीसोदिया पर्वतसिंह, देवड़ा रामा, दूदा करमसी, साह तेजपाल आदि ने बालक महाराव अखेराज को सिरोही की गद्दी पर बिठलाया और इनकी रक्षा करने तथा पृथ्वीराज को मारने या सिरोही राज्य में से निकालने का भार अपने ऊपर लिया. इनकी गद्दीनशीनी के थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने फौज इकट्ठीकर पृथ्वीराज को सिरोहीराज्य से निकाल दिया तो वह अपने सुसरालवाले देवल राजपूतों के यहां भीनमाल के इलाके में जा रहा. देवलों ने उसको चखला के भाखर (पहाड़) में एक

महाराव अखैराज (दूसरे), सिरोही ।

मज़बूत जगह रहने को दी, जहां पर वह अपने कुटुंब सहित रहने लगा. उसका बेटा चांदा अंबाभवानी की तरफ़ जा रहा और वहां से सिरोही के गांवों को लूटने लगा, इतना ही नहीं, किन्तु कितने एक गांवों का दाण (सायर का महसूल) भी लेने लगा. पृथ्वीराज के पक्षवाले बदनाम होगये और हरामखोर कहलाने लगे, जिससे राजपूत मात्र को उनसे घृणा होने लगी. पृथ्वीराज का भतीजा रायसिंह एक गांव लूटने गया वहीं मारा गया. सिरोही में रहनेवाले देवड़ा राजसी (डूंगरोत) और वीजा ने पृथ्वीराज को किसी तरह मारडालने का बीड़ा उठाया. फिर उन्होंने उस के पास पहुंचकर रामा भैरवदासोत आदि की बहुत कुछ बुराइयां कीं, जिसपर उस (पृथ्वीराज) ने विश्वास कर उनको अपने पास रखलिया. वे उसको मारने की घात में लगे रहे और एक दिन मौक़ा पाकर रात के समय उसको मारकर सिरोही चले आये. यह घटना वि० सं० १६८१ (ई० स० १६२४) में हुई. इस वक़्त तक चांदा के सिवाय पृथ्वीराज के सब बेटे मर चुके थे. चांदा बड़ा ही बहादुर राजपूत था. वह अपने बाप के मारेजाने से नाउम्मेद न हुआ, किन्तु सिरोहीराज्य के गांवों में विशेष लूट मचाने लगा. राज्य की तरफ़ से उसको मारने या पकड़ने के लिये पूरा बंदोबस्त किया गया था, परन्तु वह अपनी बहादुरी के कारण ही अकसर बच निकलता था.

महाराव अखैराज (दूसरे) ने होश संभालने बाद जो जो लखावत अपने पिता को मारने में शामिल थे उनमें से बहुतों को अपने

महलों में बुलाकर मरवाडाला और अपने पिता का वैर लिया †.

वि० सं० १६९९ (ई० स० १६४२) चैत्र सुदि १० को इन्होंने प्रसिद्ध कवि आढा दुरसा के वंशज (पौत्र) महेशदास को ऊड गांव दिया और वि० सं० १७०७ (ई० स० १६५०) में कई लाख रुपये लगाकर झरोखे (फूलगोखड़े) सहित सिरोही की महलात बनवाई और उसी वर्ष चैत्र सुदि १४ को उदयपुर के दधवाड़िया चारण खेमराज कवि को कायद्रां ‡ गांव बख़्शा.

वि० सं० १७११ (ई० स० १६५४) में चांदा ने नींबज पर कब्ज़ा कर लिया और १२० गांवों का वह हासिल लेने लगा, जिससे वि० सं० १७१३ (ई० स०

† राजसी सोदर पाट काज, राजसी तणो सुत अखैराज ।
लखावत सबळ बोलाय लीध, दिन एक निकंदन खळ कीध ॥
अड़वा न दीध खग आप अंग, राव ने दिये पतशाह रंग ।
पत वैर लियो निज अखेराज, सग्गुण चढ्यो चौगुणो चाव ।
अखेराज करायो महल एक, इन्द्र घटा जिम शोभंत देख ।
जड़ाया जाळियां काच जोख, गजरीत करायो सुभग गोख ॥
सतरो सुसंवत सातो वरस, लख कैक दाम लागा सरस ।
हर गोख जोख कवळास होय, जगमगत जोत फुल गोख जोय ।
दधवाड़ खैम कीरत कहाय, निज अडग रहो रव चंद ताय ॥

(दधवाड़िया कवि खेमराजकृत)

‡ संवत सत्तर सातो वरस, चैत सुदि चवदस्स ।
कासन्द्रा कबि खेम ने, अखमल दिया अवस्स ॥

१६५६) में महाराव अखैराज (दूसरे) ने सीसोदिया पर्वतसिंह, देवड़ा रामा भैरवदासोत, चीबा करमसी, खवास केसर आदि को फौज के साथ नींबज पर भेजा. उधर चांदा ने भी अच्छी तरह मोर्चेबंदी कर ली थी. कार्तिक वदि १४ के दिन नींबज पर हमला हुआ, परन्तु चांदा की मोर्चेबंदी की मज़बूती और महाराव की फौज की कमी के कारण दो पहर तक लड़ाई होने बाद महाराव की फौज वहां से लौट आई. इस लड़ाई में महाराव अखैराज की तरफ़ के ५० राजपूत मारे गये, १०० घायल हुए और देवड़ा राघोदास जगावत लखावत, जो राज्य के काम का मुखिया था मारा गया. इसके पीछे भी चांदा बराबर फ़साद करता रहा, लेकिन् थोड़े ही समय बाद उसका देहान्त होगया. उसका बेटा अमरा, जो उसके जैसा बहादुर न था, महाराव अखैराज के डर के मारे नींबज छोड़कर भाग गया और इधर उधर लूटमार करता रहा, परन्तु उसमें विशेष दम नहीं था.

महाराव अखैराज ने छोटी उमर से ही होश संभाल लिया था और १२ बरस की अवस्था से ही ये शत्रुओं से लड़ने लगे थे. वि॰ सं॰ १६८४ (ई॰ स॰ १६२७) में मेवाड़ के महाराणा करणसिंह का स्वर्गवास हुआ और महाराणा जगतसिंह मेवाड़ की गद्दी पर विराजे, जिन्होंने वि॰ सं॰ १६८५ (ई॰ स॰ १६२८) में सिरोही पर फौज भेजी, जो कितनेक गांवों को लूटकर लौट गई. इससे मेवाड़ तथा सिरोही की मैत्री में फ़र्क आगया, परन्तु वि॰ सं॰ १७०९ (ई॰ स॰ १६५२)

में महाराणा राजसिंह की गद्दीनशीनी हुई, उस समय महाराव अखेराज ने उनसे अपनी मैत्री पीछी दृढ़ कर ली.

महाराव अखेराज का बड़ा कुंवर उदयभान अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध चलने लगा, जिससे दोनों के बीच अनबतन होगई. जो बराबर बढ़ती ही गई. उदयभान बाग़ी सरदारों से मेल बढ़ाकर सिरोही की गद्दी पर बैठने का उद्योग करने लगा और वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) में एक दिन मौक़ा पाकर अपने पिता को क़ैदकर सिरोही की गद्दी पर बैठ गया. यह ख़बर सुनते ही मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने महाराव अखेराज के साथ की अपनी मैत्री के कारण राणावत रामसिंह को फौज के साथ सिरोही पर भेजा, जिसने उदयभान को निकाल दिया और महाराव अखेराज को क़ैद से छुड़ाया. फिर महाराव ने सिरोही की गद्दी पर बैठने बाद अपने पुत्र उदयभान व उसके एक बेटे को मरवा डाला †. चांदा के बेटे अमरा के अर्ज़ कराने पर

† सिरोही के दीवान खानबहादुर मुन्शी निआमतअलीखां ने सिरोही के पिछले हाल में लिखा है, कि 'महाराव अखेराज के दो कुंवर उदयसिंह और उदयभान थे, जिनमें से उदयसिंह ने अखेराज को क़ैद किया, जिससे अखेराज ने उसको मरवा डाला और अखेराज के पीछे उदयभान सिरोही के राजा हुए,' परन्तु उक्त मुन्शी का यह लिखना सही नहीं है, क्योंकि महाराव अखेराज के समय मूंता नेणसी ने अपनी ख्यात लिखी, जिसमें तथा उसी समय की बनी हुई मेवाड़ के प्रसिद्ध तालाब राजनगर पर लगी हुई ' राजप्रशस्ति ' के आठवें सर्ग के ३५ वें और ३६ वें श्लोकों में स्पष्ट लिखा है, कि 'सिरोही के स्वामी अखेराज को उसके पुत्र

महाराव अखेराज ने उसका अपराध क्षमा किया और उसको पीछा अपने पास बुलाकर जेतावाड़ा, देदापुरा, मकरोड़ा, बापला, पीथापुर, टोकरां, मेड़ा, गिरवर, मूंगथला, धनारी, आंवल और दलवाड़ा आदि गांव जागीर में दिये.

देहली के वृद्ध बादशाह शाहजहां के बेटे राज्य के लिये एक दूसरे से लड़ने लगे. उस समय दाराशिकोह और मुरादबख्श ने महाराव अखेराज को अपना मददगार बनाना चाहा और उसके लिये कई निशान † उक्त महाराव के पास भेजे, जिनमें से कितनेक मिले हैं, जिनका सारांश नीचे लिखे अनुसार है:—

शाहज़ादे दाराशिकोह का निशान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० ११ रबीउल् अव्वल हि० स० १०६० (वि० सं० १७०६= ई० स० १६४६).

"बराबर वाले सर्दारों और कारगुज़ारों में उम्दह राव अखेराज

उदयभान ने कैद किया था,' इसलिये हम मुन्शी निआमतअलीखां का लिखना स्वीकार नहीं कर सकते. मेवाड़ के इतिहास 'वीरविनोद' में भी उदयसिंह का अखेराज को कैद करना लिखा है, जो मुन्शी निआमतअलीखां के लेख के आधार से ही है और राजप्रशस्ति आदि के विरुद्ध है.

† बादशाह के शाहज़ादों की तरफ से मातहत राजाओं के नाम जो हुक्म आदि लिखे जाते वे 'निशान' और बादशाह की तरफ से जो लिखे जाते वे 'फ़र्मान' कहलाते थे.

शाही मिहर्बानियों से ख़ातिरजमा और इज़्ज़तदार होकर जानो, कि जो अर्ज़ी इन दिनों में ख़ैरख़्वाही के बाबत भेजी थी, वह मालूम हुई. वह सूबा शाहज़ादे से उतार लिया है और पीछे से दूसरा कोई आदमी नियत होकर वहां पहुंचेगा और उस (शाहज़ादे) को उस सूबे से निकाल देगा. तुमको चाहिये, कि हरतरह से ख़ातिरजमा रखकर ख़ैरख़्वाही और वफ़ादारी में दृढ़ रहो और अपने पर बादशाह की मिहर्बानी समझो."

इस निशान में जो शाहज़ादे से सूबा उतारने का ज़िक्र है, वह शाहज़ादे मुरादबख़्श से सम्बन्ध रखता हो.

शाहज़ादे मुरादबख़्श का निशान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० २६ रबीउल् अव्वल सन् २६ जुलूस मुताबिक़ हि० स० १०६६ (वि० सं० १७१२=ई० स० १६५५).

"ख़ैरख़्वाही की जो अर्ज़ी इन दिनों में भेजी वह मालूम हुई. तुमको चाहिये, कि ख़ातिरजमा रक्खो और बादशाही मिहर्बानी का भरोसा कर जल्दी हमारे पास हाज़िर होजाओ. हाज़िर होने बाद जो कुछ अर्ज़ होगी वह स्वीकार की जायेगी. हमारी मिहर्बानी अपने पर जान कर देर न करो और इस बारे में ताकीद जानो."

शाहज़ादे दाराशिकोह का दूसरा निशान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० १४

मुहर्रम हि० स० १०६७ (वि० सं० १७१३=ई० स० १६५६).

" खैरख्वाही की जो अर्जी भेजी, वह मुलाहिज़े हुई. हुक्मवाला के मुवाफ़िक फ़र्मान लिखा जाता है, कि तुम ख़ातिरजमा रखकर अपनी अच्छी जमीअत के साथ अपने इलाके का इंतिज़ाम रक्खो तथा ख़बरदार रहो और जब कोई काम मुश्किल हो तो हुज़ूर में आजाओ ताकि दूसरी तजवीज़ हो जायेगी."

हि० स० १०६७ (वि० सं० १७१३=ई० स० १६५६) के प्रारम्भ के आसपास सय्यद रफ़ीअ बादशाह शाहजहां के पास से शाहज़ादे मुरादबख्श के पास जाता हुआ दांतीवाड़े की हद में पहुंचा तो केसरीसिंह नाम के राजपूत ने, जो अगवे के तौर उसके साथ था, उसके साथ के दो तीन आदमियों को मारडाला और चार को घायल कर सात आठ हज़ार रुपया नकद और सामान लूट लिया. सय्यद ने शाहज़ादे के पास पहुंचकर सब हाल अर्ज़ किया, जिस पर उसने नीचे लिखे हुए आशय का निशान महाराव अखेराज के नाम भेजाः—

शाहज़ादे मुरादबख़्श का निशान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० ७ मुहर्रम सन् ३० जुलूस मुताबिक हि० स० १०६७ (वि० सं० १७१३=ई० स० १६५६).

"इन दिनों में हमारे हुज़ूर में यह अर्ज़ हुआ, कि सय्यद रफ़ीअ बादशाह के पास से हमारे पास आता था. जब वह दांतीवाड़े की हद में पहुंचा तो केसरी नामक राजपूत ने, जो हाथीवाड़े का रहनेवाला और अगवे के तौर पर साथ था, दुर्भाग्यवश सैयद के साथियों में से दो तीन आदमियों को मारडाला और तीन चार को ज़ख्मी कर सात आठ हज़ार नक़द और असबाब लूट लिया. इस वास्ते हुक्म दिया जाता है, कि इस निशान के पहुंचते ही उस अभागे को पूरी सज़ा दो और असबाब को तलाश करके हमारे पास भेज दो. क्योंकि इसी में खैरख्वाही और बेहतरी है और जो कभी देरी हुई तो इस बाबत की अर्ज़ बादशाह की सेवा में होगी, ऐसी हालत में नतीजा अच्छा न होगा, फिर पछताने से कुछ फ़ायदा न होगा. इस बारे में पूरी ताकीद जानो."

शाहज़ादे के इस निशान का कुछ फल न हुआ, जिससे इस बात की शिकायत बादशाह शाहजहां के पास पहुंची, जिसपर जो माल लूटा गया था, उसको तलाश कर मालवाले के पास पहुंचाने और आयन्दा सिरोहीराज्य की हद में ऐसी घटना न होने का बन्दोबस्त करने के विषय में उसने नीचे लिखे आशय का फ़र्मान महाराव अखेराज के नाम भेजा:—

बादशाह शाहजहां का फ़र्मान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० २३.........सन् ३०

जुलूस मुताबिक़ हि० स० १०६७ (वि० सं० १७१४=ई० स० १६५७).

" इन दिनों में हमारी हुजूर में अर्ज़ हुआ, कि तुम्हारे इलाके में बाज़े लोगों का माल असबाब चोरी गया इसलिये हुक्म होता है, कि तुम अपने इलाक़े में ऐसा बंदोबस्त करो और प्रबंध रक्खो, कि ऐसी घटनाएं कदापि न हों, और जो माल तुम्हारे इलाक़े में चोरी गया है उसको तलाश करके मालवाले को दे दो. वहां की जागीर तुमको इसलिये दी गई है, कि ऐसी घटनाएं वहांपर न हों और आदमी तथा मुसाफ़िर निश्चिंत होकर आया जाया करें. मुनासिब है, कि आगे को अपने इलाक़े से अच्छी तरह ख़बरदार रहो और ख़ातिरजमा रक्खो, कि तुम इस दरगाह के मातहत हो, इस वास्ते तुम्हारी जागीर में कोई दख़ल न देगा. ताक़ीद जानो".

शाहज़ादे दाराशिकोह का निशान महाराव अखैराज (दूसरे) के नाम. ता० ६ सफ़र सन् ३१ जुलूस मुताबिक़ सन् १०६८ हि० (वि० सं० १७१४=ई० स० १६५७).

" तुम्हारी अर्ज़ी मालूम हुई. तुमको चाहिये कि अपनी जमइअत के साथ अपने इलाक़े में रहकर पूरा बन्दोबस्त रक्खो. तुम्हारे काम की आवश्यक चिन्ता की जायेगी. तुमको हुज़ूर में बुलालेंगे. सब तरह से ख़ातिरज़मा रक्खो और अपने पर बादशाह की

मिहर्बानी समझो और किसी तरह मत घबराओ".

शाहजादे दाराशिकोह का निशान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० ७ मुहर्रम हि० स० १०६६ (वि० सं० १७१४ कार्तिक वदि ३=ई० स० १६५७ ता० २४ अक्टूबर).

" जो अर्ज़ी ख़ैरख़्वाही के साथ उस तरफ़ की खबरों की हमारे पास भेजी, वह मालूम हुई. हम तुमको अपना वफ़ादार और ख़ैरख़्वाह समझ कर तुम्हारी भलाई में लगे रहते हैं. इसलिये यह हुक्म जारी होता है, कि अच्छी मज़बूती और बेफिक्री से अपने इलाके में रहकर ऐसा प्रबंध करो, कि कोई दुश्मन उस तरफ़ से न निकलने पावे. महाराजा जशवंतसिंह (जोधपुरवाला) हमारी ख़ैरख़्वाही और वफ़ादारी करता है. उसने जालोर में अच्छी फौज ठहरा रक्खी है और इरादा कर लिया है, कि आवश्यकता के वक्त तुमारे पास फौज पहुंच जायेगी. उचित है, कि ज़रूरत के वक्त उस फौज को इशारा करदो, वह तुम्हारा साथ देगी, तुम सब प्रकार से निश्चिंत रहो और अपनेपर बादशाह की मिहर्बानी समझो. उधर का हाल हररोज़ अर्ज़ी से भेजते रहो. अगर शाहज़ादा मुरादबख़्श तुमको बुलावे तो कभी जाने का विचार मत करो".

शाहज़ादे दाराशिकोह का निशान महाराव अखेराज (दूसरे) के नाम. ता० ७ रज्जब सन् १०६८ हि० (वि० सं० १७१५=ई० स० १६५८).

“ जो अर्ज़ी इन दिनों में उधर की खबरों की हमारे पास भेजी वह मुलाहिज़े हुई. तुमको मालूम रहे, कि महाराजा जशवंतसिंह और कासिमखां उज्जैन से आगरे को रवाना होगये हैं और अहमदाबाद को जाते हैं. बादशाह ने खलिलुल्लाहखां और राव शत्रुशाल (बूंदीवाले) को २०००० सवार से उस तरफ़ तैनात किया है और फौजखर्च के वास्ते २००००००) रुपया भेजा है, और ये लोग बहुत जल्द महाराजा से मिलेंगे और उस बेअदब नाशुक्रे (मुरादबख्श) को सख्त सजा देंगे. तुमको चाहिये कि अपनी जमइअत के साथ उस लश्कर में पहुंचो और उधर के ज़मींदारों में से जो कोई तुम्हारे पास हो, उसको बादशाही इनायतों का उम्मेदवार करके लेजाओ. पड़ोस के ज़मींदारों को भी लिखदो, कि जो वह गुनहगार (उधर से) भागना चाहे तो उसको पकड़ने तथा मारने में पूरी कोशिश करें, जैसे गोकुल उज्जैनिया ने शुजाअ के हारने और भागने बाद किया था. उसने उस (शुजाअ) के साथियों को लूट लिया और जो कुछ माल असबाब उसका और उसके साथियों का उसके हाथ लगा, वह हमने उसीको बख्श दिया. और उस पर बादशाही इनायतें भी हुईं. इसी तरह जो कुछ माल असबाब नालायक मुराद बाग़ी और उसके साथियों का वे ज़मींदार ले सकेंगे, उसे हमने जान बूझ कर उन्हें बख्श दिया है. और कान्हजी के नाम का निशान भेजा जाता है, उसको उसके पास पहुंचा देवे और अपनी तर्फ़ से भी उसे लिखदेवे और उसको उकसावे, कि इस वक्त हरतरह की जो कुछ

कोशिश और बहादुरी इस बारे में करेगा वह बिहतरी का सबब होगा".

इन निशानों से साफ़ ज़ाहिर है, कि शाहज़ादा दाराशिकोह महाराव अखेराज को अपने पक्ष में लेना चाहता था, क्योंकि उसकी ख़ास मन्शा मुरादबख्श को बिगाड़ने की थी. महाराव ने दाराशिकोह की सहायता करना कबूल किया हो, ऐसा पाया जाता है, क्योंकि उस (दाराशिकोह) के निशानों से स्पष्ट है, कि महाराव अखेराज और उसके बीच पत्रव्यवहार बराबर चल रहा था. मुरदबख्श का केवल एक ही निशान आया, जिसके बाद उसने फिर कुछ भी नहीं लिखा. इससे भी ऊपर का अनुमान दृढ़ होता है. फिर जमादिउल अव्वल हि० स० १०६६ (वि० सं० १७१५=ई० स० १६५८) में दाराशिकोह औरंगज़ेब से मुकाबला करने के लिये गुजरात से आगरे को जाता हुआ सिरोही भी आया था.

महाराव अखेराज बहादुर राजा हुए. सिरोही राज्य में इनकी वीरता की बहुत कुछ प्रसिद्धि चली आती है. क़रीब ५३ वर्ष राज्य करने बाद वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) में इनका स्वर्गवास हुआ. इनका जन्म वि० सं० १६७४ (ई० स० १६१७) मार्गशीर्ष वदि १० को हुआ था. इनके ११ राणियां थीं, जिसमें से रतनकंवर ने वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) में सिरोही में रतनबावड़ी (रतनबाव) बनवाई. इन राणियों से इनके २ कुंवर उदयभान और उदयसिंह हुए थे, जिनमें से बड़े उदयभान तो इन (महाराव अखेराज) की

विद्यमानता में ही मारे गये थे. इनकी बहिन कमलकंवर का विवाह उदयपुर के महाराणा करणसिंह के साथ हुआ था और इनकी राजकुमारी आणंदकंवर † का विवाह जोधपुर के महाराजा जशवंतसिंह के साथ वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) वैशाख वदि २ को सिरोही में हुआ था.

महाराव अखेराज के पीछे इनके छोटे कुंवर उदयसिंह (दूसरे) सिरोही की गद्दी पर बैठे, परन्तु करीब २½ बरस राज्य करने बाद इनका वि० सं० १७३३ (ई० स० १६७६) में देहान्त होगया, जिससे इनके भतीजे वैरीशाल, जो महाराव अखेराज के बड़े कुंवर उदयभान के पुत्र थे, सिरोही के राजा हुए.

महाराव वैरीशाल के शुरू वक्त में जोधपुर के स्वामी महाराजा जशवन्तसिंह थे, जिनसे बादशाह औरंगज़ेब बहुतही जलता था, इसलिये उसने उनको पेशावर इलाके में जमरूद के थाने पर भेज दिया, जहांपर वि० सं० १७३५ (ई० स० १६७८) में उनका देहान्त हुआ, जिससे उनके साथ के राजपूत उनकी राणियों को लेकर मारवाड़की तरफ़ चले और मार्ग में लाहोर मक़ाम पर महाराजा अजीतसिंह का जन्म हुआ. यह ख़बर पाते ही औरंगज़ेब ने अपनी पहिले की नाराज़ी के सबब मारवाड़ को ख़ालसे कर लिया और अजीतसिंह को सीधे देहली ले आने का हुक्म दिया, जिसपर दुर्गदास आदि राठोड़ उनको लेकर देहली गये और कृष्णगढ़ के राजा रूपसिंह की हवेली में ठहरे. बादशाह ने नागोर के राव

† सुसराल का नाम अतसुखदे था.

रायसिंह के बेटे इन्द्रसिंह को खिलअत देकर जोधपुर की हुकूमत के लिये भेजदिया और वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) श्रावण वदि २ के दिन देहली के कोतवाल को हुक्म दिया, कि जशवंतसिंह की राणियां व बेटे को, जिनका डेरा रूपसिंह की हवेली में है, नूरगढ़ में ले आवे और कोई सामना करे तो उसको सज़ा दीजावे. इसका हाल राठौड़ों को पहिले ही से मालूम होगया था, जिससे सोनिंग आदि राठौड़ महाराजा अजीतसिंह को गुप्तरीति से लेकर मारवाड़ की तरफ़ चले और महाराजा जशवंतसिंह की राणी देवड़ी के पास सिरोही ले आये. महाराव वैरीशाल ने सोचा, कि ज़ाहिरा तौर से उनका सिरोही में रहना अगर बादशाह को मालूम होगया तो सिरोहीराज्य पर बड़ी आपत्ति आपड़ेगी, इस वास्ते उनको अपने राज्य के कालंद्री क़स्बे में गुप्त रखने की व्यवस्था कर दी और महाराजा अजीतसिंह की बाल्यावस्था के कई वर्ष सिरोही राज्य में ही व्यतीत हुए.

उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने बादशाह औरंगज़ेब को नाराज़ किया, जिससे वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में उसने मेवाड़ पर चढ़ाई की. बादशाह स्वयं तो अजमेर में ठहरा और उसका बड़ा शाहज़ादा मुअज्ज़म बड़ी फौज के साथ उदयसागर तालाव पर और छोटा शाहज़ादा अक़बर मारवाड़ की तरफ़ जेतारण के निकट रहा. महाराणा राजसिंह का देहान्त वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८०) कार्तिक सुदि १० को होगया और उनके ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह मेवाड़ के महाराणा

हुए. औरंगज़ेब के साथ की इस लड़ाई में राठौड़ों ने मेवाड़ को अच्छी मदद दी. प्रसिद्ध राठौड़ वीर दुर्गदास कई हज़ार सवारों के साथ महाराणा की सेवा में चला गया था. राजपूतों ने देखा, कि लड़कर शाही फौज को मेवाड़ से निकालना तो कठिन है, इसलिये राठौड़ दुर्गदास आदि ने बादशाह के घर में ही बखेड़ा डालने का विचार किया और राठौड़ दुर्गदास, राव केसरीसिंह चौहान, राव रत्नसिंह चूंडावत कृष्णावत आदि बड़े शाहज़ादे मुअज़्ज़म से मेल करने के उद्योग में लगे, परन्तु वह तो उनके फंदे में न आया तब राठौड़ दुर्गदास व राव केसरीसिंह ने जेतारण की तरफ़ जाकर छोटे शाहज़ादे अक़बर को बादशाह बनाने का लालच दिया. अक़बर ने कमउमर और कमअक्ली के सबब उनकी दमपट्टी में आकर बादशाह बन वहीं से अपने नाम का खुत्बा व सिक्का ज़ारी कर दिया. शाही फौज तथा राठौड़ व सीसोदियों की फौज मिलाकर उसके पास ७०००० से अधिक फौज होगई, जिसको लेकर वह बादशाह औरंगज़ेब पर चढ़ा. यह हाल सुनते ही बड़ा शाहज़ादा मुअज़्ज़म उदयसागर से तीन दिन में ८० कोस चलकर वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८१) माघ सुदि ६ को अपने बाप की मदद के लिये अजमेर पहुंचा. उधर से शाहज़ादा अक़बर भी बड़ी फ़ौज के साथ बादशाही फौज से डेढ़ कोस पर आ ठहरा, परन्तु बादशाह की हिकमतअमली से वह डरकर वहां से भागा और शाही फौज ने उसका पीछा किया. राठौड़ दुर्गदास सोनिंग आदि उसके साथ

रहे. इस प्रकार घर का बखेड़ा खड़ा हो जाने से बादशाह ने मेवाड़-वालों से सुलह करली और अक़बर की गिरिफ्तारी की तरफ़ उसका ध्यान रहा. अक़बर अजमेर से भागकर मारवाड़ में आया, फिर कुछ दिन सिरोही इलाक़े में ठहरता हुआ मेवाड़ के पहाड़ी इलाक़े भोमट के रास्ते से डूंगरपुर की तरफ़ गया. उसके पकड़ने के लिये शाहज़ादा मुअज़्ज़म लगा हुआ था, जिसने महाराव वैरीशाल के नाम नीचे लिखे आशय का निशान भेजा:—

शाहज़ादे मोअज़्ज़म का निशान महाराव वैरीशाल के नाम. ता० ६ रबिउल् अव्वल हि० स० १०९२ (वि० सं० १७३८ चैत्र सुदि १०=ई० स० १६८१).

"बहादुरी की ख़ासियत, दिलेरी की निशानी राव वैरीसाल बड़ी शाही मिहर्बानियों से सर्बलंद होकर जाने, कि इन दिनों में बाग़ी अक़बर, दुर्गा, सोनिंग और दूसरे बदनसीब राठौड़ों समेत तुम्हारे इलाक़े से निकलता हुआ भागा है और तुमने फौज जमा न होने तथा बाग़ियों की ख़बर न पाने के सबब उनको मारने और क़ैद करने की कोशिश नहीं की. अब सुनने में आया है, कि तुम इस मुआमले में कोशिश करना चाहते हो, इस वास्ते हुक्म होता है, कि जो वह बाग़ी फिर तमाम कम्बख़्तों के साथ तुम्हारे इलाक़े में आवे तो बादशाही इनायतों से ख़ातिरजमा रखकर बफ़ादारी और मिहनत के साथ उनको पकड़लो या मारडालो, यह बात बुज़ुर्ग बादशाही दर्गाह और

हमारे हुज़ूर में बड़ी कारगुज़ारी की समझी जायेगी. इसका नेक नतीजा मिलेगा. इसमें सख्त़ ताकीद जानो."

वि० सं० १७५४ (ई० स० १६९७) में † महाराव वैरीशाल

† महाराव वैरीशाल और इनके पीछे गद्दीनशीन होनेवाले राजा के विषय में ख्यातों तथा तवारीखों के लिखनेवालों ने बड़ी गलतियां की हैं. मुन्शी देवीप्रसाद वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) में महाराव अखेराज का देहान्त और महाराव उदयसिंह की गद्दीनशीनी होना तथा वि० सं० १७५४ (ई० स० १६९७) में उन (महाराव उदयसिंह) का देहान्त होना मानते हैं और महाराव वैरीशाल का नाम छोड़ ही गये हैं. इसी तरह सिरोही की एक ख्यात में भी महाराव वैरीशाल का नाम छोड़ दिया गया है, परन्तु इनका राजा होना तथा २१ वर्ष (वि० सं० १७३३ से १७५४ तक) राज्य करना सिद्ध है, क्योंकि इनके राज्यसमय के दो शिलालेख तथा तीन ताम्रपत्र हमको मिले हैं, जो वि० सं० १७३३ से १७५२ (ई० स० १६७६ से १६९५) तक के हैं और ऊपर दर्ज किया हुआ शाहज़ादा अकबर और दुर्गदास आदि राठौड़ों को गिरफ्तार करने बाबत का शाहज़ादा मुअज़्ज़म का निशान भी इन्हीं (महाराव वैरीशाल) के नाम का है. खानबहादुर निआमतअलीखां ने लिखा है कि 'राव वैरीशाल का देहान्त वि० सं० १७४९ (ई० स० १६९२) में हुआ और उनके पीछे राव सुरतान गद्दी पर बैठे, लेकिन राव उदयसिंह के दूसरे कुंवर छत्रसाल उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह की मदद लेकर आये, जिससे सुरतान भागकर जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के पास चले गये. छत्रसाल के पीछे मानसिंह गद्दीनशीन हुए, जिनको उम्मेदसिंह भी कहते थे.' मुन्शी निआमतअलीखां का यह लिखना भी भरोसे लायक नहीं है, क्योंकि महाराव वैरीशाल का देहान्त वि० सं० १७४९ (ई० स० १६९२) में नहीं, किन्तु वि० सं० १७५४ (ई० स० १६९७) में हुआ (वि० सं० १७५२ का उनका ताम्रपत्र भी मिल चुका है). इसी तरह छत्रसाल की मदद उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह ने की हो यह भी संभव नहीं, क्योंकि महाराणा संग्रामसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १७६७ (ई० स० १७११) पौष सुदि १ को हुई उस समय सिरोही की गद्दी पर महाराव मानसिंह थे.

का सिरोही में परलोकवास हुआ और तीन राणियां इनके साथ सती हुईं. इनकी छत्री की प्रतिष्ठा वि० सं० १७५६ (ई० स० १७०३) फाल्गुन सुदि २ को हुई.

महाराव वैरीशाल के पीछे महाराव उदयसिंह के कुंवर छत्रशाल वि० सं० १७५४ (ई० स० १६६७) में सिरोही की गद्दी पर बैठे, जिनको दुर्जनसिंह और दुर्जनशाल भी कहते थे. वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०५) में इनका स्वर्गवास होने पर इनके पुत्र महाराव मानसिंह (दूसरे) राजा हुए, जिनको उम्मेदसिंह भी कहते थे. इनको तलवार का बड़ा ही शौक था, जिससे इन्होंने यह हुक्म जारी किया, कि सिरोहीराज्य भर में कच्चे लोहे की तलवार न बनाई जावे. इससे सिरोही की तलवारें दूसरी जगह की तलवारों से अच्छी होने लगीं और तलवारों के विषय में सिरोही का नाम हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध होगया (सीरोही तलवार कटारी लाहोर की), महाराव मानसिंह (दूसरे) ने अपनी तजवीज़ से जो तलवार बनवाई, वह ' मानसाही ' नाम से राजपूताने में अब-तक प्रसिद्ध है,

देहली के बादशाह फर्रुखसिअर की तरफ़ से जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह गुजरात के सूबेदार मुक़र्रर होकर गुजरात जाते हुए वि० सं० १७७२ (ई० स० १७१५) में सिरोही आये, उस समय महाराव मानसिंह (दूसरे) ने उनकी अच्छी ख़ातिरदारी की और अपनी राजकुमारी की शादी उनके साथ करदी. इन दोनों राजाओं के बीच

बड़ाही स्नेह रहा. वि० सं० १७८१ (ई० स० १७२४) में महाराजा अजीतसिंह का देहान्त होने पर उनके कुंवर अभयसिंह जोधपुर राज्य के मालिक बने और वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में उन्होंने बादशाह मुहम्मदशाह से गुजरात की सूबेदारी की सनद हासिल की, परन्तु अहमदाबाद के सूबेदार सर्बलंदखां ने उनको सूबेदारी सौंपने से इन्कार किया, इसलिये उन्होंने शाही फौज व पचास तोपों के साथ अहमदाबाद जाकर उससे लड़ने का विचार किया. उस समय से पहिले ही रांवाड़े का देवड़ा ठाकुर जोधपुर इलाक़े के जालोर परगने को लूटता रहा, जिसका बदला लेने के लिये महाराजा अभयसिंह ने गुजरात जाते हुए सिरोही इलाक़े में दाखिल होकर रांवाड़े को बरबाद किया और पोसालिया गांव लूटा, इसपर महाराव ने उनसे सुलह कर एक राजकुमारी का विवाह उनके साथ कर दिया. यह शादी वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) भाद्रपद वदि ८ को हुई. उस समय देहली की बादशाहत कमज़ोर होगई थी, परन्तु महाराव मानसिंह ने बादशाह मुहम्मदशाह को खुश करने के लिये अपनी कुछ फौज पाड़ीव के ठाकुर देवड़ा नारायणदास की मातहती में शाही फौज के साथ भेजदी. अहमदाबाद के पास सर्बलंदखां से बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें देवड़ों ने अद्वितीय वीरता बतलाई थी, ऐसा टॉड साहब लिखते हैं*.

* In the wars of Gujarat where the Deora sword was second to none, it was under the imperial banner that they fought with Abhesinh as Generalissimo.

Tod's Travels in western India.

महाराव मानसिंह (उम्मेदसिंह) के तीन पुत्र पृथ्वीराज, ज़ोरावरसिंह और जगत्सिंह थे, जिनमें से ज़ोरावरसिंह को मण्डार और जगत्सिंह को भारजे की जागीर मिली थी. इन (महाराव मानसिंह) की पुत्री गजकंवर (गज्यादे) का, जिसका विवाह बीकानेर के महाराजा गजसिंह के साथ हुआ था, देहान्त वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) मार्गशीर्ष वदि १४ को सिरोही में हुआ, जिसकी छत्री सारणेश्वरजी के मंदिर के सामने मंदाकिनी के तट पर वि० सं० १७६० (ई० स० १७०३) में बनी थी. वि० सं० १८०६ (ई० स० १७४६) में महाराव मानसिंह (उम्मेदसिंह) का परलोकवास हुआ †.

महाराव मानसिंह के पीछे इनके बड़े कुंवर पृथ्वीराज (पृथ्वीसिंह) वि० सं० १८०६ (ई० स० १७४६) में सिरोही के राज्य-सिंहासन पर बिराजे. इनका जन्म वि० सं० १७८२ (ई० स० १७२५) वैशाख शु० ११ को हुआ था. वि० सं० १८२६ (ई० स० १७७२) में इनका स्वर्गवास होने पर इनके कुंवर तख्तसिंह सिरोही के राजा हुए.

महाराव तख्तसिंह का जन्म वि० सं० १८१६ (ई० स० १७५६) भाद्रपद वदि ११ को और देहान्त वि० सं० १८३६ (ई० स० १७८२) जेष्ठ वदि ६ को हुआ. इनके पुत्र न होने के कारण इनके चचा जगत्सिंह भारजावाले इनके पीछे सिरोही की गद्दी पर बैठे.

---

† मुन्शी देवीप्रसाद उम्मेदसिंह तथा मानसिंह को दो अलग अलग राजा मानते हैं, परन्तु ये दोनों नाम एकही राजा के थे.

महाराव जगत्सिंह का जन्म वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) चैत्र वदि ८ को हुआ था. इनके चार कुंवर वैरीशाल, सगत्सिंह (शक्तिसिंह), बदेसिंह और दौलतसिंह थे. केवल ६ मास राज्य करने बाद वि० सं० १८३९ (ई० स० १७८२) मार्गशीर्ष वदि ५ को इनका स्वर्गवास हुआ और इनके कुंवर वैरीशाल सिरोही की गद्दी पर बैठे.

प्रकरण सातवां.

महाराव वैरीशाल (दूसरे) से महाराव उम्मेदसिंह तक का वृत्तान्त.

महाराव वैरीशाल (दूसरे).

महाराव वैरीशाल (दूसरे) का जन्म भारजा गांव में वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) श्रावण सुदि १५ को हुआ था. इनकी गद्दीनशीनी के समय राज्य की हालत ठीक न थी, क्योंकि लखावत आदि सर्दार राज्य के हुक्म को मानते न थे, राज्य के पूर्वी हिस्से को भील और दूसरों को मीने खूब लूटते थे, पालनपुरवालों ने कई गांव पहिले ही से दबा लिये थे और राज्य में सर्दारों का बखेड़ा देखकर वे प्रतिदिन नये गांवों पर अपने थाने बिठलाते जाते थे. महाराव वैरीशाल से अपने राज्य की ऐसी दशा देखी न गई और उसकी दुरुस्ती करने तथा पालनपुरवालों ने जो गांव दबाये थे, उनको छुड़ाने का इन्होंने विचार किया, परन्तु राज्य के अधिकार में केवल ४०–५० के क़रीब ही गांव रह गये थे, जिनकी आमद इतनी न थी, कि ये अपने विचार को आसानी से पूरा करसकें तो भी इन्होंने हिम्मत न

हारी और उसके लिये प्रबंध करना शुरू किया. राज्य की फौज राजपूत भाई बेटे आदि थे, जिनमें से अधिकतर राज्य के विरोधी होकर अपनी अपनी जागीरें बढ़ाने के उद्योग में लगे हुए थे, जिससे उनके भरोसे न रहकर इन्होंने मकराणी और सिन्धी मुसलमान तथा नागों को, जो उन दिनों बड़े वीर तथा लड़ाकू समझे जाते थे, फौज में भरती करना शुरू किया. इस प्रकार ६ वर्ष में नई फौज तय्यार होने तक सिरोही राज्य के क़रीब २५० गांव पालनपुर के अधिकार में चले गये. फिर इन्होंने अपनी तथा अपने सरदारों की फौज इकट्ठी कर पालनपुरवालों के दबाये हुए अपने गांवों को छुड़ाने के लिये चढ़ाई की. जब इनकी फौज गांव भटाने के पास पहुंची, उस समय वहां के ठाकुर को जो इनके हुक्म की तामील नहीं करता था, सज़ा देने का विचार हुआ, परन्तु यह राय साथवाले सर्दारों को नापसन्द हुई, क्योंकि वे लोग उक्त ठाकुर से मिले हुए थे, जिससे उन्होंने उसको बहका दिया और वह अपना ठिकाना छोड़कर पहाड़ों में चला गया. फिर लखावत, डूंगरावत और वजावत इन तीनों ही दल के मुखिये सर्दार एक मत होकर अपने मालिक को छोड़ पालनपुरवालों से जा मिले. ऐसी दशा में इन्होंने पालनपुरवालों से लड़कर अपने गांव छुड़ाने का विचार तो छोड़ दिया, किन्तु नये गांवों पर पालनपुर का अधिकार न होने पावे, इसका प्रबन्ध कर राज्य की भीतरी हालत सुधारने का विचार किया. उस समय राज्य की शक्ति इतनी निर्बल हो गई थी, कि सरदारों से लड़कर उनको

दबाना सम्भव ही न था. यह हालत देखकर इनको छल से अपना स्वार्थ सिद्ध करने का विचार करना पड़ा. उस समय पाडीव का ठाकुर अमरसिंह डूंगरावत सर्दारों का मुखिया था और उसीकी सलाहपर दूसरे सर्दार चलते थे, इसलिये उसको मरवा डालने का विचार कर इन्होंने मकरानी व सिंधी फौज के मुखिये जमादार देसर सिंधी को, जो पाडीव के उक्त ठाकुर का मित्र था, यह काम सौंपा. वि० सं० १८५५ (ई० स० १७९८) मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को ठाकुर अमरसिंह सारणेश्वरजी के दर्शन करने को आया, उस वक़्त जमादार देसर अपने उक्त मित्र से मिलने को गया. ठाकुर दर्शन कर लौटता हुआ मन्दिर के बाहर की सीढ़ियां उतर रहा था, उस समय देसर ने उस पर अपनी तलवार का वार कर वहीं उसका काम तमाम कर दिया, जिसके इनाम में महाराव ने वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में उसको बाछोल गांव दिया, जो उन दिनों सिरोही राज्य में था और अब पालनपुर इलाक़े में है. यह गांव अबतक उसके वंशजों के आधीन है.

पाडीव के ठाकुर अमरसिंह के मारे जाने से सर्दारों का बल कुछ कम पड़ा, ऐसे में कालंद्री के ठाकुर अमरसिंह ने, जिसके पुत्र न था. वि० सं० १८५८ (ई० स० १८०१) में अपने भाइयों में से कांकेदरा गांव से रामसिंह को महाराव की मंजूरी से अपने जीतेजी गोद लिया और उसके नज़राने में अपने पट्टे का गांव नीतोरा इनके नज़र

कर दिया, परन्तु उसके मरते ही उसकी ठकुरानी जोधी ने नीतोरा गांव राज्य को देना न चाहा, इतना ही नहीं, किन्तु दूसरों की बहकावट में आकर रामसिंह को वहां से निकाल दिया और बिना राज्य की मंजूरी के मोटागांम के ठाकुर तेजसिंह के पुत्र खुमाणसिंह को वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२) में गोद ले लिया, जिससे राज्य में फिर नया बखेड़ा खड़ा हुआ. इस बखेड़े का मुखिया मोटागांम का ठाकुर तेजसिंह बना, जो थोड़े ही दिनों बाद मरवाडाला गया, जिसका कुछ असर सरदारों पर अवश्य हुआ.

वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में पींडवाड़ा के राणावत ठाकुर सवाईसिंह ने सर्दारों का बखेड़ा और राज्य की कमज़ोरी देखकर राज्य की मंजूरी लिये बिना ही धनारी गांव से ज़ालिमसिंह को गोद लेकर अपने पट्टे का मालिक बना दिया. इसपर नाराज़ होकर इन्होंने सवाईसिंह को सिरोही बुलाया, परन्तु उस बुद्धिमान् सर्दार ने नरमी के साथ हाथ जोड़ सिरोही की गद्दी की सच्चे दिल से सेवा करने की इच्छा प्रकट कर अपने अपराध की क्षमा चाही, जिसपर इन्होंने प्रसन्न होकर ज़ालिमसिंह की गोदनशीनी कबूल करली. सवाईसिंह ने भी ८५००) रुपये नज़राना देकर उक्त गोदनशीनी का परवाना लिखवा लिया और पीछे से ज़ालिमसिंह भी शुद्धचित्त से राज्य की सेवा करता रहा.

महाराव वैरीशाल (दूसरे) की इच्छा अपने सर्दारों को दबाने,

पालनपुरवालों से अपने गांव पीछे लेने तथा मीनों व भीलों का उपद्रव मिटाकर प्रजा की रक्षा करने की रही, परन्तु ईश्वर को यह मंजूर न था, जिससे बिना कारण ही जोधपुर जैसे प्रबल पड़ोसी राज्य से वैर खड़ा होगया, जिसका वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है:—

वि० सं० १८५० (ई० स० १७९३) आषाढ़ वदि १४ को जोधपुर के महाराजा विजयसिंह का स्वर्गवास हुआ और उनके कुंवर भीमसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे और अपने भाइयों को ही नष्ट करने लगे, जिससे उनके भाई गुमानसिंह के पुत्र मानसिंह ने उनका विरोध कर पाली को लूटा और प्रसिद्ध जालोर के क़िले को दबा लिया. महाराजा भीमसिंह ने जालोर का क़िला उनसे छीन लेने को वहां पर फौज भेजी, जिसने उस क़िले को घेर लिया. उन्होंने चाहा था, कि महाराजा अजीतसिंह की नांई हमको भी सिरोहीराज्य में कोई पनाह की जगह मिलजावे, जहां पर हमारा ज़नाना आदि रहें, और इसी विचार से उन्होंने अपने ज़नाने तथा कुंवर छत्रसिंह को महाराव वैरीशाल के पास सिरोही भेज दिया, परन्तु महाराव ने जोधपुर के महाराजा भीमसिंह से, जिनके साथ इनकी बड़ी मैत्री थी, बिगाड़ होने का अंदेशा होने के कारण उनको अपने यहां रखने से इन्कार किया, जिससे उनको लौटना पड़ा. लौटते समय कुंवर छत्रशाल की आंख एक दरख़्त की शाख लगने से फूट गई. महाराव वैरीशाल के इस बर्ताव से मानसिंह इनसे बहुत ही क्रुद्ध हुए और ऐसे में दैवइच्छा से वि० सं० १८६०

(ई० स० १८०३) कार्तिक सुदि ४ को महाराजा भीमसिंह का देहान्त हुआ और मानसिंह जोधपुर राज्य के स्वामी हुए. उन्होंने जोधपुर की गद्दी पर बैठते ही मूंता ज्ञानमल को बड़ी फौज के साथ सिरोहीराज्य पर भेजा, जिसने मुल्क को लूटने व तबाह करने में कसर न रक्खी. इतने ही से महाराजा मानसिंह को संतोष न हुआ, किन्तु वे सिरोहीराज्य को बराबर हानि पहुंचाते रहे, जिसका हाल हम आगे लिखेंगे.

महाराव वैरीशाल ने वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में गोल गांव पर की राज्य की लागत सारणेश्वरजी के अर्पण करदी. यह गांव परमारों के समय गुजरात से बुलाये हुए सहस्रऔदीच्य ब्राह्मणों को कई दूसरे गांवों के साथ दान में मिला था. इसी गांव पर से औदीच्य ब्राह्मणों का एक दल गोलवाल (गोरवाल) नाम से प्रसिद्ध हुआ है.

वि० सं० १८६४ (ई० स० १८०७) ज्येष्ठ सुदि ७ को महाराव वैरीशाल का परलोकवास हुआ. ये शस्त्र चलाने में बड़े निपुण, घोड़े के नामी चढ़ैये तथा सरल प्रकृति के धर्मनिष्ठ राजा थे. इनकी इच्छा सदा प्रजा की स्थिति सुधारने तथा देश में शांति फैलाने की ही रही, परन्तु समय ने इनका साथ न दिया. इनकी छत्री शारणेश्वरजी के मंदिर के अहाते के भीतर मंदाकिनी के पश्चिमी किनारे पर है, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १८६८ (ई० स० १८१२) द्वितीय वैशाख में हुई थी.

इनके दो राणियां थीं, जिनमें से बड़ी ईडर राज्य के ठिकाने ठिठोई के चांपावत ठाकुर बदनसिंह की पुत्री अभयकंवर और दूसरी

चाणोद (मारवाड़ में) के मेड़तिया ठाकुर बनेसिंह की पुत्री जसकंवर थी, जिनसे तीन कुंवर उदयभाण, अखेराज और शिवसिंह उत्पन्न हुए, जिनमें से उदयभाण और शिवसिंह बड़ी राणी से और अखेराज मेड़तणी से उत्पन्न हुए थे.

महाराव वैरीशाल ने अपने जीतेजी अपने दूसरे कुंवर अखेराज को भारजा गांव दिया और सबसे छोटे कुंवर शिवसिंह को नांदिआ † गांव दिया, जो जावाल के ठाकुर पन्ना के पट्टे में से खालिसह किया गया था.

महाराव उदयभाण.

महाराव उदयभाण का जन्म वि० सं० १८४६ (ई० स० १७६०) फाल्गुन वदि ६ को, गद्दीनशीनी वि० सं० १८६३ (ई० स० १८०७) ज्येष्ठ सुदि ७ को और राज्याभिषेक का उत्सव फाल्गुन वदि ८ को हुआ. इनके राज्य पाने के समय भी राज्य की दशा ठीक न थी और इनको अपनी ऐश इशरत के आगे अपने राज्य की दशा सुधारने की तरफ़ ध्यान ही कम था, जिससे देश की हालत और भी ख़राब होने

† नांदिआ गांव उस वक्त जावाल के पट्टे में था. वहां के ठाकुर वीरमदेव के औलाद न होने के कारण उसने सिंधरत गांव के ठाकुर नाथा के बेटे पन्ना को गोद लिया, जिसके नज़राने में यह गांव उसने महाराव वैरीशाल के नज़र किया था. पीछे से महाराव ने ठाकुर पन्ना की अच्छी सेवा से प्रसन्न होकर पीछा उसको बख्श दिया, परन्तु वहां की प्रजा और ठाकुर के बीच की नाइत्तिफ़ाकी की शिकायत बनी रहने के कारण वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में यह गांव ख़ालिसह किया जाकर कुंवर शिवसिंह को दिया गया था.

लगी. उधर जोधपुर के महाराजा मानसिंह सिरोहीराज्य को अपने राज्य में मिलाने के विचार से उसको लूटकर कमज़ोर करने के उद्योग में लगे हुए ही थे और इधर भील और मीनों ने भी खूब लूट मचा रक्खी थी. वि॰ सं॰ १८६६ (ई॰ स॰ १८१२) में महाराजा मानसिंह ने अपनी फौज सिरोही पर भेजी, जिसने शहर सिरोही पर हमला कर उसे लूटा और इस राज्य के कई इलाक़ों को लूटने बाद वह फौज जोधपुर को लौट गई. वि॰ सं॰ १८७० (ई॰ स॰ १८१३) में महाराव उदयभाण अपने छोटे भाई शिवसिंह, राज्य के कुछ अहलकार तथा कितने एक सिपाहियों को साथ लेकर सोरों की यात्रा को गये. वहां पर गंगास्नान तथा दानपुण्य आदि कर लौटते हुए मारवाड़ के पाली नगर में पहुंचे, जो उस समय धनाढ्य और व्यौपार का प्रसिद्ध नगर गिना जाता था. इन्होंने कुछ दिन वहां पर ठहरने का विचार किया और रंडियों का नाच रंग, जिसमें इनको विशेष आसक्ति थी, खूब होने लगा. महाराजा मानसिंह सिरोही राज्य के कट्टर शत्रु बने हुए ही थे, इसलिये पाली के हाकिम ने अपनी ख़ैरख़्वाही जतलाने के लिये महाराव के वहां ठहरने का हाल गुप्तरीति से महाराजा को पहुंचाया, जिन्होंने तुरन्त ही कुछ फौज वहां से भेज दी, जिसने आकर जिस स्थान में महाराव उदयभाण ठहरे हुए थे, उसे घेर लिया और कुल साथियों सहित इनको गिरफ़्तार कर जोधपुर पहुंचा दिया. महाराजा ने तीन माह तक इनको जोधपुर में रक्खा

और गुप्तरीति से इनसे जोधपुर की मातहती कितनी एक शर्तों के साथ क़बूल करने की तहरीर भी लिखवाली और १२५०००) रुपये देने की शर्तपर महाराजा (मानसिंह) ने इन (महाराव उदयभाण) से सदा के व्यवहार के अनुसार मुलाक़ात की. फिर महाराव अपने साथियों सहित सिरोही पहुंचे. इनके सलाहकारों ने जिस समय सवालाख रुपये महाराजा मानसिंह को देने का इक़रार किया उस समय यह सोचा था, कि इस समय तो रुपयों का इक़रार करलेना ही अच्छा है, फिर यहां से छूटकर सिरोही जानेपर रुपये देना न देना अपने इख़्तियार में है. इसी विचार से सिरोही के मुसाहिब जोधपुर से रुपयों की ताकीद होने पर भी उस तरफ़ कुछ ध्यान नहीं देते थे, जिससे नाराज़ होकर महाराजा ने वि० सं० १८७३ (ई० स० १८१६) में मूंता साहिबचंद की मातहती में फौज भेजी, जिसने परगने भीतरट को लूटा और कई गांवों के महाजनों से बहुतसे रुपये वसूल कर वह जोधपुर को लौटी. फिर महाराव तथा उनके मुसाहिबों ने यह सलाह की, कि जोधपुर की फौज सिरोही के इलाक़े को लूटती है तो अपने को जोधपुर का इलाक़ा लूटना चाहिये. इस सलाह के अनुसार गोसांई रामदत्तपुरी और बोड़ा प्रेमा को फौज देकर जोधपुर राज्य के जालोर व गोडवाड़ परगनों को, जो सिरोहीराज्य से मिले हुए हैं, लूटने को भेजा. इन्होंने जालोर के काइदर, बागरा, आकोली, धानपुरा, तातोली, सांड, नून, मोक, देलदरी, वीलपुर, बुडतरा, सवरसा, सिपरवाड़ा, माडोली और भूतवा गांवों

को लूटा और उन गांवों से ३८५६) रुपये फौजबाब के वसूल किये. इसी तरह गोडवाड़ इलाक़े के कानपुरा, पालड़ी, कोरटा, सलोद्रिआ, ऊंदरी, धनापुरा, पोमावा और सांणपुरा गांवों को लूटा और वहां से रु० १७८८॥।=) फौजबाब के लिये. जब इस लूट की ख़बर जोधपुर पहुंची तो महाराजा मानसिंह बहुत ही अप्रसन्न हुए और मूंता साहिबचंद को बड़ी फौज के साथ उन्होंने भेजा और यह हुक्म दिया, कि सिरोही को लूटकर बर्बाद करडालो. यह फौज सिरोही की तरफ़ बढ़ी और वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) माघ वदि ८ को उसने शहर सिरोही पर हमला करदिया. महाराव उदयभाण ने शहर छोड़कर पहाड़ों में शरण ली और जोधपुर की फौज ने १० दिन तक शहर को लूटा. यह फौज ढाई लाख रुपये का माल लूटकर जोधपुर को लौटी. इसी फौजने सिरोही राज्य का दफ्तर भी जला दिया, जिससे सब पुराने काग़ज़ात नष्ट होगये. इस प्रकार मुल्क को बर्बाद होता देखकर महाराव को जोधपुर के रुपये चुकाने का विचार हुआ, परन्तु ख़ज़ाना खाली होने से महाजनों से रुपये वसूल करने का यत्न होने लगा और उसके लिये उनपर सख्तियां होने लगीं, जिससे जिन महाजनों के पास कुछ माल था, वे देश छोड़कर गुजरात तथा मालवे को भाग गये और वहीं पर आबाद हुए. इधर रुपये वसूल करने के लिये लोगों पर सख्तियां होती रहीं, उधर भील और मीने मुल्क को लूटते रहे, जिससे वह यहांतक ऊजड़ होता गया कि आबाद गांव गिनती

के ही रह गये. राज्य की ऐसी दशा देखकर सब सरदार इकट्ठे होकर नांदिआ गांव में राजसाहब † शिवसिंह के पास गये और राज्य के प्रबंध के विषय में बातचीत की. उन्होंने उनसे यही कहा, कि आप तो अपने अपने ठिकानों में जाइये, मैं इसका प्रबंध शीघ्र करूंगा. वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) में उन्होंने सिरोही जाकर महाराव उदयभाण को नज़रकैद कर राज्य के प्रबंध का काम अपने हाथ में लिया. जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने महाराव उदयभाण को क़ैद से छुड़ाने के लिये फौज भेजी, परन्तु उसको सफलता प्राप्त न हुई. वि० सं० १९०३ (ई० स० १८४७) माघ वदि ९ को महाराव उदयभाण का परलोकवास हुआ और इनके पुत्र न होने के कारण इनके छोटे भाई शिवसिंह सिरोही के मालिक हुए.

महाराव उदयभाण का वर्ण गोर और क़द मध्यमश्रेणी का था. इनका चालचलन ठीक न था. ये सदा ऐश इशरत में लगे रहते, अपनी इच्छा के विरुद्ध की अच्छी सलाह को भी कभी नहीं मानते और राज्यप्रबंध या प्रजा की भलाई का इनको तनिक भी ख़याल न था, जिसका फल यह हुआ, कि १० वर्ष राज्य करने बाद ये क़ैद हुए और २९ वर्ष उसी अवस्था में बिताये.

† सिरोही राज्य में राजा के भाइयों व उनके उत्तराधिकारियों को 'राजसाहब' कहते हैं और उनको तहरीर में भी ऐसा ही लिखा जाता है. एक प्रकार से यह उनका ख़िताब हो गया है, परन्तु यह ख़िताब नवीन ही है. पहिले इसका प्रचार होना पाया नहीं जाता.

महाराव शिवसिंह, सिरोही।

महाराव उदयभाण के तीन विवाह हुए थे, जिनमें से प-हिला वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) आषाढ़ वदि ६ को मांणसा (गुजरात के इलाके महीकांठे में) के चावड़े ठाकुर जेतसिंह की पुत्री गुलाबकंवर से (सिरोही में डोला आया), दूसरा वि० सं० १८७१ (ई० स० १८१४) में खेजड़ली (मारवाड़ में) के चांपावत ठाकुर सालिमसिंह की पुत्री जेतकंवर से (सिरोही में) और तीसरा नार-लाई (मारवाड़ में) के मेड़तिया ठाकुर प्रथीसिंह की पुत्री इन्द्रकंवर से वि० सं० १८७८ (ई० स० १८२१) में हुआ था.

महाराव शिवसिंह.

महाराव शिवसिंह ने अपने बड़े भाई उदयभाण को क़ैद कर सिरोहीराज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया, परन्तु इन्होंने अ-पने बड़े भाई की जीवित दशा में अपने को राजा कहलाना उचित न समझा और इसी कारण से राजप्रतिनिधि (रिजेन्ट, मुन्सरिम) के तौर पर राज्य का काम करना शुरू किया. उस समय राज्य की दशा यह थी, कि राज्य की आमद ६००००) रुपये रह गई थी, मारवाड़-वाले साल में एक दो बार फौज भेजकर देश को अवश्य लूटते थे, धनवान् लोग देश छोड़कर गुजरात, मालवा आदि देशों में जाकर वहीं आबाद हुए थे, देश ऊजड़सा होगया था और राज्य की इतनी ताक़त न थी, कि प्रजा के जान व माल की रक्षा करसके. ऐसी दशा

में भील तथा मीनों का ज़ोर बढ़ा. वे लोग गिरोह बांधकर गांवों व
लूटने, चौपायों को पकड़ कर दूसरे इलाकों में बेचने तथा कई शास
निक (धर्मार्थ दिये हुए) गांवों से 'चोथ' के नाम से नियत रुप
लेने लगे. इतने से ही उनको संतोष न हुआ, किन्तु वे मालदार लोग
को पकड़ कर पहाड़ों में लेजाकर क़ैद करने, उनको तरह तरह से दुः
देने तथा उनसे मनमाना दंड लेने तक की हिम्मत भी करने लगे औ
जो उनकी इच्छानुसार रुपये नहीं देता उसको वे मार भी डालते थे
उन्हीं के डरके मारे मुसाफ़िरों को सफ़र करना कठिन हो गया, बरा
लुटजाने लगीं और बिना उन्हीं लोगों की सहायता के एक गां
से दूसरे गांव जाना कठिन हो गया. राज्य के ख़ालसे में बहुत ही का
गांव रह गये और बाक़ी बहुधा सब सर्दारों के कब्ज़े में थे, जो राज्
के हुक्म को नहीं मानते थे और जब कोई सर्दार मरजाता और उसके
पुत्र न होता तो उसके संबंधी राज्य की मंजूरी लिये बिना ही किसी
को उसके गोद रखलेते या उसकी जागीर आपस में बांट लेते और
राज्य को उसकी इत्तला तक नहीं देते थे.

इन्होंने राज्य का काम अपने हाथ में लेते ही यह हुक्म जारी
कर दिया, कि बिना राज्य की मंजूरी के कोई सर्दार या ठाकुर किसी
को गोद न ले सकेगा और इसके विरुद्ध चलनेवाले की जागीर ज़ब्त
कर ली जायेगी, जिससे कई सर्दारों ने पालनपुरवालों की आधीनता
स्वीकार करली. देश की ऐसी दशा देखकर इन्होंने सोचा, कि अब

बाहरी सहायता के बिना देश की दशा का सुधरना अशक्य है, अतएव इन्होंने सर्कार अंग्रेज़ी की शरण लेना निश्चय किया.

उन दिनों में मरहटों के पैर राजपूताने से उखड़ रहे थे और राजपूताने के राजा अपनी रक्षा के लिये सर्कार अंग्रेज़ी की शरण लेने लगे थे, जिससे इन्होंने भी वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) पौष वदि ४ को बड़ोदा के रेज़िडेण्ट कप्तान कारनिक साहब को पत्र लिखकर सर्कार अंग्रेज़ी की शरण लेने की इच्छा प्रकट की, जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा. कि सिरोहीराज्य देहली इहाते में है और टॉड साहब भी वहीं हैं, इसलिये उनकी मारफ़त लिखा पढ़ी करनी चाहिये. इस पत्र के आने पर टॉड साहब से लिखा पढ़ी शुरू हुई और सर्कार से अहदनामा होने का सिलसिला चला, जिसकी ख़बर जोधपुर के महाराजा मानसिंह को भी लगी.

ता० ६ जनवरी सन् १८१८ ई० (वि० सं० १८७४ पौष सुदि १०) को जोधपुरराज्य का सर्कार अंग्रेज़ी से अहदनामा हो चुका था और महाराजा मानसिंह सिरोही राज्य को अपने राज्य में मिलाना चाहते थे, इसलिये उन्होंने सिरोहीराज्य के साथ सर्कार अंग्रेज़ी की संधि होने की जो कार्रवाई चलरही थी, उसमें बाधा डालनी चाही. उन्होंने गवर्नमेंट के साथ इस आशय की लिखा पढ़ी की, कि सिरोही का इलाक़ा पहिले से ही जोधपुर के आधीन है, इसलिये सिरोही के साथ अलग अहदनामा न होना चाहिये. इसपर अहदनामा होने की बात

रुकगई और जोधपुर के दावे की तहकीक़ात का काम कप्तान टॉड साहब के सुपुर्द हुआ, जो उन दिनों में जोधपुर के पोलिटिकल एजेंट भी थे. टॉड साहब जोधपुर के महाराजा मानसिंह के मित्र थे, जिससे उक्त महाराजा को अपना कार्य सिद्ध होने की पूरी आशा थी और जोधपुर का वकील उसके लिये बड़ी कोशिश कर रहा था, परन्तु टॉड साहब ने, जो बड़े ही निष्पक्षपात अफ़सर थे, पूरे सबूत के बिना जोधपुर का दावा स्वीकार करना न चाहा. जोधपुर के वकील ने यह बतलाने की कोशिश की, कि महाराजा अभयसिंह के समय से ही सिरोहीवाले जोधपुर की चाकरी करते और ख़िराज देते हैं, जिसपर टॉड साहब ने, जो इन दोनों राज्यों के इतिहास से परिचित थे, यही उत्तर दिया, कि 'जोधपुर के राजाओं की मातहती में सिरोही की सेना लड़ी है और गुजरात की लड़ाइयों में महाराजा अभयसिंह के साथ रहकर देवड़ों ने बड़ी वीरता दिखलाई है, परन्तु जोधपुर के इतिहास से ही पाया जाता है, कि उस समय अभयसिंह जोधपुर के राजा नहीं, किन्तु बादशाही फौज के सेनापति थे और सिरोही की सेना भी बादशाही झंडे के नीचे रह कर लड़ी थी.' इसी तरह सिरोही से ख़िराज लेने की बात भी उन्होंने निर्मूल सिद्ध करदी, जिससे जोधपुर की तरफ़ से सिरोही के महाराव उदयभाण के हस्ताक्षर वाली एक तहरीर पेश की गई, जिसमें उक्त महाराव ने कितनीक शर्तों के साथ जोधपुर की मातहती स्वीकार की थी, परन्तु टॉड साहब को उक्त तहरीर के लिखे जाने का हाल

भलीभांति मालूम था, जिससे उन्होंने स्पष्ट कह दिया, कि 'यह तहरीर राव उदयभाण को गंगाजी से लौटते हुए मार्ग में से क़ैद कर जोधपुरवालों ने ज़बरन् लिखवाली है, इसलिये देवड़े सर्दार इसको रद्दी काग़ज़ के बराबर समझते हैं.' इस प्रकार जोधपुर वालों के सब प्रमाणों को निर्मूल बतलाकर उनका दावा ख़ारिज कर दिया गया, जिससे महाराजा मानसिंह अप्रसन्न हुए, किन्तु टॉड साहब ने, जो केवल सत्य के ही पक्षपाती थे, उक्त महाराजा की अप्रसन्नता का कुछ भी संकोच न किया और ता० ११ सितंबर स० १८२३ ई० (वि० सं० १८८० भाद्रपद शु० १३) को सिरोही मुक़ाम पर अहदनामा होगया, जिसकी तस्दीक़ गवर्नरजनरल साहब बहादुर ने ता० ३० अक्टूबर स० १८२३ ई० (वि० सं० १८८० कार्तिक वदि १२) को की. इस अहदनामे की शर्तें नीचे लिखी जाती हैं †.

शर्त पहिली—सर्कार अंग्रेज़ी स्वीकार करती है, कि वह रियासत और इलाक़ा सिरोही को अपनी मातहती व रक्षण में ली हुई रियासतों में शुमार करेगी और अपनी हिफ़ाज़त में रक्खेगी.

शर्त दूसरी—राव शिवसिंह मुन्सरिम अपनी, राव साहब की और उनके वारिसों व जानशीनों की तरफ़ से इस तहरीर के द्वारा सर्कार अंग्रेज़ी की बुज़ुर्गी को क़बूल करते हैं और इक़रार करते हैं, कि प्रामाणिकता के साथ वफ़ादारी का फ़र्ज़ अदा करेंगे और इस अहदनामे

† अंग्रेज़ी से तर्जुमा किया गया है.

की दूसरी शर्तों का पूरा लिहाज़ रक्खेंगे.

शर्त तीसरी–राव साहब सिरोही, किसी दूसरे रईस या रियासत से ताल्लुक न रक्खेंगे. किसी दूसरे पर ज़ियादती न करेंगे और दैवयोग से किसी पड़ोसी से झगड़ा पैदा होगा तो वह फ़ैसले के लिये सर्कार अंग्रेज़ी की सरपंची के सुपुर्द किया जायेगा और सर्कार अंग्रेज़ी मंज़ूर फ़र्माती है कि वह अपने ज़रिए से हर एक दावे का फ़ैसला करादेगी, जो सिरोही और दूसरी रियासतों के बीच ज़ाहिर होगा, चाहे वह दूसरी रियासतों की तरफ़ से या सिरोही की तरफ़ से ज़मीन, नौकरी, रुपये या मदद की बाबत या किसी और मुआमले की बाबत हो.

शर्त चौथी–अंग्रेज़ी हुकूमत रियासत सिरोही में दाख़िल न होगी, लेकिन् यहां के राजा हमेशह सर्कार अंग्रेज़ी के अफ़सरों की सलाह के अनुसार रियासती इन्तज़ाम करेंगे और उनकी राय के मुआफ़िक अमल किया करेंगे.

शर्त पांचवीं–जो कि अब सिरोही का राज्य इलाक़ों के बटने और बदख्वाहों की बदचलनी और लुटेरों की लूटमार से वीरान होगया है, इसलिये मुन्सरिम रियासत वादा करते हैं, कि वे सर्कारी हाकिमों की सलाह के मुआफ़िक जिस बात में मुल्क की बेहतरी और इंतिज़ाम समझा जावेगा, अमल किया करेंगे और यह भी इक़रार करते हैं कि वे अब और आगे को मुल्की फ़ायदे, चोरी और धाड़ों के रोकने और प्रजा के इन्साफ़ में पूरी कोशिश किया करेंगे,

शर्त छठी–यदि रियासत सिरोही के सर्दार या ठाकुरों में से कोई शख्स किसी जुर्म या हुक्मअदूली का कुसूरवार होगा तो उसको जुर्मानह, इलाक़े की ज़ब्ती या और कोई सज़ा, जो कुसूर के लायक होगी, अंग्रेज़ी अफ़सरों की सलाह और संमति से दी जायेगी.

शर्त सातवीं–सिरोही के सब रहनेवालों ने, क्या अमीर और क्या ग़रीब, एक मन होकर ज़ाहिर किया है, कि अगले राजा राव उदयभाण अपने जुल्म व ज़ियादती के कारण सब सर्दारों व ठाकुरों की संमति से वाजिबी तौर से बर्तरफ़ होकर क़ैद किये गये और राव शिवसिंह सब की मंजूरी से उनके उत्तराधिकारी क़रार दिये गये हैं, इस वास्ते सर्कार अंग्रेज़ी राव शिवसिंह को उनकी ज़िन्दगी तक रियासत के मुन्सरिम मंजूर फ़र्मावेगी, परन्तु उनके देहान्त के बाद राव उदयभाण की सन्तति में से कोई वारिस होगा तो वह गद्दी पर बिठाया जायेगा.

शर्त आठवीं–रियासत सिरोही उतना ख़िराज सर्कार अंग्रेज़ी को अपनी रक्षा के ख़र्चे के लिये आज की तारीख़ से तीन बरस बीतने बाद दिया करेगी, जितना कि नियत होगा, इस शर्त से, कि उसकी तादाद छः आना फ़ीरुपया आमदनी मुल्क से अधिक न हो.

शर्त नवीं–व्योपार की तरक्क़ी और रिआया के आम फ़ायदों के लिये सर्कारी अफ़सरों को यह उचित होगा, कि वे राहदारी व चुंगी आदि के महसूल की शरह रियासत सिरोही के इलाक़े में इस तरह

मुक़र्रर करावें, कि जो अनुभव से ठीक मालूम हो और समय समय पर उसके जारी रखने या कमीबेशी करने में हस्ताक्षेप करें.

शर्त दशवीं—जब कोई अंग्रेज़ी फौज की टुकड़ी राज्य सिरोही में या उसके आसपास किसी काम पर नियत हो तो राव साहब का फ़र्ज़ होगा कि वे फौज के ज़ुरूरी सामान का प्रबंध बिना उस पर किसी प्रकार का महसूल लगाये करें और उस फौज का कमानियर अफ़सर इलाके की फस्ल और ज़मीन की पैदावार को बचाने की अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करेगा. अगर सर्कार अंग्रेज़ी की यह राय होगी कि कुछ फौज सिरोही में रक्खे तो उसको इस बात का इख्तियार रहेगा और राव साहब की तरफ़ से इस काम में नाराज़गी की कोई निशानी ज़ाहिर न होगी. इसी तरह अगर यह ज़रूरी हो, कि कुछ फौज रियासत सिरोही की ज़रूरत के वास्ते भरती हो और उसमें अंग्रेज़ अफ़सर रहें और क़वाइद सिखलावें तो राव साहब इस बात का वादा करते हैं, कि वे इस मुआमले में जहांतक हो सकेगा सर्कारी हिदायत की तामील करेंगे, मगर ऐसी हालत में ख़िराज की जो रक़म राव साहब देते हैं उसका पूरा लिहाज़ रहेगा (अर्थात् कम की जायेगी) और जो फौज वास्तव में राव साहब की है, वह हरवक़्त सर्कार अंग्रेज़ी के अफ़सरों की मातहती में नौकरी के लिये तय्यार रहेगी.

यह अहदनामा जोधपुर के महाराजा मानसिंह की इच्छा के विरुद्ध हुआ, जिससे जालोर का हाकिम पृथ्वीराज भंडारी वि० सं०

१८८० (ई० स० १८२३) कार्तिक वदि ४ को सिरोही राज्य के खारल परगने के तलेटा गांव पर फौज के साथ चढ़ आया और उसने १० गांवों को उजाड़ डाला और अनुमान ३१०००) रुपये का नुक़सान किया. उसका दावा सर्कार अंग्रेज़ी में पेश किया गया, जिसका फ़ैसला सिरोही के लाभ में हुआ.

सर्कार अंग्रेज़ी के साथ यह अहदनामा हो जाने से बाहरी आपत्तियों से तो राज्य की रक्षा होगई. अब भीतरी बुराइयां मिटाने की ज़रूरत हुई, परन्तु ख़ज़ाना खाली होने तथा राजकी कमज़ोर हालत के कारण उसका प्रबन्ध होना सहज न था, इस वास्ते नई बैक़वायदी फौज तय्यार करने के लिये इन्हों (शिवसिंह) ने सर्कार अंग्रेज़ी से तीन बरस में जमा करा देने की शर्त पर ५००००) रुपये बिना सूद मिलने की दरख़्वास्त की, जो मंजूर हुई. उन रुपयों से एक नई फौज तय्यार की गई और सर्कार अंग्रेज़ी ने भी मुल्क के फ़ायदे के लिये कप्तान स्पीअर्स साहिब को सिरोही का पोलिटिकल एजंट नियत किया.

सर्कार अंग्रेज़ी के साथ अहदनामा होने के पहिले सिरोही की प्रजा पर नित नई आपत्तियां आती थीं, ऐसे समय में सर्कार अंग्रेज़ी की सहायता लोगों के वास्ते ऐसी फायदेमंद हुई, जैसी कि सूखती हुई खेती के लिये बारिश. उनदिनों में सर्कार अंग्रेज़ी के न्याय, गौरव और विजय की बातों के सुनने से जंगली क़ौमों के दिल पर यह

बात जमगई थी, कि अंग्रेज़ लोग जादूगर हैं, वे बड़ीभारी सेना को जेब में छिपाकर लेजाते हैं और लड़ाई के समय काग़ज़ के सिपाहियों से काम लेते हैं. इन निर्मूल बातों का असर मीनों तथा भीलों पर यहांतक हुआ, कि वे अंग्रेज़ों के नाम से डरने लगे और मुल्क में शांति फैलने लगी.

कप्तान स्पीअर्स साहब के पोलिटिकल एजेन्ट मुक़र्रर होने बाद गवर्नमेंट ने बम्बई इहाते की कुछ फौज भी इस राज्य की सहायता करने और भील मीने वग़ैरह लुटेरी क़ौमों को दबाने के लिये भेजदी, जिसने बहुत ही अच्छा काम दिया.

नींबज का ठाकुर रायसिंह अपने को खुद मुख्तार समझ कर राज्य का हुक्म नहीं मानता था, जिससे उसको दबाने के लिये राज्य की तथा सर्कार अंग्रेज़ी की फौज ने मिलकर नींबज पर चढ़ाई की. उसका पहिला मुक़ाम गांव दांतराई में हुआ, जहां से अंग्रेज़ी फौज के अफ़सर ने ठाकुर नींबज को लिखा, कि अब भी राज्य की मातहती क़बूल करलेना अच्छा है, परन्तु ठाकुर व उसके कुंवर प्रेमसिंह ने कतई इनकार कर दिया, जिसपर दूसरे दिन फौज ने नींबज पहुंचकर लड़ाई शुरू करदी, जिसमें दोनों तरफ़ के कितनेक आदमी मारे गये, परन्तु गांव पर राज्य का कब्ज़ा हो गया और ठाकुर रायसिंह ने अपने पुत्र सहित भागकर पहाड़ में पनाह ली. फिर थोड़े दिनों बाद रामसेण के ठाकुर जगत्सिंह वग़ैरह ने बीच में पड़कर उसको समझा दिया,

जिससे उसने राज्य की आधीनता स्वीकार कर नीचे लिखा हुआ इक़-रारनामा लिख दिया.

संवत् १८८१ वैशाख सुदि १ मुताबिक ता० २६ एप्रिल सन् १८२४ई० को नींबज ठाकुर रायसिंह व प्रेमसिंह ने यह तहरीर † लिखदी, कि वे सिरोही दर्बार महाराव शिवसिंह की आधीनता स्वीकार करते हैं और नीचे लिखी हुई ७ शर्तें मंज़ूर करते हैं. ये शर्तें हर पुश्त में जारी रहेंगी और इनमें कभी कुछ उज्र पेश न किया जायेगा.

शर्त पहिली-गांव नींबज व उसके पट्टे की सब तरह की पैदावारी अर्थात् ज़मीन की आमद, राहदारी और चुंगी आदि के महसूल में से छः आना फ़ीरुपया श्रीदर्बार साहब सिरोही को दिया जायेगा और जुर्मानह आदि किसी तरह की ज़ियादती प्रजा पर न होगी.

शर्त दूसरी–ठाकुर नींबज का बेटा कुंवर उदयसिंह चाहता है कि गिरवर, परनेरा और मूंगथला गांवों का हासिल, जो अगले ठाकुर लखजी की जागीर में थे उसको मिले. यह जागीर अब पालनपुर के मातहत है, अगर वह सिरोही को वापस मिली तो महाराव खुद इस बात का फैसला इन्साफ़ के साथ करेंगे.

शर्त तीसरी–नींबज और उसके पट्टे के अंदर हासिल और फैसला आदि के मामले सिरोही के कामदारों की सलाह से तै पावेंगे और कोई बात ग़ैर इन्साफ़ी और ज़ियादती की न होने पावेगी.

---

† अंग्रेज़ी से तर्जुमा किया गया है.

शर्त चौथी—जब कभी सिरोही के सर्दार और वहां की फौज किसी मामले के लिये जमा हो तो ठाकुर नींबज और उसकी फौज विना उज़् साथ हुआ करेगी.

शर्त पांचवीं—ठाकुर नींबज किसी ग़ैर रियासत से ताल्लुक़ न रक्खेगा, न नया पैदा करेगा और कभी उन फ़सादों में शरीक न होवेगा, जो रियासत जोधपुर और पालनपुर में उसके भाइयों या कोलियों के बीच पैदा हों. अगर किसी से तक़रार हो तो ठाकुर उसकी इत्तिला दर्बार सिरोही को करेगा और जो हुक्म उसको वहां से मिलेगा उसकी वह तामील करेगा.

शर्त छठी—ठाकुर नींबज अपनी रिआया के अमन के लिये अपने भील, कोली और मीनों का इन्तिज़ाम करने के लिये हरेक तदबीर काम में लावेगा और जो कुछ माल उसके इलाक़े में चोरी जायगा, उसका एवज़ वह ज़रूर देगा.

शर्त सातवीं—दर्बार सिरोही ने नींबज ठाकुर के कुंवरों ठकुरानियों और रिश्तेदार औरतों की पर्वरिश और गुज़र के लिये नीचे लिखे हुए १८ कूएं बग़ैर ख़िराज के दिये हैं. इसमें कभी किसी तरह का फ़र्क़ न होगा.

कूओं की तफ्सीलः—

गांव धवली में दो कूएं, जेतावाड़ा में दो कूएं, हणाद्रा में सात कूएं और गांव सोलडा में सात कूएं. कुल १८ कूएं.

इन शर्तों पर दस्तख़त होने बाद ठाकुर नींबज अपने कुंवर सहित सिरोही में हाज़िर हुआ और राज से भी उसकी अच्छी ख़ातिर हुई, क्योंकि इस राज्य में मुख्य सर्दार वही था. फिर महाराव ने दर्बार कर ठाकुर नींबज को अव्वल दरजे की दाहिनी बैठक दी, जो पाडीव के उमराव के बराबर की थी और सिरोपाव बख़्शा. उसी दिन से ये दोनों सर्दार (नींबज और पाडीव) एक साथ राज्य के दरीख़ाने में नहीं आते.

ठाकुर नींबज की नांई ठाकुर रोउआ भी न राज का हुक्म मानना था और न ख़िराज देता था और उसके इलाक़े के मीने जहां तहां चोरियां किया करते थे, इसलिये उस पर भी दबाव डाला गया, जिससे उसने राज्य के हुक्म की तामील करने, ख़िराज बराबर देते रहने तथा चोरी का हरज़ाना देने का इक़रार लिख दिया.

पालनपुर वालों ने सिरोही राज्य के बहुतसे गांव सर्कार अंग्रेज़ी के साथ अहदनामा होने बाद दबा लिये थे, जिसका दावा सर्कार अंग्रेज़ी में किया गया, जिसपर उसके फ़ैसले के लिये सर्कार ने कर्नल मिल् तथा कप्तान स्पीअर्स को मुक़र्रर किया, जिन्होंने फ़ैसला कर २२ गांव, जिनके लिये दरख़्वास्त की गई थी, पालनपुर से सिरोही को वापस दिलाये और वि० सं० १८८१ (ई० स० १८२४) में गिरवर मावल के पट्टे के सब गांव तथा मूंगथला, आंवल वग़ैरह गांव भी पालनपुर से सिरोही को दिलाकर उनमें सिरोही के थाने बिठला दिये.

इसी साल भाखर परगने के ग्रासिया लोगों को, जो अपनी गुज़र अक्सर चोरी धाड़ों से किया करते थे और राज्य के हुक्म को नहीं मानते थे, ताबे किया और उनको खेती के काम पर लगाया. फिर राज्य के सब सर्दार वगैरह को बुलाकर उनसे राज्य के हुक्म की तामील करने, ख़िराज बराबर देते रहने, राज्य की नौकरी करने और चोर तथा लुटेरों को पनाह न देने का इक़रार लिखवाया गया. यह सब प्रबंध सर्कार अंग्रेज़ी की सहायता से हुआ, जिससे मुल्क में अमन आमान बढ़ता गया.

वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५) में पोलिटिकल एजंट ने राज्य के नये प्रबंध के लिये जो राय महाराव को दी वह इनको पसन्द न हुई, जिससे ये नाराज़ होकर सिरोही छोड़ आबू पर जा रहे और कितनेक सर्दार भी इनसे जामिले, परन्तु थोड़े ही दिनों में इनको अपनी भूल मालूम हो गई, जिससे ये पीछे सिरोही चले आये.

वि० सं० १८८५ (ई० स० १८२७) में देहली का शाहज़ादा मुहम्मद बहरामशाह मक्के से लौटता हुआ सिरोही पहुंचा तो इन्होंने उसकी अच्छी ख़ातिरदारी की जिससे वह खुश हुआ.

सर्कार अंग्रेज़ी के साथ अहदनामा हुआ उस वक्त छः आना फ़ीरुपया सर्कार को ख़िराज देना तै हुआ था, परन्तु सर्कार ने वि० सं० १८८५ (ई० स० १८२८) में दो आना मुआफ़ कर दिया और सालाना ख़िराज के १५०००) रुपये भीलाड़ी (कल्दार रु० १३७६२॥) नियत हुए.

महाराव शिवसिंह ने वि० सं० १८८९ (ई० स० १८३२) कार्तिक वदि १३ को सर्कार अंग्रेज़ी से यह दरख्वास्त की, कि वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६८) और १८८० (ई० स० १८२३) के बीच पालनपुरवालों ने ३१२ गांव सिरोहीराज्य के दबा लिये हैं वे वापस सिरोही को मिलने चाहियें, परन्तु ये गांव सर्कार अंग्रेज़ी के साथ सिरोही का अहदनामा होने के पहिले पालनपुर के कब्ज़े में चले गये थे, इसलिये सर्कार ने उनको वापस नहीं दिलाया.

सर्कार अंग्रेज़ी ने अहदनामा होते ही सिरोही के लिये पोलिटिकल एजंट को इस विचार से मुक़र्रर किया था कि वह बाग़ी सर्दारों को राज्य की हकूमत में लावे; मीने, भील वग़ैरह जो चोरी धाड़ करते थे, उन्हें रोके और राज्य का ठीक बन्दोबस्त कर आमद बढ़ावे. इस समय तक किसी प्रकार सर्कार का यह विचार पार पड़गया था, जिससे सर्कारने पोलिटिकल एजंट को सिरोही से अलग कर सिरोही का पोलिटिकल ताल्लुक़ नीमच एजेन्सी के साथ कर दिया. यह फेरफार महाराव शिवसिंह को पसन्द न आया, क्योंकि ये तो यही चाहते थे, कि पोलिटिकल एजंट तथा सर्कारी फौज अपने यहां बनी रहे, जिससे सब तरह से अच्छी सलाह और मदद मिला करे.

उदयपुर के महाराणा जवानसिंह ने आबू की यात्रा करनी चाही, परन्तु उस समय तक सिरोही दर्बार किसी राजा को आबू पर जाने नहीं देते थे (देखो ऊपर पृष्ठ १९६), इसलिये उदयपुर के पोलिटिकल

एजंट कर्नेल स्पीअर्स साहब ने लिखापढ़ी कर महाराव शिवसिंह से महाराणा के लिये आबू पर जाने की मंजूरी दिलवाई, जिसमे वे ई० स० १८३६ ता० १७ दिसंबर (वि० सं० १८९३ मार्गशीर्ष सुदि १०) को आबू पर पहुंचे. उस समय महाराव शिवसिंह ने उनका बहुत अच्छा सन्मान किया, जिससे बड़े ही प्रसन्न होकर लौटे. इसी समय से हिन्दुस्तान के राजाओं के लिये आबू पर जाने की रोक मिटगई और अब अनेक राजा गरमी के दिनों में प्रतिवर्ष वहां की शीतल वायु का सेवन कर आबू के महत्त्व की प्रशंसा करते हैं.

जब से महाराव शिवसिंह की इच्छा के विरुद्ध सिरोही की पोलिटिकल एजंटी उठा दी गई. तब से ही अपने राज्य के फ़ायदे के लिये इनकी इच्छा यही रही, कि सिरोही में फिर पोलिटिकल एजंट और सर्कारी फौज रहे. ऐसे में सर्कार अंग्रेज़ी ने ऐरनपुर में अपनी छावनी कायम करना निश्चय कर वि० सं० १८९३ (ई० स० १८३६) में उसके लिये महाराव शिवसिंह से ज़मीन चाही, जो इन्होंने प्रसन्नता के साथ दी, जिससे दूसरे वर्ष ऐरनपुर में छावनी कायम होगई. फिर थोड़े ही अरसे बाद वहां के कमांडिंग अफ़सर मेजर डाउनिंग सिरोही के पोलिटिकल एजंट मुक़र्रर हुए. तब से सिरोही का पोलिटिकल संबन्ध नीमच (जहां पर मेवाड़ का पोलिटिकल एजंट रहता था) से छूट गया.

वि० सं० १८९४ (ई० स० १८३७) में डीसा की सर्कारी फौज के २० सिपाही छुट्टी से लौट रहे थे, उनको गिरवर मावल की झाड़ियों

में लुटेरों ने लूट लिया. इनमें से कुछ मारे भी गये और कुछ घायल हुए. उन दिनों उस तरफ़ झाड़ी बहुत होने के कारण लुटेरे लोगों को उधर वारदात करने का सुभीता रहता था और कुछ जागीरदार उन लुटेरों को पनाह भी दिया करते थे, इसलिये इन्होंने उनपर फौज भेजकर उन लुटेरों को सज़ा दी और उस तरफ़ के सब जागीरदार तथा भील व मीनों के मुखियों से राज्य के हुक्म की तामील करने, चोरों को सज़ा दिलाने व उनको पनाह न देने की तहरीर लिखवाली.

वि० सं० १८९७ (ई० स० १८४०) में गिरवर के ठाकुर के निःसंतान मरने पर नींवज के ठाकुर रायसिंह ने बिना राज्य की मंजूरी के अपने बेटे उदयसिंह को वहां गोद रखकर गिरवर का पट्टा अपने आधीन कर लिया. इसपर इन्होंने गिरवर पर फौज भेजी और उदयसिंह को क़ैद कर सिरोही मंगवा लिया, जिसकी ख़बर पाते ही ठाकुर रायसिंह लड़ाई की तय्यारी करने लगा. इससे इन्होंने भी सर्कार अंग्रेज़ी से फौज की मदद चाही, जिसकी मंज़ूरी भी होगई, परन्तु ऐसे में उदयसिंह क़ैद की हालत में मरगया और पोलिटिकल एजंट ने ठाकुर रायसिंह को हिदायत करदी कि वो गिरवर के पट्टे का दावा छोड़ दे और राज्य को अधिकार है. कि चाहे तो उसको ख़ालसा करले. फिर रायसिंह ने सिरोही आकर राज्य के हुक्म की तामील करली, जिससे इन्होंने उसको तथा उसके अहलकारों को सिरोपाव दे सीख देदी और गिरवर की ठकुरानी का माहवारी ख़र्च नियत कर उस पट्टे के सब गांव

ख़ालसा कर लिये.

वि० सं० १९०० (ई० स० १८४३) में गोडवाड़ (मारवाड़ में) के हाकिम ने फौज भेजकर सिरोही राज्य का गांव जोयला तथा उसके आसपास के आठ दूसरे गांवों को लूट कर ३५०००) रुपये का नुक़सान किया, जिसकी इत्तिला सर्कार अंग्रेज़ी के अफ़सरों को दी गई. इसपर गवर्नमेंट ने इन दोनों राज्यों की सीमा नियत करादेने का प्रबंध किया और मारवाड़ की तरफ़ से कप्तान फर्च साहब तथा सिरोही की तरफ़ से मेजर डाउनिंग साहब नियत किये गये, परन्तु सिरोही के अहलकारों की गफ़लत से राज्य को बहुत नुक़सान हुआ और वामणेरा, सिरोड़की, धूलिया, हरजी आदि कई गांव †, जो सिरोही के थे, मारवाड़ में चले गये.

वि० सं० १९०१ (ई० स० १८४४) में उडवाड़िया गांव के लिये कालन्द्री और नींबज के ठाकुरों के बीच झगड़ा हुआ, जो यहां तक बढ़ा, कि दोनों बाग़ी होने को तय्यार हुए. इसकी ख़बर मिलते ही इन्होंने अपने उमरावों को इकट्ठा कर उनकी राय के मुआफ़िक फैसला कर गांव उडवाड़िया कालन्द्रीवालों को दिलादिया और नींबजवालों से किसी प्रकार का फ़साद न करने की तहरीर लिखवा ली.

झाडोली (परगने खारल) व मणादर के सरहदी झगड़े के कारण झाडोली का जागीरदार बाग़ी होकर नुक़सान करने लगा, जिससे

† सिरोही के अहलकार क़रीब १५० गांवों पर जोधपुरवालों का कब्ज़ा होना बतलाते हैं.

वि० सं० १९०२ (ई० स० १८४५) में राज्य की तरफ़ से झाड़ोली पर फ़ौज भेजी गई, जिसके वहां पहुंचने के पहिले ही वहां के जागीरदार ने पहाड़ों में पनाह ली, परन्तु फ़ौज के मुसाहिबों ने हिक्मतअमली से उसको बुला लिया और पंचायत से फ़ैसला करवा कर उसे राज़ी कर दिया.

राजपूताने में आबू का पर्वत ऊंचाई और शीतलता के लिये प्रसिद्ध है. वहां पर सेनिटेरिअम (स्वास्थ्यदायक स्थान) बनवाने की इच्छा से सर्कार अंग्रेज़ी ने वहां पर ज़मीन लेनी चाही, जिसको इन्होंने नीचे लिखी शर्तों के साथ सर्कार अंग्रेज़ी को वि० सं० १९०२ (ई० स० १८४५) में दी:—

शर्त पहिली—जो स्थान सेनिटेरिअम के लिये नियत हो, वह यदि होसके तो नखी तालाव के आसपास की ज़मीन में हो.

शर्त दूसरी—सिपाहियों को गांवों में जाने की मनाई हो और वे वहां के रहनेवालों को किसी तरह की तकलीफ़ न दें और ख़ासकर औरतों की ख़राबी या बेइज़्ज़ती न करने पावें.

शर्त तीसरी—गाय या बैल वहां मारा न जावे. मोर या कबूतर का शिकार न हुआ करे और गाय या बैल का मांस पहाड़ पर लाने की सख़्त मनाई हो.

शर्त चौथी—मंदिरों, धर्मस्थानों आदि एवं उनकी हद्द में विना इजाज़त के जाना न हो.

शर्त पांचवीं—पूजारियों और साधुओं से कोई छेड़छाड़ न हो.

शर्त छठी—पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट साहब की मार्फ़त राव साहब या उनके कामदार की इजाज़त हासिल किये बिना आबूपर कोई दरख़्त न काटा जावे और न उखाड़ा जावे.

शर्त सातवीं—साधुओं और पूजारियों के मकानों के निकट अर्थात् तालाब के दक्षिण-पूर्वी कोनेपर मछली के शिकार की सिपाहियों को मनाई हो.

शर्त आठवीं—सिपाही लूटे न जावें, इसका पूरा प्रबंध रक्खा जावे, क्योंकि राव साहब खुद इन बातों का ज़िम्मा नहीं ले सकते.

शर्त नवीं—ऐसा इंतिज़ाम किया जावे, कि खेती बाड़ी और दूसरे असबाब का नुक़सान न हो और सिपाहियों को मनाई हो, कि वे आम, जामुन और शहद आदि को, जो प्रजा की संपत्ति है, जमा न करें या उनको बर्बाद न करें (लेकिन् करोंदा, जो बहुतायत से होता है, वे ले सक्ते हैं).

शर्त दसवीं—कोई रास्ता या पगडंडी बन्द न कीजावे.

शर्त ग्यारहवीं—राव साहब से कोई ख़्वाहिश बाज़ार के लिये न कीजावे, किन्तु ज़रूरी सामान प्राप्त करने का सब प्रबंध अपने ही तौर पर किया जावे.

शर्त बारहवीं—कोई शख़्स अंग्रेज़ या हिन्दुस्तानी, लूट से बचने के लिये एक अगुवा अपने साथ लिये बिना इलाक़े सिरोही में सफ़र न करे. अगुवे, कुली और मज़दूरों को सिरोही के निर्ख़ के अनुसार, जिसको

कर्नेल सदर्लैंड साहब ने तजवीज़ किया था, दाम मिला करें.

शर्त तेरहवीं—तमाम कुली और मज़दूरों को आबू पहाड़ पर उसी निरख से मज़दूरी मिलेगी, जो वहां के लिये कर्नेल सदर्लैंड साहब ने तजवीज़ किया था.

शर्त चौदहवीं—सिपाही सिर्फ़ घाटा अनादरा और घाटा डेमाणी से जाया आया करें.

शर्त पन्द्रहवीं—अगर ऐसे मामले पेश आवें, कि जिनसे और शर्तों या तद्बीरों की ज़रूरत पड़े तो वे पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट की मार्फ़त राव साहब से लिखा पढ़ी होकर तै पा सकेंगी.

इन शर्तों के साथ महाराव के ज़मीन देने पर आबू पर सेनिटेरिअम बना और वहीं राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल साहब का हेडक्वार्टर (मुख्य निवासस्थान) भी नियत हुआ. वहांपर कई बीमार अंग्रेज़ सिपाही तंदुरुस्ती के लिये रहते हैं और गरमी के दिनों में राजपूताना तथा दूसरे प्रदेश के यूरोपिअन अफ़सर, राजा तथा धनाढ्य लोग शीतलता के कारण प्रतिवर्ष आकर निवास करते हैं.

वि० सं० १९०३ (ई० स० १८४७) माघ वदि ६ को महाराव उदयभाण का नज़रकैद की हालत में शरीरान्त हुआ और महाराव शिवसिंह सिरोही में गद्दीनशीन † हुए. इनके रा-

† महाराव वैरीशाल के तीन कुंवर उदयभाण, अखेराज और शिवसिंह थे. महाराव उदयभाण के कैद होने से थोड़े ही समय बाद कुंवर अखेराज का एक बंदूक के फटने से देहान्त

ज्याभिषेक का उत्सव वि० सं० १९०४ (ई० स० १८४७) कार्तिक सुदि ४ को हुआ.

वि० सं० १९०३ से १९०६ (ई० स० १८४६ से १८४९) तक महाराव शिवसिंह ने कई बाग़ियों को, जो देश को नुक़सान पहुंचा रहे थे, सज़ा देकर सीधा किया. उनमें मुख्य नीचे लिखे हुए थे:—

(१) गांव आलोळिया के लुटेरे भील.

(२) नाहर (मेवाड़ की तरफ़ के पहाड़ी इलाक़े) के लुटेरे भील.

(३) हरणी का जागीरदार देवड़ा अमरसिंह.

(४) भील भावला व उसके साथी.

(५) झाड़ोली के वजावत जागीरदार.

(६) लोयाणा (इलाक़े मारवाड़) का जागीरदार राणा पन्ना.

(७) गांव तलेटा, मांचाल और ऊथमण के मीने.

(८) भील गीगड़ा और तेजड़ा.

(९) मीना कांगीवाला, नाडिआ और बनका.

ये मीने मारवाड़, सिरोही और मेवाड़ में डाके डालते थे और अक्सर मुसाफ़िरों को लूट लिया करते थे. मारवाड़ की फ़ौज इनके पीछे लगीहुई

हो चुका था और महाराव उदयभाण के पुत्र न था, जिससे उनके बाद महाराव शिवसिंह गद्दीनशीन हुए.

थीं और महाराव शिवसिंह ने भी अपनी फ़ौज उनको मारडालने या पकड़ने को भेजी, जिसने उनके बहुतसे साथियों को मारडाला और बाक़ी रहे वे बिखर गये. मंडवाड़ा के ठाकुर ने कई लुटेरों को मारकर नामी भील गीगड़े को पकड़ लिया, जिसके इनाम में महाराव शिवसिंह ने उसको एक रहट दिया.

उदयपुर राज्य के भोमट इलाक़े के ठिकाने जूड़ा (मेरपुर) की सरहद सिरोही राज्य से मिली हुई है. जूड़ा की आबादी अधिकतर भीलों की होने के कारण वहां के भील बाहर के चोरी करनेवाले अपने रिश्तेदारों को पनाह देते थे और अपने पड़ोस के सिरोही के गांवों से पशुओं को चुरा ले जाते थे, जिसको रोकने के लिये वहां के रावत को महाराव शिवसिंह ने कई बार लिखा, परन्तु उसने उसपर कुछ भी ध्यान न दिया, इसलिये सर्कार अंग्रेज़ी को लिखकर उक्त सर्दार को मजबूर किया, जिससे वि० सं० १९०५ (ई० स० १८४८) के मार्गशीर्ष मास में उसने सिरोही आकर लिख दिया, कि आयंदा चोरी करनेवाले लोगों को अपने इलाक़े में पनाह न दी जायेगी और चोरी साबित होने पर चोरों को सज़ा दी जायेगी.

इसी वर्ष जोधपुर राज्य के जालोर परगने के मांडली गांव के जागीरदार ने बाग़ी होकर सिरोहीराज्य के रोउआ गांव में पनाह ली, जिसकी ख़बर होने पर महाराव ने मुन्शी निआमतअलीखां को फ़ौज के साथ रोउआ पर भेजा, जहां के ठाकुर ने राज्य की फ़ौज का

सामना किया, जिससे उसका गांव जला दिया गया और वह भागकर पहाड़ों में चला गया. फिर जुरमाना देने व मुआफ़ी मांगने पर उसका गांव उसको पीछा दिया गया.

पीथापुरा के ठाकुर अनाड़सिंह व नवलसिंह ने बाग़ी होकर मुल्क को नुक़सान पहुंचाना शुरू किया और सर्कार अंग्रेज़ी के एक चपरासी को मारकर उसका सामान भी लूट लिया, जिसके हरजाने के रुपये सिरोहीराज्य को देने पड़े. नींबज का ठाकुर पीथापुरावालों को मदद देता और राज्य के हुक्म की तामील करने में टाला टूली किया करता था, इसलिये महाराजकुमार गुमानसिंह ने राज्य की व सर्कार अंग्रेज़ी की फौज के साथ नींबज पर चढ़ाई की. कुछ देरतक लड़ने बाद ठाकुर भागकर पहाड़ों में चला गया, परन्तु थोड़े ही दिनों बाद उसने अपने कुसूर के लिये मुआफ़ी मांगी और आयंदा राज्य के हुक्म की बराबर तामील करते रहने का फिर इक़रार लिख दिया, जिससे उसको अपने ठिकाने में जाने की आज्ञा मिली.

जोगापुरे का देवड़ा ठाकुर अपने यहां चोरों को पनाह देता और उनसे चोरियां करवाता था, जिनके फ़ैसले पंचायत से होने पर दूसरी रियासतों के हरज़ाने के रुपये राज्य को देने पड़ते थे, इस वास्ते चोरों को अपने यहां न रखने की उक्त ठाकुर को आज्ञा दी गई, परन्तु उसने कुछ न माना, जिस पर वि० सं० १९०६ (ई० स० १८४९) आसोज वदि ६ को उसे क़ैद कर जेलखाने में डाला,

जिससे तंग होकर उसने आयन्दा अपने यहां चोरों को पनाह न देने व चोरों से वास्ता न रखने की तहरीर लिखदी और राज्य को जो रुपये दूसरी रियासतों को देने पड़े थे, उनके बदले में अपने दो खेड़े (छोटे गांव) तथा जुर्माना देकर क़ैद से छूटा.

जोधपुर राज्य के गांव लोहिआणा का ठाकुर सिरोही राज्य के गांव हालीवाड़ा, नूंन, सीलदर वगैरह में, जो उसकी जागीर के पास थे, लूट खसोट किया करता था, जिसकी इत्तिला सर्कार अंग्रेज़ी को वि० सं० १९०९ (ई० स० १८५२) में दी गई. जिससे ठाकुर ने सिरोही आकर आयंदा नुक़सान न करने का इक़रार किया और नुक़सान का बदला सिरोहीराज्य को मारवाड़ की तरफ़ से मिलगया.

जोधपुर राज्य के ठिकाने नाणा में भी, जो सिरोहीराज्य से मिला हुआ है. चोरी करनेवाली क़ौमें बसती थीं, जो सिरोहीराज्य के गांवों में चोरी किया करती थीं, जिसकी इत्तिला सर्कार अंग्रेज़ी को दीजाने पर वहां के ठाकुर दौलतसिंह ने महाराव के पास आकर वि० सं० १९०९ (ई० स० १८५२) भाद्रपद वदि ४ को आयंदा चोरी न होने देने की तहरीर लिखदी.

सिरोही और पालनपुर की सीमा के फ़ैसले के समय भटाणा के जागीरदार के दो गांव पालनपुर में चले गये, जिनके बदले में राज्य ने उसको दूसरे गांव देना चाहा, जिसको लेना स्वीकार न कर वहां का ठाकुर देवड़ा नाथूसिंह, जो वीरप्रकृति का राजपूत था, वि० सं० १९१०

(ई० स० १८५३) में बाग़ी होकर पहाड़ों में चला गया और आस-पास के गांवों को लूटने लगा. राज्य की फौज उसको दबाने के लिये काफ़ी न होने के कारण सर्कार अंग्रेज़ी ने एरनपुर की फौज से राज्य को मदद की. अंत में नाथूसिंह अपने थोड़े से साथियों सहित पकड़ा गया और उसको ६ बरस की क़ैद की सज़ा हुई, परन्तु वि० सं० १९१५ (ई० स० १८५८) में वह जेलखाने से भाग गया और फिर उसने लूट मार करना शुरू किया, जिसपर महाराव शिवसिंह ने मुन्शी निआमतअलीखां को फौज के साथ उसको पकड़ने के लिये भेजा. परन्तु विकट पहाड़ों का सहारा होने से उसको पकड़लेना आसान काम न था, इसलिये निआमतअलीखां उसको समझा कर अपने साथ सिरोही ले आया और महाराव ने उसका अपराध क्षमा किया. परन्तु आगे के लिये नेक चलनी की तहरीर लिखवाने बाद उसकी जागीर पीछी उसको देदी.

वि० सं० १९१० (ई० स० १८५३) में उदयपुर के प्रधान मेहता शेरसिंह की तहरीर आने पर दोनों रियासतों के मोतमिदों ने मिलकर ज़ूड़ा के इलाक़े में चोरों को पनाह न मिलने का बंदोबस्त किया और उसके लिये उदयपुर राज्य का एक अहलकार वहां पर रहना तजवीज़ हुआ, जिसकी इत्तिला सर्कार अंग्रेज़ी को भी दी गई.

इसी वर्ष महाराव शिवसिंह ने एरनपुर की छावनी के पास अपने नाम से शिवगंज नाम का क़सबा आबाद किया, जिसकी उन्नति

के लिये इन्होंने केवल १।) रुपया लेकर एकेक मकान की ज़मीन का पट्टा करदेने की आज्ञा दी और ब्योपारियों को माल के महसूल में से चौथाई हिस्सा मुआफ़ कर दिया, जिससे पाली वग़ैरह दूर दूर के ब्योपारी आकर वहां पर आबाद हुए और तरक्क़ी पाते पाते इस समय वहां पर क़रीब ६००० मनुष्यों के आबादी हो गई है और एक शफ़ाख़ाना भी बना है. यह क़सबा तहसील शिवगंज का मुख्यस्थान है (देखो ऊपर पृ० ५८).

वि० सं० १९११ (ई० स० १८५४) में महाराव शिवसिंह ने यह देखकर कि राज्य पर कर्ज़ा बढ़ गया है और राज्य का प्रबन्ध भी दुरुस्त करना है, सर्कार अंग्रेज़ी से एक अंग्रेज़ अफ़सर को सुपरिंटेंडेंट नियत करने की दरख़्वास्त की. यह इंतिज़ाम पहिले तो आठ वर्ष के लिये था, परन्तु पीछे ग्यारह वर्ष के लिये किया गया, क्योंकि वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) का ग़दर होजाने के कारण राज्य का कर्ज़ा चुकाने में बाधा पड़ गई थी. पहिले कर्नेल ऐंडरसन् साहब सुपरिंटेंडेंट हुए, जिनकी योग्यता और समझदारी के सबब बहुत कुछ इंतिज़ाम और तरक्क़ी हुई, जिससे उनकी भी सर्कार अंग्रेज़ी में नेकनामी हुई. सुपरिंटेंडेंट का काम यही था, कि राज्यख़र्च को छोड़कर, जो नियत हो गया था, उन बातों का प्रबंध करे, जिनसे देश की हालत सुधरे और आमदनी बढ़े. बाक़ी सब काम महाराव शिवसिंह की इच्छानुसार होते रहे. सुपरिंटेंडेंट के प्रबंध से ब्योपार तथा खेती की तरक्क़ी

हुई, आमदनी बढ़ी और भीतरी बखेड़े न होने पाये.

वि॰ सं॰ १९१४ (ई॰ स॰ १८५७) में सर्कार अंग्रेज़ी की देशी फौज ने हिन्दुस्तान में ग़दर की आग लगा दी, जिसकी चिनगारियां सिरोहीराज्य में भी पहुंचीं. एरनपुर की छावनी की फौज भी, सिवाय भील कंपनियों के, बाग़ी होगई. उस समय वहां की फौज के कमांडिंग अफ़सर कप्तान हॉल साहब आबू पर थे और दूसरे अफ़सर कप्तान ब्लैक नसीराबाद थे. वहां पर केवल लफ्टिनेंट कोनोली, एज्युटंट और सार्जंट लोग अपने बालबच्चों सहित थे.

पैदल फौज की एक कंपनी रोउआ के ठाकुर को, जो सिरोहीराज्य से बाग़ी हो रहा था, सज़ा देने के लिये जाती हुई ता॰ १९ अगस्त को हणाद्रे में पहुंची और वहीं से बाग़ी होकर आबू पर चढ़ गई तथा वहां की देशी फौज की दो कंपनियों से मिलकर ता॰ २१ अगस्त को उसने आबू पर ग़दर कर दिया. उस समय आबू पर ८३ नंबर की अंग्रेज़ी रजमट के ४०-५० बीमार सिपाही तथा थोड़े से अंग्रेज़ अफ़सर, लेडियां और बच्चे थे. ईश्वर की कृपा से बाग़ी लोगों के पैर वहां पर जम न सके. कितने एक बाग़ियों ने बारकों के पास जाकर बंदूकें चलाईं, जिसपर अंग्रेज़ सिपाहियों ने भी अपनी बन्दूकें सम्भालीं और एक बाग़ी के मरते ही दूसरे वहां से भाग निकले. बाग़ियों की एक दूसरी टुकड़ी ने कप्तान हॉल साहब के बंगले पर जाकर गोलियां चलाईं, परन्तु किसी का बाल भी बांका न हुआ. मिस्टर अलेक्जेंडर

लॉरेन्स, जो उस समय के राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल साहब के पुत्र थे और अपनी माता व बहिन सहित वहां पर रहते थे, कप्तान हॉल साहब के बंगले की तरफ़ बन्दूकों की आवाज़ सुनकर उसका कारण मालूम करने को बाहर निकले. उनको देखते ही बाग़ियों ने उनपर गोली चलाई, जो उनकी जांघ में लगी. यह ख़बर सुनते ही कप्तान हॉल साहब व डॉक्टर यंग (जो वहां के मेडिकल अफ़सर थे) थोड़े से आदमियों को साथ लेकर सिपाहियों की लाइनों की तरफ़ गये और बाग़ियों का मुक़ाबला कर उनको आबू से नीचे भगा दिया.

उधर एरनपुर में ग़दर होते ही वहां के अंग्रेज़ों ने (जिनमें सिर्फ़ तीन अंग्रेज़, दो मेंमसाहिबा और पांच बालक थे) रिसाले की लाइनों में जाकर बचाव किया, जहांसे मेहरबानसिंह नाम के सिपाही ने उनको सही-सलामत भगा दिया, परन्तु कप्तान कोनोली को बाग़ी लोग पकड़ कर अपने साथ लेगये.

महाराव शिवसिंह को एरनपुर के ग़दर की ख़बर लगते ही इन्होंने मुन्शी निआमतअलीखां को यह हुक्म दिया, कि तुम फ़ौज के साथ फ़ौरन एरनपुर जाकर बाग़ियों के हाथ से किसी तरह अंग्रेज़ों को छुड़ाकर सिरोही ले आओ. मुन्शी निआमतअलीखां ने वड़गाम के पास बाग़ियों का मुक़ाबला किया. फिर एरनपुर से भागे हुए अंग्रेज़ों का पता लगाकर उनको हिफ़ाज़त के साथ सिरोही पहुंचा

दिया, जहांपर महाराव शिवसिंह ने उनको बड़े आराम से अपने महलों में रक्खा.

जब मुन्शी निआमतअलीखां को यह मालूम हुआ कि कप्तान कोनोली को बाग़ी लोग पकड़ कर ले गये हैं, तब उसने बाग़ियों का पीछा किया और दो दिन की सफ़र के बाद वह उनसे मिला तथा अब्बासअली व इलाहीबख़्श नामक सवारों को, जो उक्त साहब की निगहबानी पर मुक़र्रर थे, लालच दिया, जिससे वे उक्त साहब के साथ वहां से भागकर एरनपुर लौट आये. वहां से कोनोली साहब भी सिरोही पहुंच गये. एरनपुर के बाग़ियों में से कितने एक तो देहली की तरफ़ गये और बाक़ी आउआ (जोधपुरराज्य में) के ठाकुर से जा मिले, जो जोधपुर राज्य से नाराज़ होने के कारण बाग़ी हो गया था.

आउआ से आगे जाते हुए बाग़ी लोग सिरोही के पास होकर निकले, परन्तु शहर के बचाव का प्रबंध अच्छा देखकर उन्होंने लड़ने की हिम्मत न की और वहां से चले गये.

इन ग़दर के दिनों में बाग़ियों के डर के मारे आबू पर डाक नहीं पहुंच सकती थी, इसलिये महाराव ने सवारों व सिपाहियों को सड़क पर नियत कर दिया, जिससे डाक फिर आने जाने लगी. ग़दर की शांति होने बाद महाराव ने सब अंग्रेज़, मैंमसाहिबा व बच्चों को एजंट गवर्नरजनरल साहब के पास पहुंचा दिया, जिन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और सिरोहीराज्य की ख़ैरख़्वाही का सब हाल गवर्नमेंट हिन्द को लिख

भेजा. उससे खुश होकर सर्कार ने सिरोही राज्य पर खिराज की जो रक़म बाक़ी थी, वह छोड़ दी और आगे के लिये सालाना खिराज आधा कर दिया अर्थात् ७५००) भीलाड़ी (कल्दार ६८८१-४-०) रुपये नियत हुए जो अबतक दिये जाते हैं.

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) मार्गशीर्ष वदि अमावास्या को रोहिड़ा गांव के रहनेवाले जानी हीरानंद को खैरख्वाही व तन्देही के साथ राज्य की सेवा करने के कारण महाराव शिवसिंह ने प्रसन्न होकर रोहिड़े में दो रहट दिये, जो अबतक उसके वंशजों के कब्ज़े में हैं. सिरोहीराज्य की प्रजा में से अंग्रेज़ी पढ़नेवाला पहिला पुरुष यही (जानी हीरानंद) था.

वि० सं० १९१६ (ई० स० १८६०) में धानता और वेलांग्री के ठाकुरों के बीच जागीर के बाबत झगड़ा होने के कारण धानता के ठाकुर ने माघ वदि ८ को वेलांग्री पर हमला कर दिया, जिसमें दोनों तरफ़ के कई आदमी मारे गये और घायल भी हुए. इसलिये महाराव ने दोनों ठाकुरों को पकड़ लाने को फौज भेजदी, जिसने धानता के ठाकुर को पकड़ कर सिरोही भेज दिया, परन्तु वेलांग्री का ठाकुर बाग़ी होकर पहाड़ों में चला गया और इधर उधर लूट मचाने लगा. उसको भी पकड़ने के लिये इन्होंने फौज नियत करदी थी, परन्तु मोटागाम का ठाकुर विजयसिंह उसको समझा कर सिरोही ले आया. महाराव ने दोनों ठाकुरों पर जुर्माना किया और आयंदा

किसी तरह का उपद्रव न करने की ज़मानतें लेने बाद उनको सीख दी.

इसी वर्ष सणवाड़ा व सिरोड़ी के ठाकुरों ने बग़ावत की, जिसकी ख़बर पाने पर इन्होंने उनपर फौज भेज दी. सनवाड़ा के राजपूत तो फौज के शरण होगये, जिनको सिरोही लाकर जेलख़ाने में रक्खा और रउवा के ठाकुर की ज़मानत पर पीछे से उनको छोड़ दिया, परन्तु सिरोड़ी का ठाकुर पहाड़ों की पनाह लेकर राज्य की फौज का सामना करता रहा और दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी मारे गये, जिससे अधिक फौज भेजनी पड़ी. अंत में डबाणी का ठाकुर उसका ज़ामिन होकर उसे सिरोही ले आया. फिर राज्य तथा प्रजा का जो नुक़सान उसने किया था, वह उससे भर लेने बाद उसको अपने ठिकाने में जाने की आज्ञा दी गई. इस बखेड़े को मिटाने में सर्कार अंग्रेज़ी की बड़ी मदद रही.

महाराव शिवसिंह के सबसे बड़े महाराजकुमार गुमानसिंह लगातार बीमार रहने लगे, जिससे निराश होकर उन्होंने वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) आश्विन वदि ५ को अपने ही हाथ से गोली खाकर आत्मघात करलिया, जिसका महाराव को बड़ा ही दुःख हुआ. बासठ बरस की वृद्धावस्था में ऐसा भारी सद्मा पहुंचने से इनकी तंदुरुस्ती में फ़र्क आगया, जिससे वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) में इन्होंने राजकार्य अपने महाराजकुमार उम्मेदसिंह के सुपुर्द कर दिया. फिर ये अपना समय केवल भगवद्भजन में बिताने लगे.

वि० सं० १९१९ पौष वदि २ (ता० ८ दिसम्बर सन् १८६२ ई०)

को महाराव शिवसिंह का स्वर्गवास हुआ और महाराजकुमार उम्मेदसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए.

महाराव शिवसिंह का जन्म वि० सं० १८५५ (ई० स० १७९८) कार्तिक सुदि ६ मंगलवार के दिन चारघड़ी पांच पल दिन चढ़े हुआ था. इनका क़द छोटा और वर्ण गौर था. ये शस्त्रविद्या में बड़े निपुण और निशाना लगाने में इनकी ख्याति बहुत थी. ये घोड़े की सवारी के शौक़ीन, हिम्मतवर, क़दरदान † तथा धर्मनिष्ठ ‡ राजा थे. ये माला

† अच्छी नौकरी से प्रसन्न होकर इन्होंने कई सर्दारों, ठाकुरों तथा अहलकारों की अच्छी क़दर की, जिसके अनेक उदाहरण मिलते हैं. उनमें से थोड़े से नीचे लिखे जाते हैं:—

वि० सं० १९१४ में रोहेड़ा गांव के रहनेवाले जानी हीरानन्द को उसी गांव में दो रहट दिये (जिसके दो वर्ष पूर्व भूला गांव में दो रहट की ज़मीन भी आधा हासिल लेने की शर्तपर वंशपरंपरा के लिये उसको दी थी). नूंन गांव का आधा हिस्सा जावाल के ठाकुर को, भीमाणा गांव बागसिंह व चतरसिंह के वारिसों को, धनारी गांव सिगरणोत जेना को और मांगवाड़ा राणावत बुधसिंह को दिया था.

‡ इन्होंने कई जगह सदाव्रत जारी किये; मुसाफ़िरों के सुख के लिये जहां जहां जलका कष्ट देखा, वहां कूएं खुदवाये और कई मन्दिर, धर्मशाला, तालाव, कुंड आदि का जीर्णोद्धार करवाया. वि० सं० १८७६ (ई० स० १८१९) में द्वारिका की यात्रा कर वासा गांव द्वारिकानाथ (रणछोड़जी) के भेट किया, जिसकी आमदनी की नियत रक़म सालाना वहां पहुंचती है. देलदर गांव की राज्य की आमद अंबाभवानी के मन्दिर को भेट की, जो सदाव्रत में ख़र्च होती है. जगापुर गांव की राज्य के हिस्से की आमदनी सारणेश्वरजी के, वीरवाड़ा की वामणवारजी (वाणवारजी) के भेट की और वि० सं० १८८५ (ई० स० १८२८) में सोनानी गांव (मंडार तहसील में) की राज्य की आमदनी ऊदारा माता के भेट की.

बहुत फिराया करते थे, जिससे इनकी अंगुलियों में खड्डे तक पड़गये थे. सिरोहीराज्य की अबतर हालत को मिटाकर इन्होंने ही राज्य की नींव पीछी दृढ़ की. जिस दिन से राज्य का काम अपने हाथ में लिया उस दिन से लगाकर वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) तक इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य राज्य का हुक्म न माननेवाले सर्दारों को ताबे करना, भील मीने आदि को दंड देकर प्रजा की रक्षा करना, राज्य की आमद व ख़ालसा बढ़ाना, राज्यप्रबन्ध की दुरुस्ती करना, मुल्क को पीछा आबाद करना तथा वहां पर शांति फैलाना ही माना. इन्होंने राज्य का हुक्म न माननेवाले तथा निःसंतान मरनेवाले कई सर्दारों के गांव ख़ालसा किये, परन्तु देवमंदिर, ब्राह्मण, साधु, चारण आदि को दान में दी हुई भूमि छीनने की कभी चेष्टा न की. इस काम को ये धर्मविरुद्ध तथा निन्दनीय समझते थे. इनका स्वभाव कुछ तेज़ अवश्य था, परन्तु इन्होंने किसी का अनुचित नुक़सान नहीं किया. राजपूताना के अतिरिक्त गुजरात, काठियावाड़, सैंट्रल इंडिया आदि के कई राजाओं तथा सर्दारों से इनकी मैत्री थी और इनकी मिलनसार प्रकृति के कारण अंग्रेज़ अफ़सर, जिन जिनको इनसे काम पड़ा, इनसे ख़ुश रहे. ये सर्कार अंग्रेज़ी के सच्चे ख़ैरख़्वाह थे और सर्कार का सदा अहसान मानते थे. क्योंकि इनके राज्य का बचाव केवल सर्कार अंग्रेज़ी की कृपा और सहायता से ही हुआ था.

इनके छः महाराणियां, आठ महाराजकुमार और छः राजकुमारियां थीं. जिनकी तफ़्सील नीचे दीजाती हैः—

महाराणियां.

(१) खेजड़ली (मारवाड़ में) के चांपावत ठाकुर सालिमसिंह की पुत्री सर्दारकंवर. वि० सं० १८७० (ई० स० १८१३) में विवाह हुआ.

(२) थोब (मारवाड़ में) के मेड़तिया (राठौड़) ठाकुर मोकमसिंह की पुत्री सूरजकंवर. वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१५) में शादी हुई.

(३) पोसीना (ईडर राज्य में) के वघेल ठाकुर केसरीसिंह की पुत्री चतुरकंवर. वि० सं० १८७८ (ई० स० १८२१) में विवाह हुआ.

(४) पोसीना के उपरोक्त ठाकुर की दूसरी पुत्री जसकंवर. वि० सं० १८८३ (ई० स० १८२६) भाद्रपद वदि ८ को शादी हुई.

(५) थोब के ठाकुर उदयसिंह की पुत्री अभयकंवर. वि० सं० १८८७ (ई० स० १८३०) में विवाह हुआ.

(६) दांता (गुजरात में) के राणा नाहरसिंह की पुत्री दौलतकंवर. वि० सं० १८९० (ई० स० १८३३) में विवाह हुआ.

इन सब के डोले आये थे.

महाराजकुमार.

(१) गुमानसिंह—इनका जन्म वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) मार्गशीर्ष शुक्ला ५ को नांदिआ गांव में (महाराणी नं० १ से) हुआ था.

इनका देहान्त अपने पिता की विद्यमानता में होगया था (देखो ऊपर पृष्ठ ३१४).

(२) दुर्जनसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १८७७ (ई॰ स॰ १८२०) में (महाराणी नं॰ १ से) और देहान्त वि॰ सं॰ १८९७ (ई॰ स॰ १८४०) आश्विन वदि ११ को अपने पिता की विद्यमानता में हुआ था.

(३) उम्मेदसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १८८९ (ई॰ स॰ १८३३) फाल्गुन सुदि २ गुरुवार को (महाराणी नं॰ ५ से) हुआ था. ये अपने पिता के पीछे सिरोही के राजा हुए.

(४) हमीरसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १८९६ (ई॰ स॰ १८३९) चैत्र सुदि ९ को (महाराणी नं॰ ३ से) हुआ था.

(५) जेतसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १८९६ (ई॰ स॰ १८३९) पौष वदि १३ (महाराणी नं॰ ६ से) हुआ था.

(६) जवानसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १९०१ (ई॰ स॰ १८४४) पौष वदि १२ को हुआ था. ये महाराजकुमार जेतसिंह के सहोदर भाई थे.

(७) जामतसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १९०३ (ई॰ स॰ १८४६) में हुआ था. ये भी महाराजकुमार जेतसिंह के सहोदर भाई थे.

(८) तेजसिंह–इनका जन्म वि॰ सं॰ १९०५ (ई॰ स॰ १८४८) भाद्रपद सुदि ८ को हुआ था. ये महाराजकुमार उम्मेदसिंह के सहोदर भाई थे.

महाराव उम्मेदसिंह, सिरोही।

राजकुमारियां.

(१) रतनकंवर—इनका विवाह जयपुर के महाराजा जयसिंह (तीसरे) से वि० सं० १८८५ (ई० स० १८२८) माघ वदि ७ को हुआ था.

(२) उम्मेदकंवर—इनका विवाह डूंगरपुर के महारावल उदयसिंह के साथ वि० सं० १६११ (ई० स० १८५४) ज्येष्ठ वदि २ को हुआ था.

(३-४) गुलाबकंवर और चांदकंवर—इन दोनों के विवाह जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह के साथ क्रमशः वि० सं० १६०६ (ई० स० १८५३) माघ सुदि ७ और १६२३ (ई० स० १८६६) भाद्रपद वदि ८ को हुये थे.

(५) माणककंवर—इनका विवाह बांसवाड़े के महारावल लक्ष्मणसिंह से वि० सं० १६१६ (ई० स० १८५६) माघ वदि ८ को हुआ था.

(६) फूलकंवर—इनका विवाह करौली के महाराजा मदनपाल के साथ वि० सं० १६२४ (ई० स० १८६७) वैशाख वदि १२ को हुआ था.

महाराव उम्मेदसिंह.

महाराव उम्मेदसिंह का जन्म वि० सं० १८८६ (ई० स० १८३३) में, गद्दीनशीनी वि० सं० १६१६ (ई० स० १८६२) पौष वदि २ को और राज्याभिषेक का उत्सव वि० सं० १६१६ (ई० स० १८६३) माघ सुदि १० को हुआ था.

महाराव शिवसिंह के जीतेजी वि० सं० १६१८ (ई० स० १८६१)

में मेजर हॉल साहब ने, जो उस समय सिरोही के पोलिटिकल सुपरि
टेंडेंट थे, यह ज़रूरी समझा कि महाराव शिवसिंह के चार छो
महाराजकुमारों के खर्च का प्रबन्ध करना चाहिये और यह तजवी
की, कि महाराजकुमार हमीरसिंह, जैतसिंह, जवानसिंह और जामत
सिंह को कुछ गांव देदिये जावें और सब से छोटे महाराजकुमार तेज
सिंह के लिये, जो उस वक्त केवल १३ वर्ष के थे, अभी कुछ न किय
जावे, परन्तु महाराजकुमार हमीरसिंह के सिवाय सबने इस तजवी
को नामंजूर किया और अपने विवाह होने तक माहवार ५००) रुप
लेकर सिरोही में ही रहना पसंद किया. महाराजकुमार हमीरसिंह
छोटे आदमियों की बहकावट में आकर फ़साद करने का विचार किय
और महाराव शिवसिंह की विद्यमानता में वि० सं० १९१८ (ई
स० १८६१) आसोज सुदि १३ को शिकार के बहाने से पींडवाड़े जाक
उस क़सबे पर कब्ज़ा करलिया. उनको सब तरह से समझाने का य
किया गया, परन्तु उन्होंने एक न मानी. तब मेजर हॉल साहब
फौज लेजाकर उनको दबाना चाहा, इससे उन्होंने भागकर आड़ावल
(अर्वली) पहाड़ में पनाह लेली, जहांपर भील व ग्रासियों की मद
मिलजाने से उन्होंने लूटमार करना शुरू करदिया. मेजर हॉल साह
ने उनका पीछा करना उचित न समझा, परन्तु जगह जगह प
फौज की टुकड़ियां इस विचार से नियत करदीं, कि वे (हमीरसिंह
मुल्क को नुक़सान न पहुंचा सकें. वि० सं० १९१९ (ई० स० १८६२

वैशाख वदि ९ को जेतसिंह वगैरह तीनों भाई भी भागकर अपने भाई हमीरसिंह से जामिले और कानिआ नामक ग्रासिया, जो नाहर के पहाड़ी इलाके के ग्रासियों का एक मुखिया था, उनका मददगार होगया. मेजर हॉल साहब का प्रबन्ध बहुत अच्छा होने पर भी उन (हमीरसिंह) के साथ के ग्रासिये आदि मौका पाकर चोरी धाड़े किया करते थे, जिससे उधर के इलाके के लोगों को चैन न था.

वि० सं० १९१९ (ई० स० १८६२) में सिरोहीराज्य को वंशपरंपरा के लिये गोद लेने की सनद सर्कार अंग्रेज़ी से मिली और इसी साल सर्कार अंग्रेज़ी की इच्छानुसार इस राज्य में सती होने का रिवाज बंद किया गया और उसके लिये राज्यभर में इश्तिहार जारी कर कुल तहसीलदारों को हिदायत कीगई, कि यदि कोई औरत सती होना चाहे तो उसको फ़ौरन रोककर इत्तिला दो.

वि० सं० १९१९ पौष वदि २ (ई० स० १८६२ ता० ८ दिसंबर) को महाराव शिवसिंह का स्वर्गवास होने पर महाराव उम्मेदसिंह गद्दीनशीन हुए. इन्होंने राज्य पाते ही अपने छोटे भाइयों को समझा कर सिरोही बुला लेने का यत्न किया और कितनेक सर्दारों को भेजकर उनकी तसल्ली करादी, जिससे जेतसिंह, जवानसिंह और जामतसिंह तो सिरोही चले आये. परन्तु हमीरसिंह ने अपना हठ न छोड़ा.

वि० सं० १९१९ (ई० स० १८६३) फाल्गुन वदि ६ को उन तीनों को महाराव उम्मेदसिंह ने नीचे लिखे हुए गांव जागीर में दिये:—

जेतसिंह को—गांव नांदिआ, हमीरपुर, लाज और आधा बावली.

जवानसिंह को—गांव अजारी, आल्पा और खेजड़िआ.

जामतसिंह को—गांव खाखरवाड़ा, खराड़ी और मानपुर. महाराव ने ये साढ़े नव गांव अपने तीनों भाइयों को दिये और गांव नीतोड़ा पीछे से तीनों को शामिल में मिलना निश्चित हुआ.

इस प्रकार गांव मिलजाने से वे तीनों ही राज़ी होगये और उनका तथा व उनके साथियों का अपराध क्षमा किया गया.

अपने तीन भाइयों को जागीर मिलने की ख़बर पाने पर हमीरसिंह भी सिरोही जाने की पैरवी करने लगे, जिसका इशारा पाते ही महाराव ने, जिनको अपने भाइयों पर बड़ा ही प्रेम था, उनको तुरन्त सिरोही बुला लिया और वि० सं० १९२० (ई० स० १८६३) आषाढ़ सुदि २ को सांतपुर, कुई, सीआवा, भीमाणा ये चार गांव और सीरोड़ी का तीसरा हिस्सा व पोसीतरे का वह हिस्सा, जो राज्य के ख़ालसे में था, मिलजाने से वे भी प्रसन्न होगये और भीमाणा गांव में रहने लगे. इस प्रकार अपने छोटे भाइयों † के सन्तुष्ट होजाने से महाराव उम्मेदसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई.

---

† महाराव उम्मेदसिंह के इन चारों भाइयों को जो जागीर मिली, उसमें यह शर्त है, कि जबतक उनका वंश कायम रहे तबतक वह जागीर कायम रहे. पुत्र न होने की दशा में इनको तथा इनके वंशजों को गोद लेने का अधिकार नहीं है.

वि० सं० १९२१ (ई० स० १८६४) में ईडर के महाराजा जवानसिंह आबू की यात्रा को निकले और मुकाम पोसीना से रोहेड़ा होते हुए हणाद्रे के रास्ते से आबू पहुंचे तो महाराव उम्मेदसिंह की तरफ़ से महाराजा की बहुत कुछ खातिरदारी की गई, जिससे वे प्रसन्न होकर लौटे.

ता० १ सितम्बर सन् १८६५ ई० (वि० सं० १९२२ भाद्रपद सुदि ११) को महाराव उम्मेदसिंह को सर्कार अंग्रेज़ी की तरफ़ से राज्य का पूरा इख्तियार मिला और सुपरडंटी उठ गई. जिस समय इनको राज्य का इख्तियार मिला, उस समय राज्य की दशा इनके पिता के समय से अच्छी थी, क्योंकि ११ बरस तक पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट साहब का प्रबंध रहा, जिसमें लुटेरों को सज़ा दी गई, चोरी धाड़े कम हुए, लुटेरी क़ौमें खेती पर लगाई गईं, सरदारों की ताक़त कम हुई और उनके फ़साद न होने पाये, लुटेरों का भय मिटजाने से मुसाफ़िरों का फिर आना जाना होने लगा, कई ऊजड़ गांव फिर आबाद हुए, राज्य में अमन होने से आमद भी बढ़ी, राज्यप्रबंध की किसी प्रकार दुरस्ती हुई, राज्य का सारा कर्ज़ा चुका दिया गया और ४२३६५) रुपये ख़ज़ाने में जमा हुए.

वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) भाद्रपद वदि ८ को महाराव उम्मेदसिंह की बहिन चांदकंवर बाई का विवाह जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह के साथ सिरोही में हुआ.

इलाक़े भाखर के बहुधा सब गांवों में ग्रासिये व भील लोग

अधिकता के साथ बसते हैं. ये लोग पहाड़ के नीचे के इलाक़ों से पशुओं की चोरियां किया करते और चोरों को पनाह भी दिया करते थे, इसलिये महाराव उम्मेदसिंह ने वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६७) माघ सुदि १३ को अपनी व अपने सर्दारों की फौज के साथ उनपर चढ़ाई करदी. एक महीने तक फौज ने भाखर में ठहरकर कई चोरों को पकड़ लिया और कितने ही खुशी से हाज़िर होगये. फिर वहां के सब मुखियों से चोरियां न करने, चोरों को पनाह न देने तथा खेती का हासिल हलों के हिसाब से देने का इक़रार कराने व ज़मानत लेने बाद मौक़े मौक़े पर थानों का बन्दोबस्त कर फौज वहां से लौटी.

वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में फौजदारी व दीवानी अदालतें अलग कायम कीगईं, जिनका काम पहिले रियासत के दीवान की मातहती में होता था, जिससे मुक़द्दमे जल्दी फ़ैसल नहीं होते थे. इसी तरह तहसीलदारों की तनख्वाह बढ़ाकर अच्छे पुरुष तहसीलों पर नियत किये गये. और इस काम के लिये कई आदमी बाहर से भी बुलाये गये.

ई० स० १८६६ ता० ६ जुलाई (वि० सं० १९२३ आषाढ़ वदि) को कायममुक़ाम पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट सिरोही का ख़रीता इस आशय का आया, कि "पहिले की अपेक्षा आबू पर अब अंग्रेज़ लोगों की आमदरफ्त बढ़ गई है और इसी से ग़ैर इलाक़ों के हिन्दुस्तानी लोगों की आबादी भी अधिक होगई है, इस वास्ते बड़े राव साहब (महाराव

शिवसिंह) ने जो बंदोबस्त किया था, वह काफ़ी नहीं है, अतएव पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट साहब के अधिकार नियत कर दिये जावें आदि." इस पर महाराव उम्मेदसिंह ने आबू व हणाद्रे में सन् १८६० ई० का ऐक्ट (क़ानून) नं० ४५, सन् १८६१ का ऐक्ट नं० २५, सन् १८५६ का ऐक्ट नं० ८, सफ़ाई और सड़क बनाने के क़ानून म्यूनिसिपलटी तथा सन् १८६४ का ऐक्ट नं० ६, सन् १८६२ का ऐक्ट नं० १०, सन् १८५६ का ऐक्ट नं० १४ और सन् १८६५ ई० का ऐक्ट नं० ११ जारी करने का सर्कार अंग्रेज़ी को अधिकार दिया †, जिससे वहां के साहब लोगों, गवर्नमेंट की प्रजा तथा जिस मुक़द्दमे में एक फ़रीक सरकारी प्रजा हो वैसे दीवानी व फौजदारी के मुक़द्दमे सरकारी मजिस्ट्रेट तथा एजंट गवर्नरजनरल साहब की अदालतों में होने लगे और उनमें स्टैंप से जो आमदनी हो वह आबू की सड़कों व बाज़ारों में ख़र्च होनी तजवीज़ हुई.

वि० सं० १९२४ (ई० स० १८६७) वैशाख सुदि ६ को महाराव उम्मेदसिंह की सब से छोटी बहिन फूलकंवर बाई का विवाह करौली के महाराव मदनपाल से हुआ.

इस समय तक सिरोहीराज्य में लड़कों की पढ़ाई पुराने

† इस अधिकार के साथ ये भी शर्तें हैं, कि वहां के जिस दीवानी वा फौजदारी मुक़द्दमों में दोनों फ़रीक सिरोही की प्रजा हों, ऐसे मुक़द्दमे पहिले की नांई सिरोही के अधिकारी फैसल करेंगे, धर्म और रिवाज के विरुद्ध कोई बर्ताव न होगा और हम जब चाहें तब यह अधिकार पीछा ले सकेंगे.

ढंग से होती थी और बहुधा यती या पंडित लोग अपने यहां मामूली हिसाब, कातंत्रव्याकरण की पंचसंधियां (जिनको राजपूताने की भाषा में 'सिद्धो' कहते हैं) और चाणक्यनीति आदि लड़कों को पढ़ाते और अपनी नियत फ़ीस लेलिया करते थे. सिद्धो और चाणक्यनीति को लड़के तोतों की नांई कंठ कर जाते थे, परन्तु ये पुस्तकें संस्कृत भाषा में होने से वे उनका कुछ भी मतलब नहीं समझ सकते थे और उनके उच्चारण तथा शुद्ध पठन की तरफ़ बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया जाता था, जिससे सिद्धो की तो ऐसी मिट्टी पलीत होती थी, कि यदि किसी संस्कृत के विद्वान् के आगे कोई लड़का सिद्धो का पाठ कर जाता तो उक्त विद्वान् को खेद हुए विना नहीं रहता. इस ढंग को सुधार कर नये ढंग से हिंदी, उर्दू व अंग्रेज़ी की शिक्षा लड़कों को देने की इच्छा से महाराव उम्मेदसिंह ने सिरोही में मदरसा तय्यार करवाकर अंग्रेज़ी, फ़ारसी और हिन्दी पढ़ाने के लिये उस्ताद मुक़र्रर किये और वि० सं० १९२४ (ई० स० १८६७) भाद्रपद वदि १४ के दिन कप्तान म्यूर साहब ने सिरोही के मदरसे को खोला और अपनी स्पीच (भाषण) में उसके लिये बड़ी खुशी ज़ाहिर की. उसी समय से सिरोहीराज्य में तालीम का सिलसिला चला और कुछ समय बाद पींडवाड़ा, रोहेड़ा, मंडार व कालंद्री में भी मदरसे खुले, परन्तु उनकी कुछ भी तरक्क़ी न हुई.

वि० सं० १९२४ आश्विन सुदि ११ (ता० ९ अक्टूबर सन

१८६७ ई०) को सर्कार अंग्रेज़ी व सिरोहीराज्य के बीच एक दूसरे के मुजरिमों को गिरफ्तार कर सुपुर्द करने की बाबत ८ शर्तों का अहदनामा हुआ.

भाखर के ग्रासियों की फिर शिकायत होने लगी, जिससे एजंट साहब (कप्तान म्यूर) ने भाखर का दौरा करने का इरादा कर महाराव उम्मेदसिंह को उसके लिये लिखा, जिसपर इन्होंने भी उनके साथ रहना निश्चय कर उसके लिये प्रबंध करवाया और वि० सं० १६२४ (ई० स० १८६८) के फाल्गुन में दौरा शुरू किया. उधर से एजंट साहब भी पींडवाड़े होते हुए गढ़ के मुक़ाम आमिले, जहां से भाखर में जाना हुआ. इस दौरे में सिरोहीराज्य के जो जो ग्रासिये लोग दूसरी रियासतों में जाकर आबाद हुए थे और वहां पर चोरियां करते थे, उनको समझा कर पीछा बुलवाया और जिन्होंने आना क़बूल न किया वे फौज की मार्फ़त गिरफ्तार कर लाये गये तथा वहां के थानों का पुख़्ता बंदोबस्त करने बाद चैत्र वदि में वहां से लौटना हुआ.

इसी दौरे के समय में महाराव तथा म्यूर साहब का मुक़ाम देलदर गांव में हुआ, जहां के भाट लोगों की शिकायत सुनने में आई जिसपर दरयाफ्त किया गया तो मालूम हुआ, कि वे लोग दूसरे इलाके में जाकर भेष बदल लेते हैं और उठाईगीरी का पेशा कर बहुतसा माल उड़ा लाते हैं. इसपर अचानक उनको पकड़कर उनके मकानों की तलाशी लीगई तो कई तरह के सोने व चांदी के ज़ेवर तथा ब

हुतसा दूसरा माल निकल आया. उन लोगों से दर्याफ्त करने पर यह भी मालूम हुआ, कि वहां का सुनार किशना उनके लाये हुए ज़ेवरों को गला दिया करता था और महाजन खुसाल उनके बेचने में मदद देता था तथा वहां का जागीरदार देवड़ा रतनसिंह भी उनके लाये हुए माल में से कुछ हिस्सा लिया करता था, जिससे ये तीनों भी गिरफ्तार किये गये और उन भाटों के साथ सिरोही के जलखाने में भेजे गये. देलदर की नांई ओड, सांतपुर और केवरली गांवों में भी इन लोगों के कुछ घर थे, जिनकी भी तलाशी लीगई और जो भाट बाहर चले गये थे, उनकी गिरफ्तारी का भी बन्दोबस्त किया गया. फिर वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) वैशाख में आयन्दा के लिये नेक चलन चलने की ज़मानत व जुर्माना लेकर वे छोड़ दिये गये. उनके यहां से जो माल निकला था, वह नीलाम करने पर ३१०१) रुपये वसूल हुए और २२००) रुपये उनपर जुर्माना किया गया. ये ५३०१) रुपये वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) के बड़े क़हत के समय ग़रीबों को सहारा मिले, इस विचार से तालाबों के तय्यार कराने में लगा दिये गये.

सिरोही में अबतक पुराने ढंग की बेक़वायदी फ़ौज थी, इसलिये महाराव उम्मेदसिंह ने वि० सं० १९२४ (ई० स० १८६७) में एक पूरी कम्पनी क़वायदी फौज की तय्यार कराई. इसी वर्ष जिन जिन गांवों की सरहद के तनाज़े थे, उनमें से कई एक के फ़ैसले करवा दिये और सिरोही में लोगों के आराम के लिये अस्पताल

(शफ़ाख़ाना) खोला गया.

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) के ज्येष्ठ महीने में भटाणे का ठाकुर नाथूसिंह फिर बाग़ी हुआ, जिसका कारण यह हुआ, कि वीजुआ नाम का एक खेड़ा किसी समय भटाणावालों ने चारणों को दिया था. वह ऊजड़ होगया और चारणों के औलाद न होने से राज्य के ख़ालसे में शुमार किया जाकर मंडार के ठाकुर को कितनी एक शर्तों के साथ आबाद करने को दिया गया, जिससे नाथूसिंह ने उसके लिये दावा किया, परन्तु वह खेड़ा उसको न मिला. इस-पर वह बाग़ी होगया और वारदात करने लगा. उसने वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) के ज्येष्ठ महीने में मंडार के महाजन अचला की बरात सिरोही जा रही थी, उसको सनवाड़ा व मेड़ा गांवों के बीच लूट लिया, जिसमें पांच शस्त्रबंद अगुवे (जिनको रियासत सिरोही में वोलाऊ कहते हैं) मारे गये, १० आदमी घायल हुए और ८०००) रुपये का माल छीना गया तथा बरात के १५ मनुष्यों को वह पकड़ कर अपने साथ लेगया. इसकी ख़बर पहुंचते ही राज्य की तरफ़ से उसको पकड़ने का प्रबंध किया गया, परन्तु उसके साथ ३०० से अधिक दिलचले भील तथा मीने होने के कारण उसकी गिरफ्तारी का काम कठिन होगया और वह नित नई वारदात करता गया. उसने आम रास्तों पर अनेक वारदातें कीं और गुंडवाड़ा, आवाड़ा, वीकणवास, मावल, आंवलाळी आदि गांवों को लूटा. शायद

ही कोई दिन ऐसा निकलता हो, कि उसकी वारदात की ख़बर न मिले. सर्कार अंग्रेज़ी ने भी उसकी गिरफ्तारी के लिये सब तरह से मदद दी और एरनपुर की फौज भी भेजी, परन्तु जितनी तद्बीरें उसको पकड़ने की कीगई वे सब बेकार हुई, जिससे एरनपुर की फौज को तो सर्कार ने पीछी बुलाली और नाथूसिंह से लड़ने का काम राज्य पर ही छोड़ा गया. सर्कारी फौज के लौट जाने का फल यह हुआ, कि लुटेरों का ज़ोर बढ़ गया. मारवाड़ के भीलों ने भी, जो सिरोही की पश्चिमी सीमापर बसते थे, नाथूसिंह के नाम से लूट मचादी और अहमदाबाद की सड़क पर मुसाफ़िरों तथा व्यौपारियों का चलना मुश्किल होगया. ऐसी हालत को मिटाने के लिये सर्कार ने फिर एरनपुर की फौज से राज्य को मदद देना आवश्यक समझा और इसीसे रियासत का पोलिटिकल ताल्लुक जो पहिले राजपूताने के एजंट गवर्नरजनरल साहब के एक असिस्टेंट के सुपुर्द था, फिर एरनपुर की फौज के कमांडिंग अफ़सर मेजर कार्नेली के सुपुर्द किया गया, जिन्होंने इख्तियार पाते ही भीलों को दबाकर लूट बंद करवाई. नाथूसिंह वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में मारवाड़ में बुखार की बीमारी से मरगया, परन्तु उस का बेटा भारथसिंह बग़ावत करता ही रहा. इन बाग़ियों को पनाह देने में कितने ही सर्दार आदि को सज़ा हुई, कई हज़ार रुपये सिरोहीराज्य को दूसरे इलाक़ों के लोगों के नुक़सान के बदले में देने पड़े और बहुत ख़र्च जगह जगह प्रबंध के लिये थाने मुक़र्रर करने में बढ़ाना

पड़ा, परन्तु भारतसिंह गिरफ्तार न हुआ. अंत में मारवाड़ के कितने एक सरदार बीच में पड़े और वे उसको समझा कर कार्नेली साहब के पास लेगये, जो उसको साथ लेकर सिरोही आये. तब महाराव उम्मेदसिंह ने उसका कुसूर मुआफ़ किया और १५००) रुपये नज़राने के लेकर वि० सं० १६२६ (ई० स० १८७२) में उसकी जागीर फिर उसको बख्श दी, जिससे प्रजा की चिंता मिट गई.

वि० सं० १६२५ (ई० स० १८६८) में बड़ा क़हत पड़ा तो महाराव ने, जो बड़े ही दयालु थे, ग़रीबों के बचाव के लिये बहुतसे रुपये ख़र्च कर तालाब वग़ैरह के काम शुरू करवाये, जिनसे कई लोगों की पर्वरिश होती रही. इसी तरह जगह जगह ग़रीबों को अनाज मुफ्त बांटने का भी बंदोबस्त किया, परन्तु मारवाड़ की तरफ़ के हज़ारों लोग अपने पशुओं के साथ सिरोहीराज्य में चले आये, जिससे सबका पालन करना कठिन होगया. इस क़हत में हज़ारों गाय, भैंस, बैल वग़ैरह जानवर मरगये और मनुष्य भी बहुत मरे. उस समय तक इस राज्य में होकर कोई रेलवे लाइन निकली न थी, जिससे बाहर से अन्न आने का सुभीता न था. इसीसे अन्न का भाव यहांतक बढ़गया, कि ग़रीब लोगों को उसका मिलना कठिन होगया, जिससे कितने ही ग़रीबों ने तो खेजड़ी आदि वृक्षों की छाल खाकर कुछ समय काटा और राज्य की तरफ़ से ग़रीबों के पालन में पूरी मदद रही, जिससे बहुत से लोग बच गये.

वि० सं० १६२५ (ई० स० १८६६) फाल्गुन सुदि १० को सायंकाल के समय सिरोही के जेलखाने के क़ैदियों में से ३६ बदमाशों ने बेड़ियां तोड़डालीं और पहरे पर जो थोड़े से सिपाही थे, उनको मार पीटकर वे भाग निकले, जिसकी ख़बर पाते ही दूसरे सिपाहियों व राजपूतों ने उनका पीछा कर १६ को पकड़ लिया, ४ लड़कर मारे गये और बाक़ी पहाड़पर चढ़कर कहीं निकल गये. जिनकी ग़फ़लत से क़ैदी भागे उनको सज़ा हुई और जिन्होंने उनको गिरफ़्तार किया, उनको इनाम दिया गया. उसी समय से जेल के बंदोबस्त का पूरा इंतिज़ाम हुआ.

वि॰ सं॰ १६२६ (ई॰ स॰ १८६६) में महाराव ने आबू की तलहटी में हणाद्रे के पास अपने नाम से उम्मेदगंज नाम का क़सबा आबाद करने की इच्छा से १।) रुपये में एकेक मकान की ज़मीन का पट्टा कर देने और ब्योपारियों से माल के महसूल में कमी करने का हुक्म दिया, जिससे क़सबा आबाद होने लगा, परन्तु वहां का जल अच्छा न होने के कारण लोगों की आबादी अधिक न बढ़सकी, जिससे वह क़सबा नींबज के ठाकुर को देदिया गया.

वि० सं० १६२७ (ई० स० १८७०) आषाढ़ सुदि ६ सोमवार को महाराव उम्मेदसिंह की राजकुमारी जसकंवरबाई का विवाह किशनगढ़ के महाराजा पृथ्वीसिंह के बड़े महाराजकुमार शार्दूलसिंह के साथ हुआ.

गांव जोगापुरा और वराड़ा दोनों वि० सं० १६२१ (ई० स०

१८६४) में ख़ालसा किये गये थे, जिनमें से गांव जोगापुरा वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में महाराव उम्मेदसिंह ने अपने सब से छोटे भाई राजसाहब तेजसिंह को बख़्शा, जिसपर रांवाड़े का ठाकुर शार्दूलसिंह नाराज़ हुआ और उसने चाहा, कि मेरे बाप की जागीर का वह गांव उनको न मिलना चाहिये. इस नाराज़गी के कारण उसने अपने यहां के मीनों से मिलकर वारदातें करना शुरू किया, जिसपर उसको सिरोही हाज़िर होने का हुक्म दिया गया तो उसने अपने प्रधान देवड़ा तेजसिंह को सिरोही भेजा. उसको वहां पर समझाया गया, कि एसी वारदातों का होना ठीक नहीं है, जिसपर उसने यही उत्तर दिया कि जोगापुरा और वराड़ा गांव ख़ालसे किये गये हैं, वे रांवाड़े को मिलजावें नहीं तो मुझे सीख होजावे. इसपर उसको सीख दी गई और उसकी इत्तिला कर्नल कार्नेली साहब को वकील सिरोही की मारफ़त दी गई. उक्त साहब ने ठाकुर को एरनपुर बुलाकर समझाया और कहा कि हम खुद सिरोही जाकर तुम्हारे दावेकी तहक़ीक़ात कर उचित फ़ैसला करा देंगे तुम फ़साद मत करना, परन्तु उसने तो अपने ठिकाने में जाते ही बाग़ी होने की इच्छा से अपना सामान बाहर भेजना शुरू कर दिया, जिसकी ख़बर मिलने पर कार्नेली साहब ने उसके नाम वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) कार्तिक वदि ९ को यह हुक्म भेजा कि ' इस हुक्म के पहुंचते ही जो मीने भील वगै़रह इकट्ठे किये गये हैं, उनको

निकाल दो और तुम सिरोही चले आओ, हम भी सिरोही आते हैं, अगर इस हुक्म की तामील न होगी तो तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा. इसपर वह सिरोही हाज़िर होगया और कार्नेली साहब ने भी इस फ़साद को मिटाने के लिये महाराव को यह सलाह दी कि गांव जोगापुरा राजसाहब तेजसिंह से पीछा ले लिया जावे, जिसपर महाराव ने भी वैसा ही किया. वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) कार्तिक सुदि १५ को ठाकुर रांवाड़े के दावे का फ़ैसला करना मुख्य मुख्य सर्दारों के सुपुर्द किया गया. जिन्होंने यह तय किया कि ठाकुर रांवाड़े का हक़ जोगापुरे में, जहां से वह रांवाड़े गोद गया है, नहीं है. ठाकुर शार्दूलसिंह ने भी इसे मंजूर किया, परन्तु उसके साथ के जिन जिन मीनों व भीलों ने वारदातें की थीं, उनको गिरफ्तार करा देने का जो वायदा उसने कर्नल कार्नेली साहब से किया था, उसकी वह तामील करना नहीं चाहता था. इसके लिये उसको कई बार लिखा गया, परन्तु उसने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया. तब कार्नेली साहब वि० सं० १९२९ (ई० स० १८७२) वैशाख वदि १ को रांवाड़े पर फौज लेगये और ठाकुर को पकड़कर एरनपुर पहुंचा दिया. उसका प्रधान देवड़ा तेजसिंह और ३० लुटेरे भील, मीने आदि भी पकड़े जाकर सिरोही के जेलखाने में पहुंचाये गये. ठाकुर शार्दूलसिंह को १२ वर्ष की क़ैद की सज़ा हुई और वह अजमेर के जेलखाने में रक्खा गया. तीन वर्ष जेल में रहने बाद वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) में उसको क़ैद से छुड़ाने का उद्योग होने

लगा, तब उक्त साहब ने कालंद्री, पाडीव, सिआणा (मारवाड़ में) और डोडिआळी (मारवाड़ में) के जागीरदारों की ज़मानत लेकर उसको क़ैद से छुड़वाया और महाराव उम्मेदसिंह ने उसकी जागीर उसको पीछी देदी.

वि० सं० १९३२ आश्विन वदि १ (ता० १६ सितंबर सन् १८७५ ई०) को महाराव उम्मेदसिंह का स्वर्गवास हुआ. ये महाराव बड़े धर्मनिष्ठ, सदाचारी, पूर्णसतोगुणी तथा पुराने ख़यालात के दयालु राजा थे, परन्तु मीने, भील आदि लुटेरी क़ौमों से भरे हुए सिरोही जैसे विकट पहाड़ी देश पर राज्य करने के लिये राजा में जो ताक़त होनी चाहिये, वह इनमें न थी, जिससे इनके समय में राज्य की उन्नति न हुई, किन्तु आमदनी घट गई और राज्य पर फिर कर्ज़ा होगया. इनके समय में भी समय समय पर कई सर्दारों ने बग़ावत के लिये सिर उठाया, परन्तु वे सब दबादिये गये. इन्होंने कई तालाबों की मरम्मत करवाई और सैकड़ों नये कुएं खुदवाये थे.

महाराव उम्मेदसिंह के पीछे इनके महाराजकुमार महाराव केसरीसिंहजी साहब सिरोही की गद्दीपर बिराजे.

प्रकरण आठवां.

श्रीमान् महाराजाधिराज महाराव सर केसरीसिंहजी बहादुर, के. सी. एस. आई., जी. सी. आई. ई.

वर्तमान महाराव सर केसरीसिंहजी साहब का जन्म विक्रम संवत् १९१४ श्रावण वदि १४ (ता० २० जुलाई सन् १८५७ ई०) सोमवार के दिन ३३ घड़ी २६ पल पर इनके ननिहाल पोसीने में हुआ था. बाल्यावस्था से ही इनकी पढ़ाई की तरफ़ ध्यान दिया गया था. पहिले हिन्दी की पढ़ाई शुरू कराई गई, जिसके लिये सिरोही का यती लखमीचन्द मुक़र्रर हुआ और हिसाब भी उसीसे पढ़ते रहे. पढ़ने की रुचि होने तथा अपनी उत्तम ग्रहणशक्ति व होशियारी के कारण इन्होंने थोड़े ही दिनों में हिन्दी की योग्यता प्राप्त करली. फिर संस्कृत की पढ़ाई होने लगी, जिसके लिये जोधपुर से श्रीमाली ब्राह्मण पंडित दौलतराम बुलाया गया. उसने व्याकरण में सारस्वतचन्द्रिका, अमरकोष तथा रघुवंश आदि काव्य पढ़ाये, फिर उसका सिरोही में ही देहान्त होजाने से काशी से पंडित गणेशदत्त कान्यकुब्ज बुलाया गया,

श्रीमान् महाराजाधिराज महाराव सर केसरीसिंह जी बहादुर, के० सी० एस० आई०,
जी० सी० आई० ई०, सिरोही।

जो न्याय और व्याकरण का अच्छा ज्ञाता था. उससे काव्य, नीति आदि के ग्रन्थ पढ़ते रहे, जिससे इनको संस्कृत का कुछ कुछ ज्ञान होगया. फिर धर्म तथा शास्त्रसंबंधी ग्रन्थ देखने का अभ्यास रहने के कारण संस्कृत ज्ञान में दिन दिन उन्नति होती रही. संस्कृत पढ़ने बाद कप्तान जे. डब्ल्यू. म्योर साहब, पोलिटिकल एजंट सिरोही के आग्रह से अंग्रज़ी का पढ़ना शुरू किया और जानकीप्रसाद नामक कश्मीरी ब्राह्मण इस काम पर नियत हुआ. उसके यहां से चले जाने पर गांव रोहेड़ का रहने वाला ब्राह्मण हरीशंकर ओझा इनको अंग्रज़ी पढ़ाता रहा, परन्तु उसमें अंग्रेज़ी की योग्यता बहुत कम होने के कारण वह विशेष पढ़ा न सका, जिससे जोधपुर राज्य के बामणेरा गांव का रहनेवाला ब्राह्मण शंकर तिवाड़ी, जो बंबई से अंग्रेज़ी पढ़कर आया था, इनको अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिये नियत हुआ, जो अपनी सरल प्रकृति, योग्यता तथा पढ़ाने की उत्तम शैली के कारण थोड़े ही दिनों में इनका कृपापात्र बन गया और इनको भी अंग्रेज़ी पढ़ने का शौक़ लग गया, जिससे थोड़े ही वर्षों में अंग्रेज़ी बोलने तथा सरल अंग्रेज़ी पुस्तकों को समझ लेने की शक्ति होगई. फिर भी इन्होंने अपनी अंग्रेज़ी की पढ़ाई बराबर जारी रक्खी, यहांतक कि अपनी गद्दीनशीनी के होने बाद राज्य का काम करने पर भी ये कुछ समय इस पढ़ाई में लगाते ही रहे और अपनी गुणग्राहकता के कारण अपने शिक्षक शंकर तिवाड़ी की बहुत कुछ क़दर की तथा अपना प्राईवेट सेक्रेटरी उसी को बनाया,

जो अपने देहान्त तक उस काम पर बना रहा. उसके देहान्त के बाद भी इन्होंने उसके लड़कों की पर्वरिश की और अब उनमें से एक राज्य में नौकर भी है. अंग्रेज़ी की पढ़ाई के साथ साथ ये राज्य का काम भी देखते रहे, जिससे उसका भी अनुभव होता गया.

इनका शरीर बचपन में ही मोटा होता गया, जिससे इन्होंने क़सरत करने व घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी को जाने का मुहावरा डाला, जिसका फल यह हुआ, कि इनका बदन मोटा होने पर भी गठीला बन गया और श्रम करने पर जल्दी थकावट नहीं होती, जो कि बहुधा मोटे बदनवालों को हुआ करती है.

इन्होंने अपनी पढ़ाई के साथ साथ बंदूक़, तलवार आदि शस्त्र चलाने का भी अभ्यास किया और शिकार का शौक़ लगजाने के कारण निशाना लगाने में निपुण होगये.

इनकी पढ़ाई का असर अच्छा हुआ, क्योंकि फ़ज़ूल बातों से इनका चित्त हटकर अपने राज्य तथा प्रजाकी उन्नति कर कीर्तिसंपादन करने के विचार इनके चित्त पर छोटी अवस्था से ही जम गये थे.

वि० सं० १९३२ आश्विन वदि १ (ता० १६ सितम्बर सन् १८७५ ई०) को इनकी गद्दीनशीनी हुई, जिसके दूसरे ही दिन से राज्यभर में ऐसी भारी वरखा लगातार पांच दिन तक हुई, जैसी की पिछले ७०—८० वरसों में कभी नहीं हुई थी. इस वरखा के कारण लोगों के चित्त प्रफुल्लित होगये और उन्होंने इनकी गद्दीनशीनी को बहुत ही

अच्छा शकुन माना.

इनके राज्याभिषेक अर्थात् गद्दीनशीनी का उत्सव ज्योतिषियों के बतलाये हुए मुहूर्त के अनुसार मार्गशीर्ष वदि १२ (ता० २४ नवंबर सन् १८७५ ई०) को बड़ी धूमधाम के साथ हुआ, जिसमें राज्य के सब मुख्य सर्दार, जो 'मरायत' कहलाते हैं, अहलकार तथा बाहरी कई प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित हुए. राज्याभिषेक होने बाद इनको राज्य का पूरा अधिकार भी सर्कार हिन्द की तरफ़ से शीघ्र मिल गया.

इनकी गद्दीनशीनी के समय राज्य की हालत इस समय की सी न थी. उसमें और वर्तमान हालत में रातदिन का सा अन्तर है. उस समय राज्य के ख़ज़ाने में एक भी रुपया न था इतना ही नहीं, किन्तु उलटा राज्य पर क़रीब ८६०००) रुपये का क़र्ज़ा था, कई सर्दार नाराज़ होने के कारण फ़साद करने को तय्यार थे और राज्य की कुल आमद क़रीब १०५०००) रुपये के थी.

कर्नल डवल्यु कार्नेली साहब, जो सिरोही के पोलिटिकल एजंट थे, सिरोही सम्बन्धी अपनी 'ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट' में, जो ता० ६ मई सन् १८७६ ई० (वि० सं० १९३३) को लिखी गई थी, सिरोही की उस समय की हालत के विषय में लिखते हैं, कि "सिरोही का राज्य, जिसपर नये राजा इन्हीं दिनों में गद्दीनशीन हुए हैं, सर्वथा गुलाब का बिस्तर नहीं है, क्योंकि जिन मुसीबतों में यह राज्य इनके पिता के समय में

धीरे धीरे फंसा है, उनमें से उसको निकालने में इनको अपनी मिहनत व योग्यता को काममें लाना होगा. सन् १८५५ ई० से ही बड़े राव (शिवसिंह) अपने सर्दारों तथा राज्य की आमद ख़र्च का ठीक प्रबन्ध न करसके और राज्य पर कर्ज़ा हो जानेसे उनकी खास दर्ख्वास्त पर ही गवर्नमेंट ने राज्य का प्रन्वध अपने हाथ में लिया था. १० वर्ष बाद ई० स० १८६५ (वि० सं० १९२२) के सितम्बर महीने में सर्कारी बंदोबस्त उठाकर राज्यप्रबंध फिर राव (उम्मेदसिंह) के सुपुर्द किया गया. उस समय सारा कर्ज़ा चुकादिया गया था, ख़ज़ाने में ४२०००) रुपये बचत में थे और राज्यभर में अमन था, परन्तु उस समय के बाद राज्य फिर कर्ज़दार होगया और उन (महाराव उम्मेदसिंह) के स्वर्गवास के समय ख़ज़ाने में एक भी रुपया न था".

इसीसे उस समय की राज्य की हालत का अनुमान भलीभांति होसकता है. इन्होंने गद्दीनशीन होते ही अपने राज्य की दशा सुधारने, आमद बढ़ाने, राज्य का कर्ज़ा चुकाने, सर्दारों के झगड़े मिटाने तथा देश की आबादी बढ़ाने का विचार किया और कर्नल कार्नेली साहब की सलाह से राज्य का ख़र्चा घटाकर बचत का प्रबन्ध किया, तहसीलदारों को खेती की तरक्की के लिये जगह जगह कुएं खुदवाने व आमद बढ़ाने की कोशिश करने की हिदायत की और एक सर्क्युलर जारीकर बाहर के इलाक़ों से आकर सिरोहीराज्य में बसनेवाले किसानों को कम हासिल पर ज़मीन जोतने को देने तथा बाहर से

आनेवाले व्यौपारियों के साथ रिआयत करने का हुक्म दिया, जिससे राज्यकी आबादी और आमदनी दोनों बढ़ने लगी. इस कामके लिये इन्होंने मुन्शी निआमतअलीखां को उदयपुर से बुलाकर दीवान बनाया और कर्नल कार्नेली साहब की मदद से सर्दारों के झगड़े भी मिटा दिये गये.

इस प्रबंध का फल यह हुआ, कि एक वर्ष के अन्दर ही राज्य की आमद बढ़ गई और क़रीब ५४०००) रुपये कर्ज़ में दे दिये गये, और ५०००) रु० मेयोकालेज के फंड में भी दिये गये.

वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७६) ज्येष्ठ वदि ३ को इनका विवाह दांता (महीकांठा-गुजरात) के परमार राणा ज़ालिमसिंह की राजकुमारी के साथ बड़ी धूमधाम से हुआ. बरात में राजसाहब जेतसिंह, जामतसिंह तथा नींबज, पाडीव, कालंद्री, जावाल, मोटागाम आदि के सर्दार, राज्य के मुख्य २ अहलकार तथा कई बाहरी मिहमान थे.

ता० १ जनवरी सन् १८७७ ई० (माघ वदि २ संवत् १९३३) को हिन्दुस्तान के गवर्नरजनरल लॉर्ड लीटन साहब ने देहली में बड़ा दर्बार किया, जिसमें राजराजेश्वरी श्रीमती क्वीन विक्टोरिआ के 'क़ैसरे हिन्द' (Empress of India) की पदवी धारण करने की खुशी ज़ाहिर की गई थी. ये महाराबजी साहब उस दर्बार में शामिल नहीं होसके, इसलिये उसकी खुशी में एक जलसा सिरोही में किया गया, जिसमें कर्नल कार्नेली साहब भी शरीक हुए.

शासनिक ज़मीन अर्थात् ब्राह्मण, चारण, साधु, देवमंदिर आदि

को धर्मार्थ दिये हुए गांव, रहट, खेत आदि को लोग कभी कभी बेचदिया करते थे, जिससे वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७७) में एक सर्क्युलर जारीकर शासनिक ज़मीन को बेचने की मनाई करदी गई.

इसी साल इन्होंने अपनी पितृभक्ति के कारण अपने पिता की अस्थि को गंगा में पधराने तथा उनका श्राद्ध करने के विचार से माघ सुदि ३ के दिन सिरोही से प्रस्थान किया और प्रयाग, काशी आदि तीर्थों की यात्रा करने के पश्चात् कलकत्ते की सैर की, जहांसे चैत्र सुदि ४ वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) को सिरोही लौटना हुआ.

सिरोही में कोई बाग़ न था, इसलिये इन्होंने अपने नाम से केसरविलास नाम के बाग़ की नींव डाली, जो इस समय सिरोही की शोभा को बढ़ा रहा है और जिसके अंदर के बंगले में गर्मी के दिनों में इनका निवास भी हुआ करता है. इस प्रकार इस वर्ष में इन महारावजी साहब की शादी, यात्रा आदि में बहुतसा खर्च होने पर भी राज्य के क़र्ज़ के क़रीब १७०००) रुपये और चुका दिये गये.

इनको गद्दीनशीन हुए पूरे दो वर्ष भी नहीं हुए, इतने में पोलिटिकल ऑफ़िसर इनकी योग्यता, बुद्धिमानी तथा उत्तम बर्ताव की तारीफ़ करने लगे. कर्नल ब्लेर साहब पोलिटिकल एजंट, जिनको इन महारावजी साहब से मिलने तथा इनका इंतिज़ाम देखने का मौक़ा मिला था, अपनी सालाना रिपोर्ट में लिखते हैं, कि—"राव केशरीसिंहजी अपने पिता के पीछे सिरोही की गद्दीपर माह नवम्बर सन् १८७५ ई० में

बैठे और अभी उनको राज्य करते एक वर्ष से कुछ अधिक समय हुआ है, इतने में मुझको उनके गुण तथा राज्य करने की योग्यता दोनों जानने का पूरा मौक़ा मिला है और इन दोनों के विषय में मुझको बहुत ही अच्छा ख़याल पैदा हुआ है. वे बुद्धिमान् और विचारवान् हैं, अच्छी तालीम पाये हुए, दुराग्रह से मुक्त और बड़े दिलके हैं. वे अपने पास रहनेवाले सबके साथ विवेक से वर्ताव करते हैं और उनके तथा सर्दारों के बीच स्नेहभाव तथा मेलमिलाप है." इससे स्पष्ट है कि राज्य के प्रारंभ से ही इनकी योग्यता प्रकट होने लग गई थी.

वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) के आषाढ़ महीने में महारावजी साहब की बहिन जसकंवरबाई का किशनगढ़ से सिरोही पधारना हुआ. इसी वर्ष में इन्होंने मेवाड़ की सफ़र कर चारभुजा, रूपजी, एकलिंगजी, ऋषभनाथजी आदि मेवाड़ के प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा तथा उदयपुर की सैर की और वहां से डूंगरपुर होते हुए बड़ोदे की सैर की.

वेलांग्री के ठाकुर के साले ओका तथा उसके चाकर पन्ना आदि ने पुरानी दुश्मनी के कारण धानता के ठाकुर के चचा काना को मार-डाला, जिसकी तहक़ीक़ात होकर कुसूरवारों को सज़ा दी गई इतना ही नहीं, किन्तु आयंदा ऐसी घटना राज्यमें न हो, इसका प्रबंध भी किया गया.

महारावजी साहब का देहली दर्बार में पधारना नहीं हुआ, जिस-से उस दर्बार में सिरोही राज्य को जो झंडा (Royal Standard) बख़्शा गया उसको लेकर राजपूताने के एजंट गवर्नरजनरल सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड

साहब सिरोही आये और ता० २६ एप्रिल सन् १८७८ ई० (वि० सं० १९३५ वैशाख वदि १२) के दिन उसके लिये एक दर्बार हुआ, जिसमें सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड साहब, कर्नल ब्लैर (पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट सिरोही), कप्तान रेनिक तथा राज्य के मुख्य मुख्य सर्दार, अहलकार आदि उपस्थित हुए. इस दर्बार में वह झंडा सिरोहीराज्य को दिया गया †.

राज्य पर कर्ज़ा होने के कारण महारावजी साहब ने अबतक आबू पर अपना कोई बंगला नहीं बनवाया था और राज्य के अहलकार लोगों का जब आबू पर जाना होता तब वे देलवाड़ा के मंदिरों या वहां की धर्मशाला में ठहरते, जिससे कभी कभी यात्रियों के आराम में बाधा पड़ती थी, जिसके मिटाने के लिये इन्होंने वि० सं० १९३५ (ई० स० १८७८) में आबूपर एक बंगला ख़रीद लिया और अहलकारों को देलवाड़ा के मंदिरों या धर्मशाला में ठहरने की मनाई कर दी गई.

सिरोही के पास पहाड़ों की अधिकता होने के कारण वहांपर पहिले गाड़ियां चल नहीं सकती थीं, परन्तु इनके समय में मार्ग कुछ ठीक होजाने से गाड़ियां चलने लगीं, जिससे एक नया बग्गीख़ाना बनवाया गया. इसी साल इन्होंने उज्जैन की यात्रा तथा बम्बई की सैर की और मुन्शी निआमतअलीखां की जगह सिरोही के रहनेवाले महाजन साह ख़ूबचन्द को दीवान बनाया. इस वर्ष के अन्त में राज्य पर केवल १२०००) रुपये के क़रीब कर्ज़ा रह गया.

---

† यह झंडा रेशम का बना हुआ है, जिसके बीच सिरोही का राज्यचिन्ह बना है.

हिन्दुस्तान में नमक का बन्दोबस्त सर्कार हिन्द ने किया, जिस पर ता० १४ एप्रिल सन् १८७९ (वि० सं० १९३६ वैशाख वदि ८) को महारावजी साहब ने सर्कार अंग्रेज़ी के साथ नमक के विषय में इस आशय का अहदनामा किया, कि " महारावजी अपने राज्य में नमक का बनना बिलकुल बन्द कर देंगे, जिस नमक पर सर्कार अंग्रेज़ी का महसूल न चुका हो, ऐसा कोई भी नमक सिरोहीराज्य में न आने देंगे और न यहां से निकास होने देंगे और जिस नमक पर सर्कार अंग्रेज़ी का महसूल लग गया हो, उस पर कोई महसूल न लगावेंगे. " इसकी एवज़ में सर्कार अंग्रेज़ी ने सालाना १८००) रुपये नक़द और सिरोही की प्रजाके लिये १३००० बंगाली मन नमक आधे महसूल पर देना मंजूर फ़रमाया. फिर ई० स० १८८२ (वि० सं० १९३९) में १८००० मन नमक सालाना मिलना नियत हुआ और ता० २३ फरवरी सन् १८८४ ई० (वि० सं० १९४०) को उस १८००० मन नमक के एवज़ में, जो आधे महसूल पर मिलता था, ९०००) रुपये कल्दार सालाना मिलना तजवीज़ हुआ. तब से नमक के ताल्लुक के १०८००) रुपये कल्दार सर्कार अंग्रेज़ी की तरफ़ से सिरोहीराज्य को सालाना मिलते हैं.

वि० सं० १९३६ (ई० स० १८७९) में वजावत खानदान के देवड़ों ने बड़ा फ़साद किया. ये वजावत उसी देवड़ा वीजा (वजा) के वंशज हैं, जिसने महाराव सुरतान के समय में बड़ा उपद्रव मचाया था और जिसके

कारण सिरोहीराज्य पर दो बार शाही फौज की चढ़ाई हुई तथा मुल्क की बहुत कुछ बर्बादी हुई थी. वजावतों के फसाद का कारण यह हुआ, कि महाराव उम्मेदसिंह ने अपने सबसे छोटे और सहोदर भाई राजसाहब तेजसिंह को वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में मणादर की जागीर दी थी. वह ठिकाना पहिले एक वजावत ठाकुर का था, जिसके निःसंतान मरने पर खालसा होगया, परन्तु उक्त ठाकुर की माता की अर्जी आने पर राजसाहब तेजसिंह वहां गोद भेजे गये, तोभी उनके साथ यह शर्त हुई, कि गोद जाने पर भी उनके साथ नांदिआ, अजारी वगैरह के मुवाफ़िक ही वर्ताव रहेगा. झाड़ोली के वजावत उस ठिकाने पर अपना हक़ होने का दावा करते रहे, परन्तु उनका दावा खारिज होगया, जिससे वे नाराज़ थे. इसीसे उन्होंने अपना गिरोह जमाकर श्रावण वदि ९ के दिन अचानक मणादर पर हमला कर राजसाहब तेजसिंह का बहुतसा माल असबाब लूट लिया और उनको वहां से निकाल दिया, जिसपर वे सिरोही चले आये तो इन महारावजी साहब ने वजावतों को सज़ा देने के लिये झाड़ोली पर फौज भेजदी. उधर वजावतों ने भी मोरचाबंदी कर लड़ने की तय्यारी कर रक्खी. राज्य की फौज के वहां पहुंचते ही लड़ाई शुरू होगई, परन्तु कुछ घंटों बाद वजावतों ने पीछे पैर दिये. उनकी तरफ़ के थोड़े से आदमी मारे गये, कुछ घायल हुए, कितने एक पकड़े गये और बाकी भाग निकले. इस फौज के मुसाहिब राजसाहब जामतसिंह थे. वजावतों पर की इस चढ़ाई के होने तथा उनको

सज़ा देने का फल बहुत अच्छा हुआ, क्योंकि दूसरे सर्दारों को भी ऐसी बेहूदा कार्रवाई का नतीजा मालूम हो गया. साहब एजंट गवर्नर-जनरल राजपूताना ने भी राज्य में सुलह कायम रखनेवाली इस कार्रवाई के लिये महारावजी साहब को धन्यवाद दिया.

रांवाड़े का ठाकुर देवड़ा शार्दूलसिंह चोरी धाड़े किया करता था, जिसपर ई० स० १८७२ (वि० सं० १९२९) में वह गिरफ्तार किया गया और उसका दोष साबित होने पर उसको १२ बरस की जेल की सज़ा हुई और अजमेर के जेल में भेजा गया, परन्तु उसकी युवावस्था होने तथा आयंदा नेकचलन रहने की ज़मानत देने पर ३ बरस बाद महाराव उम्मेदसिंह ने उसको क़ैद से छुड़ा दिया था. (देखो ऊपर पृ० ३३४–३५). चार बरस तक तो वह चुपचाप रहा, जिसके बाद उसने फिर पहिले का सा ढंग इख्तियार कर केराल गांव पर डाका डाला और वहां के जागीरदार जोरा को, जो पहिले रांवाड़े का चाकर था, मारकर बाग़ी होगया और तीन बरस तक वह इधर उधर भागता तथा डाके डालता रहा. उसके साथ मीनों का बड़ा गिरोह था, जो जगह जगह लूट मार किया करता था. अन्त में सन् १८८२ ई० (वि० सं० १९३९) के जुलाई महीने में वह पकड़ा गया और उसपर खून व डकैती का गुनाह साबित होनेपर उसको मौत की सज़ा का हुक्म हुआ, परन्तु राज्य का एक सर्दार होने के कारण महाराव केसरीसिंहजी ने उसको फांसीपर लटकाना उचित नहीं समझा, जिससे वि० सं० १९३९ (ई० स०

१८८२) श्रावण सुदि १४ को वह तथा उसका एक रिश्तेदार पाडूजी दोनों गोली लगवाकर मरवाडाले गये और उसकी जागीर ज़ब्त की गई. फिर महाराव साहब ने उसकी माता, ठकुरानी तथा उसके पुत्र की पर्वरिश का बंदोबस्त करने की आज्ञा दी. कुछ समय बाद उसका पुत्र अलवर गया, जहांसे बीमार होकर जोधपुर गया और वहीं मरगया.

वि० सं० १९३७ (ई० स० १८८०) में साह खूबचंद की जगह मुन्शी अमींमहम्मद दीवान मुक़र्रर हुआ, जो भुज से बुलाया गया था. इसी साल राज्य का कर्ज़ा बिलकुल साफ़ हो गया, जिसपर कर्नल ट्रीडी साहब ने, जो सिरोही के एजंट थे, महारावजी साहब के राज्य-प्रबंध की प्रशंसा की.

ता० ३० दिसंबर सन् १८८० ई० (विक्रम संवत् १९३७) को अहमदाबाद और अजमेर के बीच राजपूताना मालवा रेलवे खुली, जो क़रीब ४० माइल इस राज्य में होकर निकली है. इस रेलवे की ज़रूरत के लिये सिरोही की हद के भीतर की कुल ज़मीन महाराव उम्मेदसिंह ने मुफ्त में दी थी. जबतक यह रेलवे नहीं बनी, तबतक जितना बाहरी माल सिरोहीराज्य में होकर दूसरे इलाक़ों में जाता उसपर राज्य की चुंगी (जिसको यहां पर 'दान' कहते हैं) लगती थी. राज्य की चुंगी (दान) की यह आमद इस रेलवे के बनने से बंद होनेवाली थी, जिससे उसकी हानि के एवज़ में सर्कार अंग्रेज़ी ने सालाना १००००) रुपये सिरोहीराज्य को देना स्वीकार किया, परन्तु इस रेलवे

के बनने से राज्य की चुंगी (दान) की आमदनी में कमी नहीं हुई. किन्तु दिन दिन तरक्की होती रही, जिससे सर्कार अंग्रेज़ी से, जो १००००) रुपये सालाना हरजाने के मिलते थे, वे रेज़िडेंट (कर्नल पाउलेट) साहब की राय से सन् १८८६ ई० (वि० सं० १९४३) में छोड़ दिये गये.

सिरोहीराज्य का पोलिटिकल ताल्लुक, जो अबतक एरनपुर की फ़ौज के कमांडिंग अफ़सर के साथ था, सन् १८८१ ई० (वि० सं० १९३८) से जोधपुर की रेज़िडेंसी के साथ हुआ.

वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में डूंगरपुर के महारावल उदयसिंह आबू पर आये और जबतक उनका निवास सिरोहीराज्य में रहा, तबतक उनकी मिहमानदारी महाराव साहब की तरफ़ से होती रही, जिसपर वे बहुत ही प्रसन्न होकर अपनी राजधानी को लौटे. इसी वर्ष महारावजी ने पुष्कर की यात्रा की.

वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८२) में दीवान मुन्शी अमीमहम्मद ने इस्तीफ़ा दे दिया, जिससे मुन्शी निआमतअलीखां फिर दीवान नियत हुआ. राजसाहब हमीरसिंह का देहान्त वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७६) में होगया था और उनके कोई पुत्र न था, जिससे इस वर्ष उनके ज़नाने सिरोही लाये जाकर उनके ख़र्चे का प्रबंध कर दिया गया और उनके ठिकाने पर जितना कर्ज़ा था, वह राज्य से चुकाया जाकर उनके पट्टे की शर्त (देखो ऊपर पृ० ३२२ का नोट) के मुआफ़िक उनकी जागीर ज़ब्त कीगई. इस साल महारावजी साहब ने हरिद्वार की यात्रा की और

सहारनपुर, जैपुर, अलवर आदि शहरों की सैर करने बाद सिरोही लौटना हुआ.

वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) वैशाख सुदि १५ को महारावजी साहब का दूसरा विवाह महीकांठा इलाके के ठिकाने वरसोड़ा के चावड़ा ठाकुर अभयसिंह की कंवरी से हुआ. इस वर्ष इन्होंने प्रयाग तथा अंबाभवानी की यात्रा की. अंबाभवानी से इनका अपनी बड़ी महाराणी सहित अपने सुसराल दांता भी पधारना हुआ था.

इन्होंने खराड़ी (आबूरोड़) के पास केसरगंज में बंगला तथा धर्मशाला बनवाई. इस धर्मशाला के बनने से आबू तथा अंबाभवानी के यात्रियों को बहुत कुछ आराम मिलने लगा. इसी वर्ष में इन्होंने साधुओं के लिये ज़िन्दा समाधि लेने की मनाई का हुक्म ज़ारी किया और नाशिक त्र्यंबक की यात्रा की, जहां से बंबई होते हुए सिरोही लौटे.

वि० सं० १९४२ (ई० स० १८८५) में ये बंबई पधारे, जहां से स्टीमर सवार होकर द्वारिका की यात्रा की.

सिरोही राज्य में चुंगी (दान) का प्रबन्ध पहिले ठीक न था. कई जगह एक ही चीज़पर दान लगता था. जिससे ब्योपारियों को भी तकलीफ़ रहती थी और प्रबन्ध भी सर्वत्र एकसा न था. जिससे महारावजी साहब की गद्दीनशीनी के समय दान की कुल आमद क़रीब २६०००) रुपये थी. इस महकमे की दुरुस्ती कर ब्योपार को

तरक्क़ी देने तथा ब्योपारियों की तकलीफ़ दूर करने का विचार कई बरसों से इनके चित्त में जमा हुआ था, जिससे वि० सं० १९४३ (ई० स० १८८६) में ह्यूसन साहब (जिन्होंने जोधपुर के सायर का प्रबन्ध किया था) की राय से चुंगी का नया प्रबन्ध किया गया और उस का क़ायदा छपवाकर सर्वत्र बंटवा दिया गया. इस नये प्रबन्ध में हर-एक चीज़ पर सायर का महसूल मुक़र्रर हुआ और तौल के हिसाब से वह लगाया गया. एकबार चुंगी चुकाने बाद ब्योपारी को अपना माल एक जगह से दूसरी जगह लेजाने में किसी प्रकार की दिक्क़त न रही. इस प्रबन्ध से ब्योपारी लोग बहुत प्रसन्न हुए और ब्योपार की दिन दिन तरक्क़ी होती रही, जिससे चुंगी की आमद भी खूब बढ़ी. यह प्रबन्ध करने बाद सिंघी जवानमल इस महक़मे का सुपरिंटेंडेंट मुक़र्रर हुआ, जिसने वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) तक इस काम को सं-भाला. फिर वि० सं० १९५४ (ई० स० १८९७) तक इस महक़मे का काम महारावजी साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू सरच्चन्द्रराय चौधरी बी. ए. ने किया, जिसके बाद यह महक़मा मोदी सोनमल के सुपुर्द हुआ, जिसके इन्तिज़ाम से आज कल इस महकमे की आमद सालाना १५५०००) रुपये के क़रीब पहुंच गई है.

वि० सं० १९४३ (ई० स० १८८६) में इन्होंने फिर हरिद्वार की यात्रा की और काउंटेस ऑफ डफ़रीन फंड में, जिससे कई जगह के ज़नाना अस्पतालों का ख़र्च चलता है, ८००) † रुपये, लंडन के कोलो-

† वि० सं० १९४२ (ई० स० १८८५) में भी महारावजी साहब ने इस फंड में ५००) रु० दिये थे.

निश्चल इन्स्टीट्यूट के चन्दे में १०००) रुपये और आबू के रेलवेस्कूल के सामान के लिये ६५२॥=) बख़्शे.

राजसाहब जामतसिंह खाखरवाड़ा वालों ने अपने पुत्र न होने के कारण ५००) रुपये भीलाड़ी महावार लेने की शर्त पर अपनी जागीर वि० सं० १९४३ (ई० स० १८८६) में राज्य के सुपुर्द करदी और उनपर जो २५६७५) रुपये का कर्ज़ा था वह राज्य से चुकादिया गया.

वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में दूसरी महाराणी से महाराजकुमार मानसिंह का जन्म हुआ, जिसकी बड़ी खुशी मनाई और बहुतसा ख़र्च इनाम इकराम आदि में किया गया, परन्तु ईश्वरेच्छा यह हुई, कि चार दिन बाद ही उक्त महाराणी का देहान्त होकर रंग में भंग होगया और एक साल बाद उक्त महाराजकुमार का भी परलोकवास होगया.

वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में इन्होंने बनासनदी पर के 'राजवाड़ा ब्रिज' के चंदे में २१२५०) रुपये देने की आज्ञा दी, जिनमें से १००००) रुपये इसी वर्ष में, ६०००) रुपये वि० सं० १९४५ (ई० स० १८८८) में और बाक़ी के रुपये वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में दिये गये.

सिरोही के राजाओं का वंशपरंपरा से 'महाराव' ख़िताब चला आता है और ऐसा ही उनके पुराने शिलालेखों में लिखा मिलता है तथा राजपूताना, गुजरात आदि के राजाओं के यहां से आनेवाले ख़रीतों

आदि में भी ऐसा ही सदा लिखा जाता है, परन्तु गवर्नमेंट हिंद के साथ वि० सं० १८८० (ई० स० १८२३) में अहदनामा हुआ, उस समय सिरोही के अहलकारों की गफ़लत से उसमें 'राव' लिखा गया. तबसे गवर्नमेंट की तरफ़ से आनेवाली सिरिश्ते की तहरीरों में 'राव' और सिरोही से जानेवाली तहरीरों में 'महाराव' लिखा जाता था. इस 'राव' ख़िताब को महाराव शिवसिंह के समय से ही सिरोही के राजा अपने उच्चपद के योग्य नहीं समझते और उसको पलटवाकर 'महाराव' लिखवाने का यत्न करते ही रहे † थे, जिससे ता० १ जनवरी सन् १८८९ ई० (वि० सं० १९४५) को सर्कार हिन्द ने 'महाराव' का ख़िताब इनको वंशपरंपरा के लिये बख़्शा. इसकी सनद लेकर राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल कर्नल वाल्टर साहब सिरोही आये और ता० २१ मार्च सन् १८८९ (चैत्र वदि ४ वि० सं० १९४५) की रात को सिरोही के राजमहलों में दर्बार हुआ, जहां पर वह सनद दी गई. उस समय ३१ तोपों की सलामी हुई. इस दर्बार में कर्नल पाउलेट साहब रेज़िडेंट वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स तथा सिरोही के क़रीब क़रीब सब बड़े सर्दार तथा अहलकार शामिल थे. कर्नल वॉल्टर साहब ने अपनी स्पीच में महाराव साहब के सुप्रबंध तथा कार-

† सिरोही के पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट ने ई० स० १८६५-६६ और १८६६-६७ की रिपोर्ट में महाराव उम्मेदसिंह के विषय में लिखा है ' His Highness is very sensitive in all matters pertaining to his rank and dignity. The one object of his ambition is to be officially recognized as Maha Rao.'

गुज़ारी की प्रशंसा की. इसकी खुशी में उस दिन सिरोही में उत्सव मनाया गया और रोशनी की गई.

वि० सं० १६४५ (ई० स० १८८८) वैशाख वदि ४ को महारावजी साहब का तीसरा विवाह धरमपुरराज्य (गुजरात में) के महाराणा नारायणदेव सीसोदिये (राणावत) की राजकुमारी मानकंवर के साथ सिरोही में हुआ (जहांपर डोला आया था).

आबू की म्यूनिसिपलटी को सिरोहीराज्य की तरफ़ से सालाना २००) रुपये कलदार दिये जाते थे. परन्तु माह जून सन् १८८७ (वि० सं० १६४४) से महारावजी साहब ने उस रक़म को बढ़ाकर ३०००) रुपये सालाना देने की आज्ञा दी.

वि० सं० १६४५ (ई० स० १८८८) आश्विन वदि ७ गुरुवार के दिन १४ घड़ी २५ पल दिन चढ़े बड़ी महाराणी (दांतावालों) से महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब का जन्म हुआ और इसी वर्ष महारावजी साहब ने मेयोकालेज के लिये सालाना ५६।=)। भेजने की आज्ञा दी तथा अपने चचा राजसाहब हमीरसिंह भीमाणावालों की पुत्री शृंगारकंवर का विवाह १५०००) रुपये लगाकर बागोर के महाराज सोहनसिंह के साथ सिरोही में किया, जो उदयपुर (मेवाड़) के महाराणा सज्जनसिंह के चचा थे.

गांव मगरीवाड़ा और अरमाणा के ज़ागीरदारों के बीच अपने गांवों की सरहद के लिये तकरार चलरही थी और कईवार उसका फ़ैसला हुआ था,

परन्तु उसको दोनों तरफ़वालों ने स्वीकार न किया और उनका आपस का विरोध बढ़ता ही गया, जिससे कर्नल पाउलेट साहब की सलाह से महारावजी साहब ने वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) पौष सुदि ११ को मगरीवाड़े के मुक़ाम पर उस तनाज़े की सरहद का नक़्शा देखकर भटाणा, मांडवाड़ा आदि के सर्दारों की शामलात तथा दोनों फ़-रीक़ों की रज़ामंदी से बहुत कुछ विचार के साथ नक़्शे पर सरहदी लकीर इस तरह खैंच दी, कि दोनों पक्षवाले खुश होगये और बरसों का झगड़ा मिट गया. फिर उस लकीर के अनुसार सरहदी पत्थर गड़वा दिये गये. इसी तरह मगरीवाड़ा और कूसमा गांवों के बीच की सरहद की तक़रार चलरही थी, जिसको भी इन्होंने मिटाना चाहा और दोनों तरफ़वाले इस बात पर राज़ी होगये, कि मगरीवाड़े का देवड़ा गुमान-सिंह रामचन्द्रजी की सोगंद खाकर जहां चले, वहीं पत्थर गाड़ दिये जावें. इस पर वह महारावजी साहब के सामने रामचन्द्रजी की शपथ खाकर हाथ में माला लेकर चला, परन्तु वह बेईमानी कर वरमाण की सीमातक चला गया, जिससे कूसमा की तरफ़ से रउआके ठाकुर व दुरगा खुन ने उस सरहद को स्वीकार न किया. महारावजी साहब को भी उसकी इस बेईमानी पर बड़ा ही खेद हुआ और इन्होंने उससे फ़रमाया कि 'तूने रामचन्द्रजी की सोगंद खाने बाद यह बेईमानी क्यों की' ? जिस पर उसने अर्ज़ की, कि ' यह ज़मीन तो सब राम-चन्द्रजी की ही है औरों की तो पैर रखने जितनी भी नहीं है, इसलिये

चलूं कहां.' फिर दूसरे सर्दारों को बीच में डालकर कितनीक कूसमे की ज़मीन छुड़वाने बाद इन्होंने उस नक़्शे पर लकीर खींच दी और सरहदी पत्थर गड़वादिये, परन्तु गुमानसिंह की चालाकी का रंज इनके चित्त पर यहांतक बना रहा, कि अबतक ये उस बात को भूले नहीं हैं.

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८९०) फाल्गुन सुदि ५ को महाराणी मानकंवर (धरमपुरवालों) से आनन्दकंवर बाई का जन्म धरमपुर में हुआ.

श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ के पौत्र श्रीमान् प्रिन्स ऐलवर्ट विक्टर साहब हिन्दुस्तान की सैर को पधारे, उस समय श्रीमान् अपनी सफ़र में सिरोहीराज्य में होकर गुजरात की तरफ़ पधारनेवाले थे, इसलिये महारावजी साहब ने अपने राज्य में उनकी मिहमानदारी करने का बहुत कुछ आग्रह किया, जिसपर शाहज़ादा साहब ने समय कम होने से केवल आबूरोड (खराड़ी) में महारावजी साहब की तरफ़ की ' टी पार्टी ' का निमन्त्रण क़ुबूल फ़रमाया, अतएव महारावजी साहब ने कुछ दिन पहिले वहां पधार कर उनके सन्मान का सब प्रबन्ध किया और वि० सं० १९४६ चैत्र वदि ७ (ता० १३ मार्च सन् १८९० ई०) को दिन के ११ बजे श्रीमान् शाहज़ादा साहब की स्पेश्यल ट्रेन आबूरोड के स्टेशन पर पहुंची और गाड़ी से उतरते ही महारावजी साहब ने उनका स्वागत किया और उन्होंने महारावजी साहब से मुलाक़ात कर प्रसन्नता प्रकट की, जिसपर इन्होंने उनकी मुलाक़ात की

खुशी ज़ाहिर कर अपनी तरफ़ की मिहमानदारी स्वीकार करने के लिये उनको धन्यवाद दिया. फिर 'टी पार्टी' का जलसा हुआ, तदनंतर स्टेशन को लौटने पर उन्होंने इस मिहमानदारी के लिये प्रसन्नता प्रकट की. फिर ट्रेन पालनपुर की तरफ़ चली. इस जलसे में राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल कर्नल वॉल्टर साहब भी शरीक थे.

वि० सं० १६४७ (ई० स० १८६०) वैशाख वदि ७ को जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह १०० आदमियों के साथ सिरोही पधारे और ४ दिन तक उनका वहां निवास रहा. उस समय दोनों राजाओं के बीच बहुत ही स्नेह का वर्ताव रहा और महारावजी की मिहमानदारी से वे प्रसन्न होकर जसवंतपुर को पधारे. ज्येष्ठ सुदि ४ को महाराव साहब की माता का सिरोही में स्वर्गवास हुआ.

हिन्दुस्तान के वाइसराय और गवर्नरजनरल लॉर्ड लैन्सडाउन साहब आबू पर पधारनेवाले थे, इसलिये महारावजी साहब ने कुछ दिन पहिले अपने सर्दारों व अहलकारों के साथ आबूरोड पर पधारकर उनके स्वागत का सब प्रबंध किया.

वि० सं० १६४७ कार्तिक वदि १२ (ता० ६ नवम्बर सन् १८६० ई०) को सुबह के ७ बजे श्रीमान् वाइसराय साहब मए कर्नल वॉलटर साहब एजंट गवर्नरजनरल राजपूताना, कर्नल पाउलेट साहब रेज़िडेंट वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स व अपने साथ के अफ़सरों वग़ैरह के स्पेश्यल ट्रेन से आबूरोड स्टेशन पर पधारे और महारावजी साहब से मिल-

कर प्रसन्नता प्रकट की. इन्होंने भी उनकी मुलाक़ात की खुशी ज़ाहिर की और अपनी तरफ़ की मिहमानदारी स्वीकार करने के लिये उनका शुक्रिया अदा किया. फिर इनकी तरफ़ से उनको दावत दीगई. तत्पश्चात् वे आबू को बिदा हुए और ये तलहटी तक उनको पहुंचाकर लौट आये. कार्तिक वदि १४ (ता० ११ नवम्बर) को वाइसराय साहब आबू से पीछे आबूरोड पधारे. उसी दिन बंबई के गवर्नर लॉर्ड हैरिस साहब भी वाइसराय साहब की मुलाक़ात के लिये आबूरोड आकर उन्हींके साथ ठहरे. शाम के समय वाइसराय साहब तथा लॉर्ड साहब दोनों क़ैसरगंज की कोठी पर पधारे और महारावजी साहब से मिलने पर वाइसराय साहब ने फ़रमाया कि 'हम बड़े आराम से आबू पर पहुंचे और आबू को देखकर बहुत प्रसन्न हुए.' वहीं पर उनको दावत दीगई, जिसके बाद इन्होंने आतिशबाज़ी देखी. फिर महारावजी साहब से कुछ देरतक बातचीत करने बाद वे पीछे स्टेशन पर पधारे और रात के १० बजे उनकी ट्रेन जयपुर को चली.

वि० सं० १९४७ फाल्गुन वदि ५ (ई० स० १८९१ ता० १ मार्च) को हेतकंवर बाईजी का जन्म महाराणी मानकंवर (धरमपुरवालों) से सिरोही में हुआ.

राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल कर्नल ट्रैवर साहब वि० सं० १९४७ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १८९१ ता० १५ मार्च) को सिरोही आये और दूसरे दिन महारावजी साहब ने उनके हाथ से

जेलखाने के नये मकान की नींव डलवाई. उस समय की स्पीच में उन्होंने इनकी बहुत प्रशंसा की.

वि० सं० १६४८ चैत्र सुदि ३ (ई० स० १८६१ ता० ११ एप्रिल) को जोधपुर के महाराजकुमार सर्दारसिंह सिरोही पधारे और एक दिन वहां विराजकर दूसरे दिन जसवंतपुरे को गये.

चैत्र सुदि ११ (ता० १६ एप्रिल) के दिन बारड चैनसिंह राज्य की पुलिस का फौजदार (सुपरिंटेंडेंट) मुक़र्रर हुआ और उसको पैरों में सोना पहिनने का सन्मान मिला, जो पहिले उसके पिता नाथसिंह को मिल चुका था.

राधनपुर के नव्वाब मुहम्मद बिसमिल्लाहखां ने कश्मीर से लौटते समय ज्येष्ठ सुदि ७ (ता० १३ जून) को आबूरोड स्टेशन पर उतरकर मानपुर गांव में मुक़ाम किया, जहां पर महारावजी साहब की तरफ़ से उनकी मिहमानदारी हुई और दो दिन बाद महारावजी साहब भी उनसे मिले.

वि० सं० १६४८ मार्गशीर्ष सुदि ४ (ई० स० १८६१ ता० ५ दिसम्बर) को ये फिर बंबई की सैर को पधारे, जहांसे पौष वदि ८ को पीछा सिरोही लौटना हुआ.

वि० सं० १६४८ (ई० स० १८६२) फाल्गुन वदि ७ को जोधपुर के महाराजकुमार सर्दारसिंह की शादी बूंदी होनेवाली थी, जिससे जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की ओर से महारावजी साहब को

जोधपुर पधारने का बहुत कुछ आग्रह किया गया और वहां से ख़रीता लेकर पंचोली मुकंदचंद सिरोही आया, जिसपर महारावजी साहब, राजसाहब जोरावरसिंह (अजारीवाले), कुंवर दलपतसिंह (मणादर-वाले), राज पृथ्वीराज (मंडारवाले), ठाकुर पृथ्वीराज (कालंद्रीवाले), भटाणा ठाकुर भारतसिंह आदि सर्दार तथा कितनेक अहलकार वगैरह सहित स्पेश्यल ट्रेन द्वारा पींडवाड़ा स्टेशन से जोधपुर को प्रस्थान किया और माघ सुदि ११ (ता० ८ फरवरी सन् १८९२ ई०) को शामके ५ बजे इनकी ट्रेन राईके बाग़ के स्टेशन पर पहुंची. उस समय महाराजा जसवंतसिंह कितने ही अपने सर्दारों व रेज़िडेंट कर्नल पाउलेट साहब सहित पेशवाई के लिये स्टेशन पर उपस्थित थे. सरिश्ते की मुलाक़ात व तोपों की सलामी होने बाद इनका मुक़ाम हरजीवाले बंगले में हुआ, जहांतक महाराजा जसवंतसिंह इनको पहुंचाने को गये. माघ सुदि १४ (ता० ११ फरवरी) तक इनका जोधपुर में निवास हुआ. उस समय इन दोनों राजाओं के बीच बराबर मुलाक़ात होती रही और महाराजा की तरफ़ से बड़ी ख़ातिरदारी हुई. माघ सुदि १५ (ता० १२ फरवरी) को ये जोधपुर से पीछे सिरोही लौटे.

इसी वर्ष इन्होंने एक क़ानून बनाकर अपने राज्य में जुआ खेलने की मनाई की, आबू परके सानी गांव की कितनी ज़मीन पोलो-ग्राउंड बनाने के लिये दी, जंगलात के महक़मे का नया बंदोबस्त किया; भील, ग्रासिये आदि जंगली लोग किसी औरत को डायन क़रार देकर

उसे तकलीफ़ न दें इसका प्रबंध किया, नींबज के ठाकुर को कुछ हद-तक अपनी जागीर में दीवानी व फौजदारी का अधिकार कितनीक शर्तों के साथ दिया, साह मिलापचन्द सूरतवाले की जगह सिंघी जवेरचंद को दीवान मुक़र्रर किया, नया जेलख़ाना तैयार होजाने पर जेल के इंतिज़ाम का नया प्रबंध किया और पुराने जेलख़ाने के क़ैदी नये जेलख़ाने में दाख़िल किये गये. पाडीव तथा कालंद्री के ठाकुरों के बीच ऐसे ही कई दूसरे जागीरदारों के बीच आपस के सरहदी तनाज़े थे, जिनमें से कई एक को इन्होंने समझायश के साथ इसी वर्ष में तय करवा दिये. नागाणी, पोसीतरां तथा लोटीवाड़ा के ठाकुरों ने कितने एक सरहदी पत्थर तोड़ डाले, जिसपर आयंदा ऐसे गुनाह को रोकने के लिये एक क़ानून बनाकर कुल सर्दार, जागीरदार आदि को इत्तिला दीगई, कि आयंदा इस तरह की कार्रवाई करनेवाले को उस क़ानून के मुआफ़िक पूरी सज़ा होगी. इसी साल श्रीमान् हिज़ रायल हाइनेस प्रिन्स अलबर्ट विक्टर साहब का स्वर्गवास हुआ, जिससे महारावजी साहब ने श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ के पास अपनी तरफ़ की मातमी व हमदर्दी ज़ाहिर करनेवाला तार श्रीमान् वाइसराय साहब हिंद की मारफ़त भेजा, जिसकी पहुंच शुक्रिये के साथ आई.

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८९२) कार्तिक सुदि १४ के दिन महाराणी मानकंवर (धरमपुरवालों) से महाराजकुमार लक्ष्मणसिंह का जन्म हुआ, जिसकी बड़ी खुशी मनाई गई.

इसी वर्ष आमद ख़र्च के हिसाब अर्थात् बजट का नया बंदोबस्त किया और जनवरी से दिसम्बर तक वर्ष गिना जाने लगा. आबू पर एक बंगला ख़रीदा गया और पुरानी कोठी बढ़ाई जाकर उसकी दुरुस्ती कराई गई, सिरोही में ज़नाना महल तय्यार हुआ और आबू पर के 'पोलोग्राउंड' के पास बैठक का जो ऊंचा मंडप बना है और जिसको पैविलियन कहते हैं, उसके फंड में महारावजी साहब की तरफ़ से १३५७०) रुपये दिये गये.

वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) के माघ महीने में इन्होंने हरिद्वार व काशी की यात्रा की.

वि० सं० १९५१ चैत्र सुदि १३ (ता० २० मार्च सन् १८९४ ई०) को गांव रोहेड़ा के रहनेवाले मूंता रायचन्द को अपनी इच्छानुसार सेवा करने के कारण महारावजी साहब ने खुश होकर नागपुरा गांव उसकी विद्यमानता तक के लिये बख़्शा. यह गांव परगने भीतरट में कायद्रां नाम के पुराने गांव के पास आबू के नीचे है.

ज्येष्ठ सुदि १४ (ता० १३ जून सन् १८९४ ई०) को सिंघी जवेरचन्द की जगह सूरत का महाजन साह मिलापचन्द फिर दीवान मुक़र्रर हुआ.

आनन्दकंवर बाई का सम्बन्ध बांसवाड़े के भंवर पृथ्वीसिंहजी के साथ हुआ, जिसके टीके का दस्तूर आबूरोड (खराड़ी) पर होना निश्चित हुआ, जिससे महाराजकुमार शंभूसिंहजी और भंवर पृथ्वीसिंहजी अजमेर से खराड़ी आकर केसरगंज की कोठी पर ठहरे.

महारावजी साहब भी कार्तिक वदि ३ (ता० १७ अक्टूबर सन् १८९४ ई०) को सिरोही से खराड़ी पधारे और कार्तिक वदि ७ (ता० २१ अक्टूबर) को टीके का दस्तूर हुआ.

ता० १ जनवरी सन् १८९५ ई० (वि० स० १९५१ पौष सुदि ३) को श्रीमती भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिआ की तरफ़ से महारावजी साहब को के. सी. एस. आई.(K C S. I) का ख़िताब मिला. सिरोही के राजाओं में से गवर्नमेंट हिंद की तरफ़ से ख़िताब का सन्मान प्राप्त करनेवाले प्रथम यही हुए.

ता० ३१ जनवरी सन् १८९५ ई० (वि० सं० १९५१ माघ सुदि ५) को राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल ट्रैवर साहब सिरोही आये और ता० १ फरवरी को महारावजी साहब ने अपने राजमहलों में उनको दावत दी, उस समय अपनी स्पीच में उन्होंने इनको के. सी. एस. आई. (K. C. S. I.) का ख़िताब मिलने की मुबारक़बादी दी और सिरोहीराज्य की अच्छी दशा पर ख़ुशी ज़ाहिर की.

महारावजी साहब को यह ख़िताब मिला, जिसकी सनद व तग़मा आबू पहुंच जाने पर एक बड़े दर्बार में उनका मिलना निश्चित हुआ, जिससे ये अपने मुख्य मुख्य सर्दार तथा अहलकारों के साथ आबू पर पधारे, जहां पर ता० १६ मार्च सन् १८९५ ई० (वि० सं० १९५१ चैत्र वदि ६) के दिन राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल साहब की कोठी पर दर्बार हुआ, जिसमें वह सनद, जो श्रीमती भा-

रतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ की तरफ़ से आई थी, पढ़ी गई, जिसके पीछे राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल ट्रैवर साहब ने एक स्पीच दी, जिसमें महारावजी साहब के अच्छे गुणों और कामों की तारीफ़ की और मेजर अर्स्किन साहब ने उस ख़िताब का तगमा इनको पहिनाया. फिर इनकी तरफ़की स्पीच इनके प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू सरच्चन्द्र-राय चौधरी बी० ए० ने पढ़ी, जिसमें उस ख़िताब के मिलने की खुशी ज़ाहिर की गई और शुक्रिया अदा किया गया था.

महारावजी साहब की तरफ़ से ट्रैवर साहब की यादगार आबू पर क़ाइम करने के लिये ५०००) रुपये की लागत से फर्स्ट असिस्टेंट साहब के बंगले के साम्हने 'ट्रैवर टावर' बनवाना तजवीज़ हुआ, जिस-की नींव उसी दिन (ता० १६ मार्च को) डलवाने के लिये महारावजी साहब की तरफ़ से उस जगह पर एक जलसा हुआ, जिसमें इनकी स्पीच बाबू सरच्चन्द्रराय चौधरी ने पढ़ी. उसके बाद ट्रैवर साहब के हाथ से उस टावर की नींव डलवाई गई. इस जलसे में भी उक्त साहब ने एक स्पीच दी, जिसमें उन्होंने महारावजी साहब का इस यादगार के लिये शुक्रिया अदा किया और इनकी प्रशंसा में उन्होंने उसी दिन के दर्बार में जो कहा था, उसीको फिर दुहराया. इन दोनों जलसों में कई सर्कारी अफ़सर तथा लेडियां उपस्थित थीं, जिन्होंने महारावजी सा-हब को उस ख़िताब के मिलने की खुशी प्रकट की थी.

पीछे से ट्रैवर टावर का बनना तो मुल्तवी रहा और उसकी

एवज़ में आबू के रहनेवालों को स्वच्छ और शुद्ध जल पीने को मिले. इस विचार से देलवाड़ा गांव से कुछ दूर 'ट्रेवर टैंक' नाम का तालाब बनवाया गया, जिसपर ३५०००) रुपये के क़रीब ख़र्च हुआ. परन्तु जिस अभिप्राय से वह तालाब इतने बड़े ख़र्च से बनवाया गया था, वह दैव इच्छा से सिद्ध न हुआ, क्योंकि उसमें जल विशेष नहीं ठहरता है.

इसी साल भटाना के ठाकुर के साथ चुंगी संबंधी जो तक़रार थी, वह मिटा दी गई; बाग़ी भील मनरिया, जो इधर उधर लूट मार किया करता था, पुलिस के फौजदार बारड़ चैनसिंह के साथ मुक़ाबला करने में मारा गया; सिरोही में बग्घीख़ाना, ज़नाना महलों का कोट तथा आबू पर कोतवाली व दफ्तर का मकान बना और महारावजी साहब ने कुलक्षेत्र की यात्रा की.

वि० सं० १६५२ पौष सुदि ८ (ता० २४ दिसम्बर सन् १८६५ ई०) को साह मिलापचंद दीवान के पद से अलग हुआ और सिंघी जवेरचन्द फिर दीवान मुक़र्रर हुआ. पौष सुदि १५ (ता० ३१ दिसम्बर) को गांव रोहेड़ा के रहनेवाले मूंता रायचन्द को, जो सांतपुर का तहसीलदार था, महारावजी साहब ने उसके काम से प्रसन्न होकर पैरों में सोना पहिनने की इज़्ज़त बख़्शी और उसको सोने का कड़ा तथा सिरोपाव भी दिया गया.

ता० १ जनवरी सन् १८६६ (वि० सं० १६५२) को आबू जानेवाले माल पर चुंगी का महसूल कम किया गया.

वि० सं० १९५२ फाल्गुन वदि ४ (ता० ४ फरवरी सन् १८९६ ई०) को पद्मकंवरबाईजी का जन्म सिरोही में हुआ और फाल्गुन सुदि ५ को महाराणी मानकंवर (धरमपुर वालों) का स्वर्गवास बुख़ार की बीमारी से हुआ.

वि० सं० १९५३ भाद्रपद वदि ७ (ता० ३० अगस्त सन् १८९६ ई०) को महारावजी साहब गोदावरी की यात्रा के लिये नाशिक पधारे, जहां से भाद्रपद सुदि ९ (ता० १५ सितंबर) को सिरोही लौटना हुआ.

हिन्दुस्तान के वाइसराय व गवर्नरजनरल लॉर्ड एलगिन साहब जोधपुर से बड़ौदा पधारनेवाले थे, जिसकी ख़बर मिलने पर महारावजी साहब ने आबूरोड पर उनकी मिहमानदारी करनी चाही, परन्तु वाइसराय साहब ने वक्त तंग होने के कारण आबूरोड के स्टेशन पर इनकी तरफ़ की सिर्फ़ चाय स्वीकार की, जिसपर महारावजी साहब ने अपने दीवान सिंघी जवेरचंद आदि को प्रबंध के लिये वहां भेजा. ता० २७ नवंबर सन् १८९६ ई० (वि० सं० १९५३) के प्रातःकाल ७ बजे वाइसराय साहब की स्पेश्यल ट्रेन आबूरोड पर पहुंची † और सर्दी अधिक होने के कारण उन्होंने सेलून में विराजे ही इनकी तरफ़ की चाय स्वीकार की. दीवान जवेरचन्द ने वाइसराय साहब

† वाइसराय साहब रात के समय आबूरोड स्टेशन पर पहुंचनेवाले थे, जिससे उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी, कि महारावजी साहब आबूरोड आने की तकलीफ़ न उठावें, इसीसे इनका वहां पर जाना नहीं हुआ था.

के प्राइवेट सेक्रेटरी से मिलकर महारावजी साहब की तरफ़ की वाइ-सराय साहब के पधारने की खुशी ज़ाहिर कर मिजाज़पुरसी की, फिर ट्रेन चलदी.

राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल सर रॉबर्ट क्रॉस्थवेट साहब की यादगार क़ायम करने के विचार से महारावजी साहब ने सिरोही के लोगों के आराम के लिये वहां पर 'क्रॉस्थवेट हॉस्पिटल' बनवाना निश्चय किया और ता० २१ दिसम्बर सन् १८९६ ई० (वि० सं० १९५३) को क्रॉस्थवेट साहब सिरोही आये तो महारावजी साहब ने दूसरे दिन एक जलसा कर 'क्रॉस्थवेट हॉस्पिटल' की नींव उनके हाथ से डलवाई. इस जलसे की स्पीच में उक्त साहब ने महारावजी साहब की प्रशंसा में कहा, कि 'महारावजी साहब ने बड़ी उदारता के साथ बड़ी इमारत बनाने के लिये रुपये खर्च करना स्वीकार किया है. यहां की प्रजा को धन्य समझना चाहिये, कि जिसका राजा होशियारी व बुद्धिमानी से अपना राज्य चला रहा है और जिसको प्रजा की भलाई तथा सुख का बड़ा ही ख़याल है.' फिर उन्होंने यह भी कहा कि 'महारावजी साहब मिहर्बानी से यह फ़र्माते हैं, कि अपने राज्य की उन्नति पोलिटिकल अफ़सरों से मिलनेवाली सहायता से हुई है, परन्तु मुझे यह कहना ही पड़ता है, कि सिरोहीराज्य में जो उन्नति और जान व माल की सलामती पाई जाती है, वह मुख्य कर महारावजी साहब के प्रबंध और दिली कोशिश से ही हुई है.' इस जलसे में महारावजी

साहब की तरफ़ की स्पीच इनके प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू सरच्चंद्रराय चौधरी ने पढ़ी थी.

महारावजी साहब ने कर्नल ऐबट साहब रेज़िडेंट वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स की यादगार के लिये ६७०००) रुपये लगाकर सिरोही के पास ही मातर माता के पहाड़ पर एक सुन्दर तालाब और सड़क बनवाई, जिसको खोलने का जलसा कर्नल ऐबट साहब के सिरोही आने पर ता० १५ जनवरी सन् १८९७ ई० (वि० सं० १९५३) को हुआ. इस जलसे में उक्त साहब ने जो स्पीच दी, उसमें महारावजी साहब के लिये यह कहा, कि 'मैं एक ऐसे राजा का मित्र होने का आनन्द और अभिमान रखता हूं, कि जो इस रास्ते व तालाब, क्रॉस्थवेट हॉस्पिटल, और आबू पर रहनेवालों के जल के आराम के लिये बड़ी लागत के ट्रैवर टैंक जैसे सर्वसाधारण के फ़ायदे के कामों की उदारता के लिये प्रसिद्ध है, इतना ही नहीं, किन्तु प्रजा के वास्ते अपनी स्वाभाविक सहानुभूति, दिली मिहर्बानी और उस (प्रजा) की आवश्यकता के गहरे लक्ष्य से जिसने अपनी प्रजा में से सब क़ौमों की प्रीति संपादन करली है और जो वास्तव में अपनी प्रजा का पिता बना है."

इसी वर्ष सिरोहीराज्य में क़ानून स्टांप व हदसमायत जारी हुए, सिरोही व मेवाड़ (जूडा) के बीच की सरहद तै करने का सिलसिला चला और आबू पर के ट्रैवर टैंक का काम समाप्त हुआ. क़रीब १८ वर्ष तक राज्य के ख़ज़ाने की हालत ठीक रहने बाद इस वर्ष के

अंत में राज्यपर फिर ४२०००) रुपये कर्ज़ा होगया, जिसका कारण मामूली के सिवाय प्रजा के हित के कामों पर बहुतसा ख़र्च होना ही हुआ.

श्रीमती भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिआ को राज्य करते हुए ६० वर्ष होजाने के कारण ता० २२ जून सन् १८९७ ई० (वि० सं० १९५४ आषाढ वदि ८) को डायमण्डजुबिली का बड़ा उत्सव होने वाला था, इसलिये महारावजी साहब ने इस अमूल्य समय की ख़ुशी में अपनी तरफ़ के धन्यवाद का एक ऐड्रेस तय्यार करवाया और उसको एक चांदी के डिब्बे में धरवाकर श्रीमान् वाइसराय साहब हिंद की मारफ़त श्रीमती के पास भिजवाया. ता० २२ जून के दिन राज्यभर में उत्सव मनाया गया, सिरोही में दर्बार हुआ, जिसमें श्रीमान् वाइसराय साहब की तरफ़ से आया हुआ इस विषय का ख़रीता पढ़ा गया, जेलख़ाने के क़ैदियों व पाठशाला के लड़कों को मिठाई बांटी गई, ग़रीबों को खाना खिलाया गया, अहलकारों को सिरोपाव बख्शे गये, १५ क़ैदी छोड़े गये और राज्य के हरएक गांव व क़सबे में रोशनी कराई गई.

महारावजी साहब ने इस शुभदिन की यादगार को चिरस्थायी करने के लिये पींडवाड़े के पास 'डायमंडजुबिली टैंक' नाम का तालाब बनवाया, जिसमें क़रीब ४७०००) रुपये ख़र्च हुए. इस तालाब का लाभ विशेषकर ग़रीब किसानों को मिलता है.

राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल सर रॉबर्ट क्रॉस्थवेट साहब सिरोही आये और ता० ५ दिसंबर सन् १८९७ ई० (वि० सं० १९५४

मार्गशीर्ष सुदि १२) को उन्होंने अपनी यादगार 'क्रॉस्थवेट हॉस्पिटल' को अपने ही हाथ से खोला, जिसके जलसे में उन्होंने अपनी स्पीच में कहा किः—

'मुझे यह कहना ही पड़ता है, कि गवर्नमेंट हिंद की तरफ़ से चाहे जितनी मदद मिले तो भी बुरा राजा अच्छा नहीं होसकता और सिरोहीराज्य की सरसब्ज़ी, अमन व अच्छी हालत जो इस समय है, वह महारावजी साहब के न्याय और सततकार्यासक्ति के कारण से ही है, कि जिनके साथ वे अपना बड़ाभारी फर्ज़ अदा कर रहे हैं."

हिन्दुस्तान के अलग २ हिस्सों में कई बरसों से प्लेगकी बीमारी चल रही है, जिससे सालाना लाखों मनुष्यों का संहार होता है. यह बुरी बला अपने राज्य में न घुसने पावे, इसका विचार महारावजी साहब को सदा रहा करता था, जिससे इन्होंने अपने राज्य में यह हुक्म जारी कर दिया कि प्लेगवाली जगह से आने वाला मुसाफ़िर नियत दिनों तक कारंटाइन में रहे और उसके कपड़े वगैरह साफ़ हुए विना किसी गांव में जाने न पावे. जब सिरोहीराज्य के पास के पालनपुरराज्य में प्लेग की बीमारी फैली, उस समय पालनपुर की तरफ़ के रास्तों पर चौकियां बिठला कर उधरवालों का, जो इधर उधर भागते थे, अपने राज्य में आना रोक दिया गया. इतना बंदोबस्त होने पर भी सन् १८९७ ई० (वि० सं० १९५४) के नवम्बर महीने में पूना से एक धनवान् महाजन, जिसको प्लेग की बीमारी लग चुकी थी, किसी युक्ति से तिवरी गांवमें पहुंच गया और

दूसरे ही दिन प्लेगसे मरगया-उसकी मातमी आदि में कई गांवों के लोग वहां पहुंचे और वे वहां से इस वबा को अपने साथ ले गये, जिससे कुछ दिनों में कालंद्री, छडुआल, तिवरी, सणपुर और बरदड़ा आदि गांवों में प्लेग फैल गया, जिससे महारावजी ने वहां से उसको मिटाने व दूसरे गांवों को उससे बचाने का यह प्रबंध किया, कि वे गांव बिलकुल खाली करवा दिये गये, वहां के कुल मकानात डिसइन्फेक्ट (शुद्ध) करवाये गये और बीमारों को दूसरे लोगों से अलग रखने व उनके इलाज आदि का प्रबंध किया गया. गवर्नमेंट की तरफ़ से भी इस काम में ... हायता मिली. राजपूताने के चीफ़ मेडिकल अफ़...
साहब ता० २६ दिसंबर को कालंद्री गये ...(ता० १ मार्च सन् १८९८
प्लेगवाले गांवों को सम्हालते रहे औ...उआ के ठाकुर अजीतसिंह को खास अफ़सर तथा उनकी मातह...ये सोने के कड़े व पैरों में सोना प-
हुए. रेज़िडेंट साहब वेस्टर्न ग
गांवों को वहां जाकर देखा.१८९८ (वि० सं० १९५५ आषाढ सुदि ५)
की चिन्ता और ऐडम्स साले महता डाह्यालाल सिरोही के दीवान
से वहां से प्लेग मिटगय ही महीनों में उनके चले जाने पर ता० २
बीमारी ने समय समय...श्विन वदि ३) को साह मिलापचन्द फिर दी-
शिवगंज आदि पर ...
कारण विशेष नुक़...माघसुदि ११ (ता० २१ फरवरी सन् १८९९ ई०)
पर प्लेग नहीं हुआ. (दांतावालों) के बनवाये हुए रामलक्ष्मणजी के

(वि० सं० १९५५) के ख़रीते से पाया जाता है, कि महारावजी साहब के प्लेग संबंधी प्रबंध को सर्कार हिन्द ने प्रशंसनीय माना और उसके लिये अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी.

इसी साल महारावजी साहब ने आबूरोड (खराड़ी) के धर्मादा दवाख़ाने अर्थात् 'चैरिटेबल हॉस्पिटल' के मकान की मरम्मत के लिये ५०००) से अधिक रुपये लगाये और आबू पर प्लेग पहुंचने न पावे इसका बंदोबस्त रखने के लिये आबू की म्युनिसिपल्टी को २०००) रुपये [illegible] जिसके लिये एजंट गवर्नरजनरल साहब ने इनको धन्यवाद दिया.

से ही है, कि [illegible] से गोमुख (वसिष्ठ के आश्रम) जाने के रास्ते की

हिन्दुस्तान के अल[illegible] के ठगी व डकैती के महकमे को सालाना

चल रही है, जिससे सालाना ला[illegible] ने मंजूर फ़र्माया तथा शिकार के लिये

बुरी बला अपने राज्य में न घुसने पा[illegible] राज्य में वहां के दीवान के पर्वाने

को सदा रहा करता था, जिससे इन्हों[illegible] को पकड़ने तथा जानवरों के

कर दिया कि प्लेगवाली जगह से आने [illegible] राज्य में शिकार करने की

तक क्वारंटाइन में रहें और उसके कपड़े व[illegible] [illegible]ताना मालवा रेलवे के मै-

गांव में जाने न पावे. जब सिरोहीराज्य के [illegible]पूताना स्टेट से शिकार

प्लेग की बीमारी फैली, उस समय पालनपुर की त[illegible] कबूतरों के शिकार की

बिठला कर उधरवालों का, जो इधर उधर भा[illegible] [illegible]अंडे देते हैं, उस समय

आना रोक दिया गया. इतना बंदोबस्त होने पर भ[illegible] [illegible]ज्ञा दीगई. हरिणी,

सं० १९५४) के नवम्बर महीने में पूना से एक धनव[illegible] भारजा, तेलपुर,

प्लेग की बीमारी लग चुकी थी, किसी युक्ति से तिवरी ग[illegible]

ईसरां, उड़वारिया, मीरपुर, मेड़ा, मांडवाड़ा, अदरली का बेरा तथा सांनिया का बेरा, वास्थानजी के पास सेवन्ती का दरा और ऊबेरा का बेरा, काछोली, सांगवाड़ा, अस्परा, कोटड़ा, सनार, टोकरां, टोडा, गिरवर, मूंगथला, चंडेला की रखत और सिरोही तथा उसके पास के रामपुरा, वेरापुरा, पालड़ी, पीपलकी, सिरोही का घास का बीड़, कोलर, सरणुआ की पहाड़ी, बालदा और राजपुरा में शिकार की बिलकुल मनाई कीगई. इस क़ानून के ख़िलाफ़ चलनेवाले का शिकार छीन लेने व पहिली बार के क़ुसूर पर पांच रुपये जुर्माना होने तथा फिर १०) रुपये होने का हुक्म दिया गया.

वि० सं० १९५४ फाल्गुन सुदि ६ (ता० १ मार्च सन् १८९८ ई०) को महारावजी साहब ने रोउआ के ठाकुर अजीतसिंह को सिरोपाव और उसके ज़नाने के लिये सोने के कड़े व पैरों में सोना पहिनने की इज़्ज़त बख़्शी.

ता० २४ जून सन् १८९८ (वि० सं० १९५५ आषाढ सुदि ५) को अहमदाबाद के रहनेवाले महता डाह्यालाल सिरोही के दीवान मुक़र्रर हुए, परन्तु थोड़े ही महीनों में उनके चले जाने पर ता० २ अक्टूबर (द्वितीय आश्विन वदि ३) को साह मिलापचन्द फिर दीवान नियत किया गया.

सं० १९५५ माघसुदि ११ (ता० २१ फरवरी सन् १८९९ ई०) को बड़ी महाराणी (दांतावालों) के बनवाये हुए रामलक्ष्मणजी के

मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम से सिरोही में हुई.

ता० २६ फरवरी सन् १८९९ (वि० सं० १९५५ फाल्गुन वदि १) को महारावजी साहब अपने दोनों महाराजकुमार तथा तीनों राजकुमारियों सहित प्रयाग की यात्रा को पधारे, जहां से ता० १९ मार्च (फाल्गुन सुदि ४) को सिरोही लौटना हुआ.

इस साल सिरोही व मेवाड़ के बीच की जिस सरहदी ज़मीन का तनाज़ा था, उसके पहिले दो हिस्सों का फैसला हुआ, जिसके लिये कर्नल पर्सी स्मिथ तथा मिस्टर ई० आर० पेन्एरोज़ साहब कमिश्नर मुकर्रर हुए थे, जिनकी निगरानी में उन दोनों हिस्सों की सरहद कायम की गई. बाउंडरी सेटलमेंट ऑफ़ीसर कप्तान ब्रूस साहब ने सिरोहीराज्य के भीतर के भटाना और पादर, भटाना और मकावल, भटाना पद्रूडा, वीकनवास और रेवदर, वीकनवास और मलावा तथा भटाना और बूटडी के बीच की सरहदें तै कीं.

सं० १९५६ चैत्र सुदि १४ (ता० २४ एप्रिल सन् १८९९ ई०) को इनकी बड़ी महाराणी (दांतावालों) का स्वर्गवास हुआ.

हिन्दुस्तान के वाइसराय और गवर्नरजनरल लॉर्ड कर्ज़न साहब से ख़ानगी मुलाक़ात करने के लिये महारावजी साहब, रेज़िडेंट कर्नल येट साहब तथा अपने अमले सहित ता० १३ जुलाई सन् १८९९ ई० (वि० सं० १९५६ आषाढ सुदि ५) को पींडवाड़ा स्टेशन से मेल ट्रेन द्वारा विदा हुए और अलवर के महाराजा जयसिंहजी साहब की तरफ़ का आग्रह

होने के कारण ता० १४ जुलाई को अलवर स्टेशन पर उतरे, जहांपर महाराजा साहब के दीवान बालमुकुंद, रायबहादुर ठाकुर मंगलसिंह गढ़ीवाले तथा राज्य के अन्य प्रतिष्ठित पुरुष इनकी पेशवाई के लिये उपस्थित थे. रेल से उतरते ही १५ तोपों की सलामी हुई. फिर महारावजी साहब शहर में पधारे और एक दिन वहां के गेस्टहाउस में ठहरे. महाराजा साहब वहां पर न थे जिससे उनका मिलना नहीं हुआ. अलवर से देहली होते हुए ये ता० १७ को शिमले पहुंचकर महाराजा साहब कूचबिहार के कैनेड़ी हाउस में ठहरे. ता० १६ जुलाई को गवर्नमेन्ट हिंद के फॉरिन सेक्रेटरी मि० बर्न्स साहब से, ता० २० जुलाई को कप्तान डेली साहब (डिप्टी सेक्रेटरी फॉरिन डिपार्टमेंट) से और ता० २० जुलाई के दिन हिन्दुस्तान के कमाण्डर इनचीफ़ (फौजी लाट) जनरल लॉकहर्ट साहब से महारावजी साहब ने मुलाक़ात की. दूसरे दिन फौजी-लाट साहब ने महारावजी साहब की वापसी मुलाक़ात की. ता० २२ को महारावजी साहब, मि० बर्न्स साहब, कप्तान डेली साहब तथा पंजाब के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर डबल्यु मैकवर्थ यंग साहब से मुलाक़ात करने को पधारे ता० २४ जुलाई के दिन ये लार्ड कर्ज़न साहब की मुलाक़ात को पधारे. तो जहां घोड़े से उतरे वहांतक कप्तान बेकरकार साहब (वाइसराय के एडीकांग) ने तथा छठी सीढ़ी चढ़े जहांपर वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी मि० वाल्टर लॉरेन्स साहब ने इनकी पेशवाई की और मुलाक़ात के कमरे में पहुंचने पर लॉर्ड कर्ज़न साहब ने १० क़दम आगे बढ़कर

महारावजी साहब का स्वागत कर हाथ मिलाया और मिज़ाज़पुरसी की. फिर महारावजी साहब दाहिनी ओर की कुर्सी पर बिराजे. कुछ देर तक वाइसराय साहब के साथ बातचीत होने बाद ये पीछे अपने स्थान को लौटे. लौटते समय वेही रस्में बर्ती गईं, जो इनके जाते वक़ हुई थीं. फिर इनकी तरफ़ से आबू का एक आलबम् तथा सिरोही के बने हुए कितने एक शस्त्र वाइसराय साहब को भेट किये गये, जिनका उन्होंने शुक्रिया अदा किया.

ता० १४ अगस्त तक इनका वहीं बिराजना हुआ. ता० १५ अगस्त को शिमले से प्रस्थान कर ता० १६ को आगरा के स्टेशन पर पहुंचे, जहांपर भरतपुर के महाराजा रामसिंह, मेजर हर्बर्ट साहब पोलिटिकल एजंट भरतपुर आदि सहित पेशवाई को आये हुए थे. महाराजा साहब के आग्रह के कारण महारावजी साहब उनकी मिहमानदारी स्वीकार कर भरतपुर की कोठी पर, जो आगरे में है, एक दिन बिराजे. दूसरे दिन महाराजा साहब भरतपुर के साथ ये [illegible]नपुर पधारे,
१८
जहां के रेलवे स्टेशन पर भरतपुर कौन्सिल के मेंबर अ[illegible] ने पेशवाई की. ट्रेन वहां पर रात को पहुंची थी, इसलिये तोपों की मामूली सलामी दूसरे दिन प्रातःकाल हुई. महाराजा साहब की तरफ़ से इनकी बड़ी खातिर हुई. फिर भरतपुर से विदा होकर ता० १९ को नव बजे ये जयपुर पधारे, जहां के स्टेशन पर जयपुर के महाराजा माधवसिंहजी साहब, वहां के रेज़िडेंट साहब तथा सर्दार आदि सहित इनकी पेशवाई को उपस्थित थे. ट्रेन से उतरते ही महाराजा साहब व रेज़िडेंट साहब आदि

से मुलाक़ात हुई और तोपों की मामूली सलामी हुई, जिसके बाद महारावजी साहब शहर में पधारे. दिन में दोनों राजाओं की स्नेह के साथ मुलाक़ातें हुईं.

ता० २० तक इनका वहीं विराजना हुआ. महाराजा साहब जोधपुर ने ठाकुर शिवनाथसिंह वकील राज्य मारवाड़ को जयपुर भेजकर जोधपुर पधारने का इनको आग्रह किया, जिससे इन्होंने सांभर की झील देखते हुए जोधपुर जाना स्वीकार किया और रात की ट्रेन से जयपुर से प्रस्थान कर सांभर पहुंचे. दूसरे दिन सांभर की झील व नमक का कारख़ाना मुलाहज़े फ़रमाया. सांभर में इनकी मिहमानदारी का सब प्रबंध महाराजा साहब जोधपुर की तरफ़ से हुआ †. ता० २२ को दिन के पौने दो बजे महारावजी साहब, जोधपुर के स्टेशन पर पहुंचे, जहांपर महाराजा साहब जोधपुर, महाराज प्रतापसिंहजी तथा कई सर्दार आदि सहित पेशवाई के लिये उपस्थित थे. रेल से उतरने पर महाराजा साहब आदि से मुलाक़ात हुई और तोपों की सलामी सर हुई. फिर दोनों राजा गाड़ी में बैठकर रेज़िडेन्सी के बंगले पर पधारे, जहां महारावजी साहब का मुक़ाम हुआ. ता० २३ के दिन दोनों राजाओं की सरिश्ते की मुलाक़ातें हुईं. यहीं संजेली के प्रिन्स रणजीतसिंहजी

† इस समय किशनगढ़ के महाराजा मदनसिंहजी साहब तथा बीकानेर के महाराजा गंगासिंहजी साहब की तरफ़ से इनको किशनगढ़ तथा बीकानेर पधारने का बहुत कुछ आग्रह हुआ था, परन्तु समय कम होने तथा वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) के बड़े कहत के आसार नज़र आने लग गये थे, जिससे सिरोही लौटने की त्वरा होने के कारण इनका वहां पधारना न होसका,

ने भी महारावजी साहब से मुलाक़ात की. उसी दिन रात की ट्रेन से चलकर ता० २४ को इनका सिरोही पधारना हुआ. उस समय भी महाराजा साहब इनको पहुंचाने के लिये स्टेशन तक पधारे थे.

ता० १० अक्टूबर सन् १८९९ ई० (वि० सं० १९५६ आश्विन सुदि ६) को साह मिलापचन्द दीवान के पद से फिर अलग हुआ और उस जगह पर फिर सिंघी जवेरचन्द मुक़र्रर किया गया.

वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) में वर्षा बिलकुल न हुई और उससे पहिले के वर्ष में भी बारिश की कमी ही रही, जिससे बड़ा भारी क़हत पड़ा. इस वर्ष पानी के अभाव से घास बिलकुल ही न हुई और खेती भी न होसकी. बूढ़े आदमी ऐसा कहते थे, कि पिछले ८० बरसों में ऐसा भयानक क़हत कभी नहीं पड़ा. महारावजी साहब ने इस क़हत के समय अपनी प्रजा की रक्षा का बड़ा यत्न किया. जानवरों को बचाने के लिये घास के गोदाम जगह जगह खुलवा दिये, जहां से ग़रीबों को मुफ्त में घास मिलती रही, परन्तु इस राज्य में पशुओं की संख्या बहुत अधिक होने के कारण सबको बचाना सर्वथा असंभव था. लोगों ने घास के न मिलने पर सब तरह के दरख्तों के पत्ते तक पशुओं को खिला दिये तो भी हज़ारों गाय, बैल, भैंस वग़ैरह जानवर मरगये और कितने ही को भील, मीने वग़ैरह जंगली लोग मारकर खागये. ग़रीब लोगों को बचाने के लिये कई जगह पर सदाव्रत खोले गये, कितने ही किसानों को उनके बोहरों से मदद दिलाई गई, जो लोग

मिहनत करने के लायक थे, उनको कमठानों (इमदादी कामों) पर लगा दिये गये और कमज़ोर व बीमारों को मुफ्त में खाना दिया जाने लगा. ग़रीबों के लिये खराड़ी से कुछ दूर पर चंडेला तालाब, रोहेड़ा से थोड़े मीलपर भूला गांव के पास के तालाब, पींडवाड़ा के पास डायमंडजुबिली टैंक और सिरोही के पास मानसरोवर तालाब वग़ैरह का काम छेड़ा गया, जहांपर हज़ारों मनुष्यों को मज़दूरी पर अपना निर्वाह करने का मौक़ा मिल गया. आबू पर के ग़रीबों को सस्ता नाज मिलने के लिये जो दुकान खोली गई उसके फंड में भी ६००) रुपये महारावजी साहब ने दिये. क़हत के प्रबंध की निगरानी के लिये मि० नाइट साहब ख़ास अफ़सर मुक़र्रर हुए, जो लोगों को जगह जगह कमठानों आदि से मदद पहुंचाते रहे. कर्नल वाइली साहब रेज़िडेंट वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स स्वयं क़हत के बंदोबस्त व लोगों की हालत देखने के लिये कर्नल जे० डनलोप स्मिथ साहब को, जो राजपूताने के फैमिन (क़हत) के कमिश्नर थे, साथ लेकर ता० १७ फरवरी सन् १९०० ई० (वि० सं० १९५६) को सिरोही आये और यहां का प्रबंध देखकर प्रसन्न हुए. इस क़हत में ग़रीबों को मदद देने की इच्छा से २०००००) रुपये कल्दार ४) रुपये सैकड़ा सालाना सूदपर सर्कार अंग्रेज़ी से कर्ज़ लिये गये, जो सब क़हत के कामों में ख़र्च किये गये. महारावजी साहब के इस सुप्रबंध का फल यह हुआ, कि राजपूताने के कई दूसरे राज्यों के मुक़ाबले में सिरोही की प्रजा बहुत कम मरी. इस

क़हत से क़रीब एक वर्ष बाद ई० स० १९०१ (वि० सं० १९५७) में मर्दुमशुमारी हुई, जिससे मालूम होगया, कि पहिले (सन् १८९१ ई०) की मर्दुमशुमारी से इस समय फ़ी सैकड़ा केवल १९ मनुष्य इस राज्य में कम हुए, जब कि राजपूताने के कितने ही दूसरे राज्यों में फ़ी सैकड़ा २० से ४५ तक कम हुए थे. प्रजा की कमी के हिसाब से जयपुर, भरतपुर, धौलपुर, करौली और अलवर इन पांच राज्यों के बाद, जहां पर क़हत साधारणसा ही था, सिरोही का नंबर आता है. इससे स्पष्ट है, कि यहां की प्रजा को अच्छा सहारा मिला था. सन् १९०१ ई० की मर्दुमशुमारी में फ़ी सैकड़ा १९ मनुष्यों की कमी पाई गई, वह भी केवल इस क़हत से नहीं, किन्तु वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) में वर्षा अधिक होजाने से बुख़ार की बीमारी क़रीब क़रीब सब गांवों में बड़े ज़ोर से हुई, जिससे तथा कई जगह हैज़ा फैल जाने से भी हज़ारों मनुष्य मरगये थे. इस क़हत का पूरा ज़ोर वि० सं० १९५७ के श्रावण तक बना रहा. फिर वृष्टि के होने पर काश्तकारों को अच्छी तरह तक़ावी दीगई और जिनके पास बैल न रहे, उनको बैल ख़रीदवा कर दिलाये गये, जिससे श्रावण से ही बहुतसे लोग पीछे खेती के काम पर लग गये.

इसी साल में भटाणे के ठाकुर भारतसिंह का, जो ठाकुर नाथूसिंह का पुत्र था, देहान्त हुआ और महारावजी साहब ने 'इम्पीरिअल हेल्थ इन्स्टीटयूट ऑफ इंडिआ' के चंदे में ८०००) रुपये देना स्वीकार किया, परन्तु पीछे से उस इन्स्टीटयूट का बनना मुल्तवी रहा, जिससे वे

रुपये भेजे नहीं गये.

वि० सं० १९५७ वैशाख सुदि १२ (ता० २६ एप्रिल सन् १९०० ई०) के दिन जोधपुर के महाराजा सर्दारसिंह जसवंतपुरे को जाते हुए अपने ज़नाने सहित सिरोही पधारे और राज्य की तरफ़ से उनकी मिहमानदारी हुई. दूसरे दिन वे जसवंतपुरे को बिदा हुए. इस समय महारावजी साहब आबू पर बिराजते थे, जिससे महाराजा साहब से इनकी मुलाक़ात नहीं हुई.

महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब की सगाई पहिले प्रतापगढ़ की राजकुमारी से हुई थी, जिसके टीके का सामान लेकर प्रतापगढ़ दर्बार की तरफ़ से जांतला का ठाकुर उदयसिंह आया और आषाढ सुदि ३ (ता० ३० जून सन् १९०० ई०) के दिन खराड़ी मुक़ाम पर टीके का दस्तूर हुआ. फिर महारावजी साहब ने मोदी सोनमल को प्रतापगढ़ भेजकर विवाह करने की ताकीद कराई, परन्तु महाराजा साहब प्रतापगढ़ ने उसको स्वीकार न किया, जिससे वहांका विवाह मुल्तवी रहा.

कार्तिक सुदि ३ (ता० २६ अक्टूबर सन् १९०० ई०) के दिन छोटे महाराजकुमार लक्ष्मणसिंह का स्वर्गवास कंठ की बीमारी से हुआ, जिसका बहुत ही रंज महारावजी साहब के चित्तपर रहा.

ई० स० १८५३ और १८७० में पालनपुर तथा दांता की सिरोही राज्य के साथ की सरहदें कायम की जाकर जो मीनारे बनवाये गये थे, उनमें से कितने एक उनके नक़्शों के अनुसार नहीं थे, ऐसा मालूम

होने पर महारावजी साहब ने सरहद के मीनारे नक़्शों के अनुसार ठीक कराने के लिये इस साल (वि० सं० १६५७) में सर्कार अंग्रेज़ी से लिखा पढ़ी शुरू की और साह मिलापचन्द को इस काम की पैरवी के लिये मुक़र्रर किया, परन्तु इसमें कुछ भी कामयाबी हासिल न हुई.

इसी साल दीवान सिंघी जवेरचन्द को क़हत का अच्छा प्रबन्ध करने के लिये रायबहादुर का ख़िताब सर्कार अंग्रेज़ी की तरफ़ से मिला; ट्रांसवाल की लड़ाई में जो सिपाही मारे गये, उनकी विधवा स्त्रियों तथा बच्चों की सहायता के लिये जो फंड खोला गया, उसमें महारावजी साहब ने ३०००) रुपये तथा आबू के ग़रीबों की सहायता के फण्ड में १०००) रुपये दिये. इसी साल सिरोही के डाकख़ाने में तार लगा, जिससे डाकख़ाना कम्बाइंड ऑफ़िस बना.

श्रीमान् हिज़ रॉयल हाइनेस ड्यूक ऑफ सेक्स कॉबर्ग एण्ड गोथा † के स्वर्गवास की ख़बर आने पर महारावजी साहब ने ता० ७ अगस्त के दिन श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ के पास वाइसराय साहब हिंद की मारफ़त अपनी तरफ़ की मातमी व हमदर्दी ज़ाहिर करनेवाला तार भेजा, जिसकी पहुंच श्रीमती भारतेश्वरी की तरफ़ के धन्यवाद के साथ आई. संवत् १६५७ (ई० स० १६००) की साल में वर्षा बहुत ही अच्छी हुई, जिससे खेती की पैदावारी भी खूब हुई, परन्तु लोगों में बुख़ार की बीमारी विशेषरूप से फैल

† ये श्रीमती भारतेश्वरी के द्वितीय पुत्र थे और 'ड्यूक आफ़ एडिनबरा' नाम से प्रसिद्ध थे.

जाने से वे खेती की पैदावारी को पूरे तौर से लेने न पाये.

ता० २२ जनवरी सन् १९०१ ई० (वि० सं० १९५७) के दिन श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ का स्वर्गवास हुआ. इस शोकसूचक घटना की ख़बर मिलते ही महारावजी साहब ने ७ दिन तक अदालतें वगैरह बंद रखने, राज्य की घड़ी व नक्कारखाना न बजाने तथा इलाके भर में एक महीने तक शोक पालने की आज्ञा दी और इस घटना पर अपनी तरफ़ का शोक ज़ाहिर करने तथा शाही ख़ानदान के साथ सहानुभूति प्रकट करने का तार वाइसराय साहब की मारफ़त विलायत भेजा. २७ जनवरी को ग़मी की ८१ तोपों (मिनिटगन्) के फैर किये गये. ता० ४ फरवरी को श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की गद्दीनशीनी होने की ख़ुशी में १०१ तोपों की सलामी सर हुई और ता० २५ फरवरी को एक दर्बार सिरोही में हुआ, जिसमें राज्य के बहुतसे छोटे बड़े जागीरदार व अहलकार आदि उपस्थित थे. इस दर्बार में राजभक्ति व श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की गद्दीनशीनी की ख़ुशी प्रकट कीगई और स्पीचें हुई.

ता० २० जून सन् १९०१ ई० (वि० सं० १९५८ आषाढ सुदि ४ को किशनगढ़ के महाराजा मदनसिंहजी साहब अपने चचा रघुनाथसिंह व दीवान बाबू रावबहादुर श्यामसुंदरलाल, सी. आई. ई. आदि के साथ आबू से लौटते हुए सिरोही पधारे और ता० २३ जून तक सिरोही में ठहरने बाद ता० २४ को अपनी राजधानी को लौटगये.

ता० २९ जून सन् १९०१ ई० (वि० सं० १९५८ आषाढ सुदि ४) को डूंगरपुर के महारावल विजयसिंहजी साहब आबू से लौटते हुए सिरोही पधारे और ता० ३० जून के दिन सिरोही से डूंगरपुर को प्रस्थान किया.

ता० ९ नवम्बर सन् १९०१ ई० (वि० सं० १९५८) के दिन श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की तरफ़ से महारावजी साहब को जी. सी. आई. ई. (G C I E) का बड़े सन्मान का खिताब मिला, जिसकी सूचना तथा मुबारिकबादी का तार हिन्द के वाइसराय लॉर्ड कर्ज़न साहब की तरफ़ से उसी दिन मिला, जिसपर १५ तोपों की सलामी सर होकर बड़ी खुशी मनाई गई.

वि० संवत् १९५८ मार्गशीर्ष वदि १२ (ई० स० १९०१) को महारावजी साहब का चौथा विवाह भिनाय (अजमेर में) के इस्त-मरारदार राजा मंगलसिंह राठौड़ की कुंवरी के साथ हुआ. बरात मार्गशीर्ष वदि ११ को पींडवाड़ा स्टेशन से स्पेश्यल ट्रेन द्वारा विदा हुई और मार्गशीर्ष वदि ऽऽ को वहां से लौट आई. वि० सं० १९५८ की साल में बारिश कम हुई, जिससे कुछ क़हत सा ही रहा, परन्तु घास के पैदा होजाने से विशेष आपत्ति न रही.

ता० ९ अगस्त सन् १९०२ ई० (वि० सं० १९५९) को श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की गद्दीनशीनी का उत्सव विलायत में हुआ, जिस दिन सिरोही में भी खुशी मनाई गई.

हिन्दुस्तान के वाइसराय और गवर्नरजनरल लॉर्ड कर्ज़न साहब आबू पर आनेवाले थे, इसलिये महारावजी साहब ने उनके सन्मान का सब प्रबंध पहिले से करा दिया. फिर ये अपने महाराजकुमार तथा कितने ही सर्दार आदि के साथ खराड़ी पधारे. ता० २० नवम्बर सन् १९०२ ई० (वि० सं० १९५९ मार्गशीर्ष वदि ५) के दिन सात बजे वाइसराय साहब की स्पेश्यल ट्रेन आबूरोड स्टेशन पर पहुंची. उस समय महारावजी साहब अपने महाराजकुमार, राजसाहब जोरावरसिंह (अजारीवाले), राज शिवनाथसिंह (मंडारवाले) तथा दीवान जवरचन्द आदि सहित स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे. वाइसराय साहब ने गाड़ी से उतरते ही महारावजी साहब तथा महाराजकुमार से हाथ मिलाकर मिज़ाज़पुरसी की और महारावजी साहब ने अपने राज्य में उनके पधारने की ख़ुशी ज़ाहिर की. फिर केसरगंज की कोठी पर थोड़ी देर तक ठहरे और नास्ता करने बाद आबू को विदा हुए. महारावजी साहब भी कुछ देर बाद आबूपर पधारे और उसी दिन राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल साहब की कोठी पर वाइसराय साहब से मुलाक़ात हुई. रात को महारावजी साहब की तरफ़ से उनको दावत दीगई, जिसमें आबू पर के सब अंग्रेज़ अफ़सर निमंत्रित किये गये थे.

वाइसराय साहब आबू पर देलवाड़ा के भव्य मंदिरों को (जो करोड़ों रुपयों की लागत से बने हुए हैं और जिनमें कारीगरी का बहुत ही उत्तम काम बना है) तथा वहां की कुदरती शोभा का

देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए. वाइसराय साहब ने पुरानी चीज़ों की क़दरदानी के कारण देलवाड़ा के मंदिरों का जो जो हिस्सा टूटा हुआ था भद्दी तरह से दुरुस्त किया हुआ पाया गया, उसको उसकी असली हालत में ही पीछा बनवाने की राय ज़ाहिर की, जिसपर जैनधर्मावलंबियों ने उसकी दुरस्ती का काम थोड़े ही समय बाद शुरू करवा दिया और दवे हरीशंकर सिरोहीवाले की निगरानी में जितना काम नया बना, वह ऐसा सुन्दर और सफ़ाई के साथ बना है, कि नये और पुराने का पहिचाना जाना मुश्किल है.

ता० २१ नवम्बर को ९ बजे वाइसराय साहब महारावजी साहब की वापसी मुलाक़ात के लिये सिरोही की कोठी पर पधारे. इन दोनों समय की मुलाक़ातों में दस्तूर के मुआफ़िक मामूली रस्में अदा हुईं. उसी रोज ढाई बजे महारावजी साहब और ४ बजे वाइसराय साहब आबू से वापस आबूरोड पधारे. फिर शाम को वाइसराय साहब महारावजी साहब की केसरगंज की कोठी पर पधारे और वहीं भोजनादि से निवृत्त होकर रात के १० बजे अपनी स्पेश्यल ट्रेन से जोधपुर को विदा हुए.

श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की तख़्तनशीनी का दर्बार हिन्दुस्तान में ता० १ जनवरी सन् १९०३ ई० (वि० सं० १९५९ पौष सुदि ३) को देहली में होना तजवीज़ हुआ, जिससे वहां पधारने के लिये वाइसराय साहब की तरफ़ का निमंत्रण ता० १९ मार्च सन् १९०२ ई०

(वि० सं० १९५७ चैत्र वदि ८) को आने पर महारावजी साहब ने उक्त दर्बार में पधारना स्वीकार किया. इस दर्बार के लिये अपने कैम्प वगैरह का बंदोबस्त करने के लिये असिस्टेंट दीवान महता मगनलाल पहिले ही से देहली भेजा गया, जिसने कैम्प की सजावट आदि का प्रबन्ध बड़ी उत्तमता के साथ किया.

ता० १९ दिसम्बर सन् १९०२ ई० (वि० सं० १९५७ पौष सुदि ५) को महारावजी साहब स्टेशन पींडवाड़ा से स्पेश्यल ट्रेन में सवार होकर, मेजर के. डी. अर्सकिन् साहब रेज़िडेंट वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स (जो स्टेशन मारवाड़ जंकशन से शामिल हुए), कालंद्री के ठाकुर पृथ्वीराज, मांडवाड़ा के ठाकुर डूंगरसिंह, बरलूट के ठाकुर रावतसिंह, दीवान साह जवेरचन्द (रायबहादुर), रेविन्यु कमिश्नर सिंघी समरथमल, प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू सरच्चन्द्रराय चौधरी, सिंघी पूनमचन्द (रेज़िडेन्सी वकील राज्यसिरोही) आदि सहित ता० २० दिसम्बर को दिन के ग्यारह बजे देहली के रोहिला सराय के स्टेशन पर पहुंचे, जहां पर देहली के डिप्टी-कमिश्नर तथा मेजर बर्कली साहब ने इनकी पेशवाई की और १५ तोपों की सलामी सर हुई. ता० २९ दिसम्बर को लॉर्ड कर्ज़न साहब देहली पधारनेवाले थे और उसी दिन हाथियों की सवारी निकलने वाली थी, जिससे वाइसराय साहब की स्पेश्यल ट्रेन के वहां पहुंचने के पहिले सब राजा, रईस आदि उनकी पेशवाई के लिये देहली के सदर स्टेशन पर सुशोभित हुए, जहां पर महारावजी साहब भी पधारे. ११½ बजे

लॉर्ड कर्ज़न साहब की स्पेश्यल ट्रेन देहली के स्टेशन पर पहुंची और उन्होंने गाड़ी से उतरकर सब राजाओं वग़ैरह से मुलाक़ात की. श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय ने भी अपनी तरफ़ से अपने छोटे भाई श्रीमान् हिज़ रॉयल हाइनेस ड्यूक ऑफ कॉनॉट साहब को भेजा था. वे भी उसी समय स्टेशन पर स्पेश्यल ट्रेन से पधारे, जहां से हाथियों की सवारी बड़े ठाठ के साथ निकली, जिसमें सबसे आगे बराबरी में चलनेवाले दो हाथियों पर लॉर्ड कर्ज़न साहब तथा ड्यूक ऑफ कॉनॉट साहब सपत्नीक बिराजे हुये थे. पीछे के हाथियों पर हिन्दुस्तान के क़रीब क़रीब सब मुख्य मुख्य राजा सवार थे.

इस दर्बार के लिये देहली से कुछ माइल की दूरी पर 'एम्फिथियेटर' नाम का एक सुन्दर और बहुत ही बड़ा मंडप लकड़ी का बनाया गया था, जिसमें ता० १ जनवरी के दिन हिन्दुस्तान के राजा, ज़मीदार, धनाढ्य, प्रतिष्ठित व विद्वान् पुरुष एवं यूरोपिअन अफ़सर, लेडियां, कई पर्दनशीन स्त्रियां तथा विदेशी राजदूत आदि अपने अपने नियत स्थान पर बिराजे. फिर नियत समय पर श्रीमान् ड्यूक ऑफ कॉनॉट साहब तथा लॉर्ड कर्ज़न साहब पधारे और वे अपने नियत स्थान पर बिराजे. इस बड़े दर्बार में लॉर्ड कर्ज़न साहब ने श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की तख़्तनशीनी की खुशी ज़ाहिर करनेवाली एक बड़ी स्पीच दी, जिसका छपा हुआ उर्दू तर्जुमा पहिले ही से सबको मिलचुका था. फिर सब राजाओं ने वाइ-

सराय साहब के तथा ड्यूक ऑफ़ कॉनॉट साहब के पास जाकर उनसे अपनी तरफ़ की मुबारिकबादी श्रीमान् भारतेश्वर के पास पहुंचाने के लिये निवेदन किया, जिसके बाद दर्बार बर्ख़ास्त हुआ.

इस दर्बार के समय देहली में हिमालय से लगाकर कन्याकुमारी तक और बिलोचिस्तान से बर्मा तक के निवासियों की बड़ी भीड़ थी और शहर के चौतरफ़ कई माइल तक मानो तंबुओं का शहर ही बन गया था. इस समय इस शहर की जैसी शोभा थी, वैसी बादशाह अकबर के समय में भी नहीं हुई होगी.

इस दर्बार की ख़ुशी में राजधानीसिरोही में महाराजकुमार साहब ने दर्बार किया, १०१ तोपों की सलामी सर हुई, राज्यभरमें रोशनी हुई, उस दिन उत्सव मनाया गया, अदालतों वग़ैरह में छुट्टी रही, पाठशाला के विद्यार्थियों को मिठाई बांटी गई, ग़रीबों को खाना खिलाया गया, १५ क़ैदी छोड़े गये और ५५ क़ैदियों की मिआद घटा दीगई.

ता० २ जनवरी की रात को महारावजी साहब आतिशबाज़ी देखने के लिये जामामसजिद पर पधारे. ता० ३ जनवरी को देहली के क़िले के भीतर दीवानेआम में दर्बार हुआ, जिसमें जिन २ को थोड़े समय पहिले ख़िताब मिले थे, उनको उनके तग़मे वग़ैरह पहिनाये गये. महारावजी साहब को भी ता० ९ नवम्बर सन् १९०१ ई० को जी. सी. आई. ई. (G. C. I. E.) का ख़िताब मिला था, जिसका तग़मा वग़ैरह इस

दर्बार में पहिनाया गया. ता० ६ जनवरी को वाइसराय साहब के कैंप में गार्डनपार्टी का जलसा हुआ, जिसमें महारावजी साहब भी पधारे. ता० १० जनवरी को लॉर्ड कर्ज़न साहब व ड्यूक ऑफ कॉनॉट साहब देहली से विदा हुए, जिनको पहुंचाने के लिये महारावजी साहब देहली के स्टेशन पर पधारे, जहांपर बहुधा दूसरे सब राजा, जो इस दर्बार में पधारे थे, उपस्थित हुए थे †.

इस देहलीदर्बार के समय वहां पर करौली के महाराजा साहब भंवरपालदेवजी, बड़ोदा के महाराजा साहब सयाजीराव गायकवाड़, कश्मीर के महाराजा साहब प्रतापसिंहजी, डूंगरपुर के महारावल विजयसिंहजी साहब तथा किशनगढ़ के महाराजा साहब मदनसिंहजी आदि राजाओं से महारावजी साहब की मुलाक़ात हुई और श्रीमान् महाराणा साहब उदयपुर का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण महारावजी साहब ने सिंघी समरथमल को मिजाज़पुरसी के वास्ते भेजा.

ता० १२ जनवरी को महारावजी साहब देहली से विदा होकर आगरा पहुंचे और वहां से हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन और गोकुल आदि की यात्रा करते हुए ता० १७ फरवरी को सिरोही लौटना हुआ. इस यात्रा में महाराणी (राठौड़जी, भिनायवाले) तथा तीनों राजकुमारियां साथ थीं, जो आगरे के मुक़ाम पर शरीक हुई थीं.

---

† इस देहली दर्बार का सविस्तर वृत्तान्त दर्बारसम्बन्धी अन्य पुस्तकों में छप चुका है. यहां पर तो उसका दिग्दर्शनमात्र ही कराया गया है.

वि० सं० १९६० आषाढ वदि ७ (ता० १७ जून सन् १९०३) को रायबहादुर सिंघी जवेरचन्द ने बीमारी के कारण दीवान के पद से इस्तीफ़ा दिया, जिससे साह मिलापचन्द फिर दीवान हुआ, परन्तु तीन महीने बाद उसकी जगह पर मौलवी मुहम्मदनूरुलहसन बी० ए० दीवान मुक़र्रर हुआ.

देहली दर्बार की यादगार के ३ तग़मे सर्कार हिंद की तरफ़ से आये, जिनमें से एक सोने का महारावजी साहब के वास्ते और २ चांदी के सर्दारों के लिये थे. ता० १ जुलाई सन् १९०३ (वि० सं० १९६०) के दिन सिरोही में दर्बार कर महारावजी साहब ने चांदी का एक तग़मा कालंद्री के ठाकुर पृथ्वीराज को और दूसरा मांडवाड़ा के ठाकुर डूंगरसिंह को बख़्शा.

ई० स० १९०३ (वि० सं० १९६०) के अक्टूबर महीने में महारावजी साहब ने प्रयाग और काशी की यात्रा की.

वि० सं० १९६० (ई० स० १९०४) फाल्गुन वदि ८ को महाराजकुमार नारायणसिंह का जन्म महाराणी राठौड़जी (भिनायवालों) से हुआ और फाल्गुन सुदि १४ को उक्त महाराणी का स्वर्गवास होगया.

इसी वर्ष राजपूताने के महकमे आबपाशी के कन्सल्टिंग इंजीनिअर कर्नल सर स्विंटन जैकब साहब और सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर मि० मैनर्सस्मिथ साहब सिरोही राज्य में आबपाशी के लिये तालाब

बनाने के मौकों की तहकीकात करने को आये और कई जगह देखभाल कर कितने एक तालाब बनाने की राय दी और उनके नक़्शे आदि तय्यार कर भेजे.

सिरोहीराज्य में ज़मीन की पैदावारी में से नाज का हिस्सा लिया जाता है और यह बड़ा काम कम तनख्वाहवाले अहलकारों के ही सुपुर्द रहता है, जिससे उसकी पूरी आमदनी राज्य में जमा होती हो, इसमें संदेह ही रहता है, अतः आमद के इस मुख्य सीगे की दुरुस्ती कर सेटलमेंट यानी बन्दोबस्त जारी करने और नाज के एवज़ में न-क़द रुपये लेने का विचार महारावजी साहब कर रहे थे, परन्तु यहां के किसान इसके फ़ायदे को नहीं समझते, इसलिये इसी वर्ष से महा-रावजी साहब ने कितने ही गांवों में ब्राह्मण, महाजन आदि को कुएं नक़द दाम लेने की शर्त पर ठेके दिलाने का प्रबन्ध किया और यह काम रेविन्यु कमिश्नर के नायब लल्लूभाई देसाई के सुपुर्द हुआ.

इस राज्य में अबतक भीलाड़ी रुपया चलता था, जिसका भाव चांदी के भाव के साथ घटता बढ़ता रहता था और ब्यौपार की उन्नति के साथ साथ कलदार रुपयों का ख़र्च बढ़ता जाता था, जिससे ब्यौपारियों को हानि पहुंचती थी, जिसको मिटाकर ब्यौपार को तरक्क़ी देने के विचार से महारावजी साहब ने भीलाड़ी रुपये का चलन अपने राज्य में बंद कर उसकी जगह इसी वर्ष से कलदार रुपये का चलन जारी करदिया, जिससे लोगों को सुभीता होगया, अपनी प्रजा के पास

जो भीलाड़ी रुपये थे, वे सब सर्कार अंग्रेज़ी को देकर उनके बदले में कलदार † रुपये दिलाये गये. इसमें भी लोगों को फ़ायदा ही रहा, क्योंकि चांदी सस्ती होजाने के कारण भीलाड़ी रुपये का भाव कभी कभी तो १४०) रुपये से भी अधिक बढ़जाता था.

ता० ६ मई सन् १९०४ ई० (वि० सं० १९६१) को महारावजी साहब ने अपने रेविन्यु कमिश्नर सिंघी समरथमल को पैरों में सोना पहिनने की इज्ज़त बख्शी.

हिन्दुस्तान के वाइसराय और गवर्नरजनरल लॉर्ड कर्ज़न साहब छुट्टी पर विलायत गये थे, जहां से लौटते समय बंबई में जहाज़ से उतरनेवाले थे, इसलिये उनके सन्मान के लिये कितने ही राजा बंबई गये, इस समय महारावजी साहब ने बंबई पधारना निश्चय कर ता० ३० नवंबर सन् १९०४ (वि० सं० १९६१) को महाराजकुमार सरूपसिंहजी, कालंद्री के ठाकुर पृथ्वीसिंह, दीवान मौलवी मुहम्मदनूरुलहसन, प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू सरचंद्रराय चौधरी तथा रेज़िडेन्सी वकील सिंघी पूनमचंद आदि सहित सिरोही से प्रस्थान किया और ता० १ दिसंबर को सुबह के ७ बजे ग्रांटरोड स्टेशन पर पहुंचे, जहां पर बंबई के कलेक्टर मिस्टर ग्रे साहब आदि ने इनकी पेशवाई की और १५ तोपों की सलामी सर हुई.

ता० ५ दिसंबर के दिन ११ बजे बंबई के गवर्नर लॉर्ड लेमिं-

† १२०) रुपये भीलाड़ी के एवज़ में १००) रुपये कलदार मिले.

गटन साहब की मुलाक़ात के लिये महारावजी साहब महाराजकुमार सहित सेक्रेटेरिअट में पधारे और दूसरे दिन गवर्नर साहब महारावजी साहब की वापसी मुलाक़ात को पधारे.

ता० ६ दिसम्बर को लार्ड कर्ज़न साहब ऐपोलो बंदर पर ज़हाज से उतरे, उस समय कई राजा तथा देशी और यूरोपिअन अफ़सर आदि उनका स्वागत करने को एकत्रित हुए थे, जहां पर महारावजी साहब महाराजकुमार सहित पधारे और वाइसराय साहब से मुलाकात की. उसी रात को बंबई के गवर्नर साहब की तरफ़ से 'ऐटहोम' का जलसा हुआ, जिसमें महारावजी साहब और महाराजकुमार साहब दोनों का पधारना हुआ.

ता० ११ दिसंबर को सिरोहीराज्य के हाथल गांव के रहनेवाले ब्राह्मण पीतांबर अखेराज की तरफ़ की मिहमानदारी महारावजी साहब ने बंबई में रहनेवाली अपनी प्रजा को संतुष्ट करने के विचार से स्वीकार फ़रमाई और ता० १३ दिसंबर को बंबई से विदा होकर ता० १४ को आबूरोड पधारे.

महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब का स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण समुद्र की हवा सेवन कराने के लिये महारावजी साहब ने उनको उनके शिक्षक पंडित मंछाराम शुक्ल वग़ैरह सहित ता० ६ जनवरी सन् १६०५ (वि० सं० १६६१) को बंबई भेजा. महाराजकुमार साहब का बिराजना वालकेश्वर के एक बंगले में हुआ

और डाक्टर पिन्नो (F. F. L. Pinno) का इलाज होता रहा और ज़रूर के वक़ डाक्टर कर्नल डिम्मॉक की भी राय लीजाती थी.

ता० २० फरवरी को महारावजी साहब महाराजकुमार साहब को देखने के लिये बंबई पधारे और वहां पर ता० २५ फरवरी के दि प्लेग का टीका खुदवाया. फिर ता० १ मार्च को वापस सिरोही लौटना हुआ।

बंबई के इलाज से महाराजकुमार साहब की तन्दुरुस्ती को फ़ायद हुआ और उन्होंने हाईकोर्ट आदि वहां के प्रसिद्ध स्थान भी देखे तथा पू की भी सैर की. फिर ता० २६ एप्रिल को उनका वापस सिरोही पधारना हुआ

इसी वर्ष महाराजकुमार साहब के वास्ते आबू पर नई कोठी व बनना शुरू हुआ, जिसमें ६५०००) रुपये लगे. इस साल राज्य के ख़ ज़ाने की हालत और भी ख़राब रही और राज्य पर पांचलाख से अधि कर्ज़ा होगया. यह कर्ज़ा सं० १९५६ और १९५८ के क़हत, देहली दर्बा व कमठानों वगैरह दूसरे ख़र्च के कारण हुआ था.

दीवान मौलवी मुहम्मदनूरुलहसन का देहान्त हैज़े की बीमा से होने के कारण ता० १३ सितंबर सन् १९०५ ई० (वि० सं० १९६२ को उसकी जगह महारावजी साहब के प्राईवेट सेक्रेटरी बाबू सरचंद्र राय चौधरी बी० ए० दीवान नियत हुए, जिससे प्राईवेट सेक्रेटरी क जगह पर केशवलाल कृष्णाजी छाया बी० ए०, एल एल० बी० मुक़र्रर हुआ

ता० १७ अक्टूबर सन् १९०५ ई० (वि० सं० १९६२) क महाराजकुमार नारायणसिंह का स्वर्गवास हुआ.

वि० सं० १९६२ मार्गशीर्ष सुदि १३ (ता० १० दिसम्बर सन् १९०५ ई०) को अनन्दकंवर बाई की शादी बांसवाड़े के महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी साहब के साथ हुई. उसी दिन बरात सिरोही पहुंची और ता० १४ को पीछी बांसवाड़े को बिदा हुई.

ता० १२ दिसंबर को महारावजी साहब ने बरलूट के ठाकुर रावतसिंह को पैर में सोना पहिनने की इज़्ज़त बख़्शी.

इसी साल कांगड़ावेली में भूकम्प होने से जो लोग लाचार बन गये थे, उनके लिये महारावजी साहब ने २०००) रुपये दिये.

खराड़ी में देशीखांड बनाने का एक कारख़ाना खोलने के लिये बंबई, अहमदाबाद आदि के व्योपारियों ने एक कंपनी खड़ी की. महारावजी साहब ने अपने राज्य में इस कारख़ाने के जारी होने से अपनी प्रजा को फ़ायदा पहुंचेगा, इस विचार से खराड़ी में उस कारख़ाने के बनने की आज्ञा दी और कंपनी को और भी सुभीता कर दिया, जिससे उस कंपनी के हिस्सेदारों ने उसका नाम 'केसर इंडिअन शुगर मैन्युफैकचरिंग कंपनी' रखना चाहा, जिसको महारावजी साहब ने स्वीकार किया और कंपनी के कार्यकर्त्ताओं के आग्रह से उस कारख़ाने की नीव भी इन्होंने अपने हाथ से वि० सं० १९६३ वैशाख सुदि १२ (ता० ५ मार्च सन् १९०६ ई०) को डाली.

ता० ६ मई को महारावजी साहब महाराजकुमार साहब तथा हेतकंवर व पद्मकंवर बाईजी सहित डुमस (गुजरात में सूरत

के पास समुद्र तट पर) पधारे और अपनी तन्दुरुस्ती के लाभ के लिये ता० २२ जून तक वहीं बिराजकर ता० २३ जून को वापस खराड़ी पधारे.

सं० १९६४ भाद्रपद सुदि १४ (ता० २३ अगस्त सन् १९०६ ई०) को महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब की पढ़ाई (गार्डिअन) के काम पर कप्तान प्रीचर्ड साहब मुक़र्रर हुए.

ता० २८ सितंबर सन् १९०६ ई० को महारावजी साहब अहमदाबाद पधारे, जहां पर कच्छ के महाराव सर खेंगारजी साहब से मुलाक़ात हुई और ता० ३ अक्टूबर को वहां से वापस खराड़ी पधारे.

वि० सं० १९६३ फाल्गुन सुदि ४ (ता० १६ फरवरी सन् १९०७ ई०) को हेतकंवर बाईजी की शादी जैसलमेर के महारावल शालीवाहनजी साहब के साथ हुई.

सन् १९०७ के फरवरी महीने में कालंद्री के ठाकुर पृथ्वीसिंह का देहान्त हुआ. उसके पुत्र न होने के कारण बरलूट के ठाकुर रावतसिंह के चचेरे भाई कानजी को गोद लेने की मंजूरी राज्य से हुई, जिस पर पृथ्वीसिंह की ठकुरानी ने उसको गोद लिया, फिर मोटागाम के ठाकुर लक्ष्मणसिंह ने वहां पर अपना हक़ होना ज़ाहिर कर उस गोद को ख़ारिज कराने का दावा किया, परन्तु उसका दावा ख़ारिज होगया. फिर उसने राज्य के हुक्म की तामील न कर सामना किया, जिससे ता० २४ जनवरी सन् १९१० ई० (पौष सुदि १४ वि० सं० १९६६) को राज्य की फौज मोटागाम पर भेजी गई, जिसमें से एक आदमी

मारा गया और लक्ष्मणसिंह भागकर जोधपुर राज्य में चला गया, जिससे उसके ठिकाने पर राज्य का इंतिज़ाम होगया.

वि० सं० १९६३ चैत्र वदि ७ (ता० ६ मार्च सन् १९०७ ई०) को पद्मकंवर बाईजी की शादी भुज (कच्छ) के महाराव सर खेंगारजी साहब के महाराजकुमार विजयराजजी साहब के साथ हुई. महारावजी साहब ने सर खेंगारजी साहब को इस शादी में पधारने के लिये आग्रह किया और भटाणा के ठाकुर उदयराज व सिंघी जवानमल को निमंत्रणपत्र के साथ भुज को भेजा. विवाह के दिन बरात सिरोही पहुंची, जिसमें कच्छ के महाराव सर खेंगारजी साहब, उनके भाई करणसिंह, छोटे कुंवर मनुभा वगैरह बहुतसे प्रतिष्ठित पुरुष थे. इस शादी की धूमधाम बहुत अधिक रही. ता० १० मार्च (चैत्र वदि ११) को बरात पीछी भुज को बिदा हुई.

इस वर्ष राज्य की आमद बहुत अच्छी हुई, जिससे ऊपर लिखी हुई शादियों का ख़र्च तथा अनुमान १२५०००) रुपये कमठानों पर लगने पर भी क़रीब २७०००) रुपये कर्ज़े में भी दिये गये और मेयोकालेज को बढ़ाने के लिये जो नया मकान बननेवाला था, उसके चंदे में २०००) रुपये दिये गये तथा तीन औरत मिड्वाइफ़री यानी दाई का काम सीखने के लिये राज्य के ख़र्च से अजमेर भेजी गईं.

ता० १३ सितंबर स० १९०७ ई० (वि० सं० १९६४) को कच्छ के महाराव सर खेंगारजी साहब खराड़ी पधारे और वहां से आबूपर

गये, जहांपर महारावजी साहब से उनकी मुलाक़ात हुई. उनका बिराजना १५ रोज तक सिरोहीराज्य में हुआ, उस समय महारावजी साहब की तरफ़ से उनकी बहुत कुछ ख़ातिरदारी हुई. उन्होंने भारजे के पास के रखत में शिकार भी की और बड़े ही प्रसन्न होकर अपनी राजधानी को लौटे.

बांसवाड़े के महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी ता० १९ अक्टूबर सन् १९०७ ई० (वि० सं० १९६४) को सिरोही पधारे. इनका निवास ता० २१ अक्टूबर तक केसरविलास बाग़ के बंगले में रहा. ता० २२ अक्टूबर को वे पीछे बांसवाड़े को लौटे.

महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब का विवाह भुज होनेवाला था, इसलिये महारावजी साहब ने अपने दीवान के असिस्टेंट पण्डित भवानीशंकर दवे को हेतकंवर बाईजी को सिरोही लाने के लिये जैसलमेर भेजा और बाईजी ता० २ नवंबर स० १९०७ (वि० सं० १९६४) को सिरोही पधारे, जहांपर क़रीब ४ मास तक उनका बिराजना हुआ.

वि० सं० १९६४ मार्गशीर्ष वदि १ (ता० २० नवंबर सन् १९०७ ई०) को महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब का विवाह कच्छ के महाराव सर खेंगारजी साहब की राजकुमारी कृष्णकंवर बाईजी के साथ होनेवाला था, जिसकी तय्यारी सिरोही में होने लगी. ता० १० नवंबर से १६ नवंबर तक सिरोही में बड़ा उत्सव रहा. ता० १७

को बरात सिरोही से विदा हुई, जिसमें महारावजी साहब, महाराज कुमार साहब के गार्डिअन कप्तान प्रीचर्ड साहब, राजसाहब जोरावर-सिंह (अजारीवाले), राजसाहब अचलसिंह (नांदिआवाले), राजसा-हब दलपतसिंह (मणादरवाले), कुंवर अमरसिंह (अजारीवाले), कुंवर मानसिंह (मणादरवाले) तथा मंडार, पाडीव, मोटागाम, जा-वाल, मांडवाड़ा, रोउआ, भटाणा आदि के सर्दार और दीवान बाबू सरच्चन्द्रराय चौधरी, कितने ही छोटे बड़े अहलकार तथा कई दूसरे लोग थे. उसी दिन बरात स्पेश्यल ट्रेन से स्टेशन पींडवाड़ा से विदा होकर ता० १८ के प्रातःकाल राजकोट पहुंची, जहांके ठाकुर साहब लखाजी ने अपने अधिकारियों सहित स्टेशन पर बरात की पेशवाई कर सन्मान किया. वहां से ११ बजे ट्रेन जामनगर पहुंची, जहां के जाम रणजीतसिंहजी साहब उन दिनों इंग्लैंड में बिराजते थे, तो भी उनके दीवान साहब तथा कुमार श्रीहरभामजी रवाजी वज़ीर आदि ने स्टेशन पर उपस्थित होकर पेशवाई की और १५ तोपों की सलामी सर होने बाद बड़े आग्रह के साथ बरात का अपने यहां के भावेन्द्रविलास में मुक़ाम करवाकर बड़ी ख़ातिरदारी की. रातको ६ बजे बरात बेड़ीबंदर पर पहुंची, फिर जलमार्ग से ता० १६ को प्रातःकाल नव बजे कच्छराज्य के तूणाबंदर पर पहुंची, जहां पर महाराव साहब कच्छ के प्रतिष्ठित पुरुषों ने पेशवाई की और १५ तोपों की सलामी सर हुई, वहां से रेल पर सवार होकर ४ बजे के क़रीब बरात माधापुर के स्टेशन पर

पहुंची, जो भुज से २ माइल दूर है. वहां पर महाराव सर खेंगारजी साहब अपने महाराजकुमार साहब, राज्य के सर्दार तथा प्रतिष्ठित पुरुषों सहित पेशवाई के लिये पधारे और तोपों की सलामी व मुलाक़ात होने बाद बरात अपने मुक़ाम पर पहुंची. रात के १० बजे महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब की सवारी बड़े जुलूस के साथ महाराव सर खेंगारजी साहब के राजमहलों की तरफ़ चली और १½ बजे विवाह हुआ. ता० २३ नवम्बर को भुज के राजमहलों में और ता० २४ को बरात के मुक़ाम के बंगले पर दर्बार हुए, जिनमें दोनों राजा व दोनों राज्यों के सर्दार और अहलकार आदि उपस्थित थे.

ता० २६ को बरात भुज से रवाने हुई और ता० २८ को सिरोही पहुंची.

ई० स० १९०८ के मार्च महीने में सिरोही में प्लेग की बीमारी हुई, परन्तु उत्तम प्रबन्ध होने के कारण केवल शहर के एक हिस्से में ही रही. सारे शहर में फैलने न पाई.

ता० १४ मई सन् १९०८ (वि० सं० १९६५ वैशाख सुदि १३) को कच्छ के महाराजकुमार विजयराजजी साहब आबू पर तशरीफ़ लाये और महारावजी साहब के मिहमान रहे. वहां से ता० १२ जून के दिन कच्छ को लौटे.

ता० ३० मई सन् १९०८ ई० (ज्येष्ठ वदि ऽऽ वि० सं० १९६५) को बाबू सरच्चंद्रराय चौधरी ने दीवान के पद का इस्तीफ़ा दिया,

जिससे फिर साह मिलापचन्द उसी स्थान पर मुक़र्रर हुआ.

सन् १६०६ ई० के फरवरी महीने में महाराावजी साहब ने पंडित भवानीशंकर दवे को हेतकंवर बाईजी को सिरोही लाने के लिये जैसलमेर भेजा. इस समय बाईजी का क़रीब ८ मासतक सिरोही में बिराजना हुआ, फिर ता० १८ अक्टूबर सन् १६०६ को उनका वापस जैसलमेर को प्रस्थान हुआ. उस समय महारावजी साहब ने अपने पुरोहित हिम्मतराम को बाईजी का कामदार मुक़र्रर कर उनके साथ भेजा.

पहिले सिरोहीराज्य में महक़मे आबकारी का कुछ भी प्रबन्ध न था, जिससे इस सीगे की आमदनी भी विशेष न थी. इन महारावजी साहब ने कितने एक बरसों से शराब बनाने और बेचने का ठेका देने का प्रबन्ध किया था और अफ़ीम बेचनेवालों को राज्य से लाइसन्स हासिल करने की आज्ञा दी थी. इस प्रबन्ध से महक़मे आबकारी की सालाना आमद क़रीब २५०००) रुपये के होने लगी. वि० सं० १९६५ (ई० स० १९०८) में महारावजी साहब ने पण्डित मंछाराम शुक्ल को इस महक़मे का सुपरिंटेंडेंट मुक़र्रर किया, जिसने मद्रास सिस्टम पर शराब बनाने तथा बेचने का प्रबन्ध किया, जिससे दो वर्ष में इस महक़मे की सालाना आमद क़रीब ८५०००) रुपये होगई (इसमें अफ़ीम की आमद शामिल नहीं है), जिसका कारण पण्डित मंछाराम शुक्ल की प्रामाणिकता तथा कार्य्यकुशलता ही है. उक्त पण्डित ने सिरोहीराज्य के लिये क़ानून आबकारी तय्यार कर उसको अंग्रेज़ी व

हिन्दी में छपवा दिया है.

ता० १५ मार्च सन् १९०९ ई० (वि० सं० १९६६) को कच्छ के महाराव खेंगारजी साहब शिकार के लिये खराड़ी पधारे और महारावजी साहब के, जो उन दिनों वहीं थे, मिहमान रहे. फिर भारजा गांव के पास के रखत में शिकार करके ता० २० मार्च को सिरोही पधारे, जहां से ता० २८ मार्च को कच्छ के लिये प्रस्थान किया.

महारावजी साहब को देशाटन अर्थात् सफ़र का बड़ा ही शौक़ है और इनकी गद्दीनशीनी से लगाकर अबतक शायद ही कोई बरस ऐसा निकला हो, कि जिसमें इन्होंने देशाटन न किया हो. हिंदुस्तान के कई हिस्सों की अनेक बार सैर करने बाद अपना तजरबा बढ़ाने के लिये इन्होंने इंग्लैंड देश की, जो इस समय समृद्धि, ब्योपार, विद्या, कलाकौशल, राज्यप्रबंध आदि में सबसे बढ़कर है, सैर करने तथा श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की सेवामें अपनी राजभक्ति प्रकट करने के निमित्त इंग्लैंड जाने का निश्चय कर ता० ६ मई सन् १९०९ ई० (वि० सं० १९६६) को सिरोही से प्रस्थान किया और ता० ७ को बंबई पहुंचे, जहां से ता० १३ मई के दिन ४३/४ बजे (शामके) विक्टोरिआ डॉक में पधारकर डंबिया नामक फ्रान्स के मेल स्टीमर पर सवार होकर इंग्लैंड को विदा हुए.

इस सफ़र में महारावजी साहब के साथ कर्नल आर. एच. रेनिक साहब, महता मगनलाल (बतौर प्राईवेट सेक्रेटरी के) और

४ ख़िदमतगार व रसोइये आदि थे. इंग्लैंड पधारते समय इन्होंने यह भी प्रबंध किया, कि राज्य का काम महाराजकुमार साहब और दीवान साह मिलापचंद दोनों मिलकर करें.

ता० १८ मई को आठ बजे (रात को) स्टीमर ऐडन और ता० १६ के प्रातःकाल वहां से चलकर ता० २३ को स्वेज़ पहुंचा. फिर स्वेज़ की नहर को पारकर ता० २४ को पोर्ट सैद और ता० २८ को शाम के ४ बजे ये मार्सेल्स में पहुंचे. ता० २६ से ३१ मई तक उस शहर के होटल रिजाइना में बिराजना हुआ. उस अरसे में वहां का पब्लिक गार्डन, म्यूज़िअम, पोर्ट्रेट गैलेरी वग़ैरह प्रसिद्ध स्थान तथा पहलवानों की कुश्ती और घुड़दौड़ आदि को देखा. ता० १ जून को मार्सेल्स से वीची पधारे और होटल रिवोली में ठहरना हुआ. वहां का क़िला, कैसेनो थिएटर तथा वीची वॉटर्स नामक चश्मे देखे, जिनके जल तथा बिजली के यन्त्रों की सहायता से कितनीक बीमारियों का मिटना माना जाता है. ता० ३ जून को वहां से एक्स्प्रेस ट्रेन में सवार होकर रात को ८½ बजे फ्रान्स की राजधानी पैरिस नगर में, जो यूरप भर में सबसे अधिक सुन्दर शहर मानाजाता है, पहुंचकर होटल डी लेले में ठहरे. ता० ७ जून तक वहीं बिराजना हुआ. उस समय वहां पर केथीड्रल ऑफ़ नॉटर-डेम, सेंट रोश आदि गिरजाघर तथा डिलावेरे पैलेस, पैलेस रॉयल, ट्युलेरीज़ गार्डन, मिन्टम्यूज़िअम, होटल डी क्लनी, पैलेस डी थॉमस, म्यूज़िअम ऑफ़ आर्टिलरी, पब्लिक स्कैर्स, मॉन्युमेंट्स, नेपोलिअन

बोनापार्ट का मक़बरा आदि अनेक प्रसिद्ध स्थान तथा नेपोलिअन बोनापार्ट के समय इजिप्ट (मिसर) देश से लाया हुआ ६० फीटकी लंबाई का एक ही पत्थर का बना हुआ मीनार (जिसपर पुरानी मिसर देश की लिपिका लेख खुदा हुआ है) आदि देखे.

ता० ८ जून को पैरिस से रवाना होकर महारावजी साहब लंडन के चेरिंगक्रॉस स्टेशन पर उतरे, जहां पर हिन्दुस्तान के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स लॉर्ड मॉर्ले साहब की तरफ़ से उनके पोलिटिकल एडीकाँग कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब ने इनकी पेशवाई की. वहां से इंडिआ ऑफ़िस की गाड़ी में सवार होकर ये सर कर्ज़न वायली साहब के साथ क्वीन एनीस मैन्शन नामक स्थान में पधारे. दूसरे दिन स्टैंडर्ड नामक अख़बार में इनके वहां पधारने की ख़बर छपी, जिसके साथ महारावजी साहब तथा इनके राज्य का भी कुछ कुछ परिचय दिया गया था.

ता० १० जून को भरतपुर के महाराजा साहब किशनसिंहजी इनकी मुलाक़ात को कर्नल हर्बर्ट साहब सहित पधारे और दूसरे दिन ये उनकी वापसी मुलाक़ात के लिये रॉयल पैलेस होटल में पधारे.

महारावजी साहब ने अपने ठहरने के लिये एलम पार्क गार्डेन (साउथ कैन्सिगटन) में एक बंगला किराये पर लिया और ता० १२ जून से वहीं निवास रहा.

ता० १४ जून को लॉर्ड मॉर्ले साहब (सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट्स फॉर इंडिआ) की मुलाक़ात के लिये महारावजी साहब इंडिआ ऑफ़िस

में पधारे. इनकी गाड़ी वहां पर प्राईवेट एन्ट्री की सीढ़ियों के पास ठहरी, जहांपर कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब ने इनकी पेशवाई की. लॉर्ड मॉर्ले साहब के दफ्तर के दरवाज़े पर पहुंचने पर उन्होंने इनका स्वागत किया और अपनी दाहिनी ओर की कुरसी में इनको बिठलाया. फिर मॉर्ले साहब ने इनकी मुलाक़ात की खुशी ज़ाहिर करने बाद इनकी राजभक्ति तथा राज्यप्रबन्ध की प्रशंसा की. फिर इन्होंने भी उनकी मुलाक़ात की खुशी ज़ाहिर कर फ़रमाया कि 'कई बरसों से मेरी यह इच्छा थी, कि इंग्लैंड की सफ़र कर श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की सेवामें उपस्थित होकर अपनी राजभक्ति को प्रकट करूं, जिसका अब मौक़ा मिला है, इसकी मुझे बड़ी खुशी है. हिन्दुस्तान की रियासतों के लिये आपको बड़ी दिलचस्पी है, जिसके लिये वहां के राजा आप के अहसानमंद हैं.'

लॉर्ड मॉर्ले साहब ने इन शब्दों के लिये इनका शुक्रिया अदा कर कहा, कि 'हिन्दुस्तान के राजाओं की मदद करने में मैं केवल अपनी फ़र्ज अदा करता हूं और मेरे कामकी हिन्दुस्तान के राजाओं में क़दर होगी तो मुझे बड़ा संतोष होगा और उनके लिये जो कुछ मुझसे होसकेगा वह करने में मैं सदा प्रवृत्त रहूंगा.' इस पर महारावजी साहब ने सर्कार हिन्द के कामों की प्रशंसा कर फ़रमाया, कि सर्कार हिंद से हम बहुत ही संतुष्ट हैं और लॉर्ड मिन्टो साहब हम पर बड़े मिहरबान और हमदर्दी रखनेवाले वाइसराय हैं. फिर आबू तथा

इंग्लैंड की आबहवा के बारे में बातचीत हुई, जिसमें इन्होंने फ़रमाया कि यहां पर बारिश होने की वजह से मेरी तबिअत ठीक नहीं रहती, इसलिये श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय तथा श्रीमान् प्रिन्स ऑफ़ वेल्स साहब की मुलाक़ात होने बाद में शीघ्र ही हिन्दुस्थान को लौटना चाहता हूं. इस प्रकार एक घंटेतक लॉर्ड मॉर्ले साहब से बातचीत होने बाद ये वहां से लौटे. उस समय लॉर्ड मॉर्ले साहब दरवाज़े तक इनको पहुंचाने को आये. ता० १५ जून के नॉटिंगहाम गार्डिअन नाम के अख़बार में महारावजी साहब की बहुत कुछ प्रशंसा के साथ लॉर्ड मॉर्ले साहब और इनके बीच की मुलाक़ात और बातचीत तथा गवर्नमेंट के अच्छे प्रबन्ध की प्रशंसा तथा इनकी राजभक्ति आदि का हाल छपा.

ता० १७ जून को महारावजी साहब एसकॉट रेसिस देखने को पधारे, जहांपर श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की सरसरी मुलाक़ात का सन्मान प्राप्त हुआ और उसी दिन राजपीपला (नांदोद) के महाराजा छत्रसिंहजी साहब से भी मुलाक़ात हुई.

ता० १८ जून को ये मार्लबरो हाउस के नज़दीक के केल्टन हाउस टैरेस में लॉर्ड कर्ज़न साहब की मुलाक़ात को पधारे. उस समय जहां इनकी गाड़ी खड़ी रही वहांतक वे इनकी पेशवाई को आये और लौटते समय वहीं तक पहुंचा गये. कुछ देर तक उनके साथ मामूली बातचीत होती रही.

ता० १९ जून को विंडसर कैसल में गवर्नमेंट की फौज को निशान (कलर) देने का जलसा था, जिसमें शरीक होने के लिये श्रीमान् भारतेश्वर महोदय की तरफ़ से लॉर्ड स्टुअर्ड ने इंडिआ ऑ-फ़िस की मारफ़त महारावजी साहब को निमंत्रणपत्र भेजा, जिसपर ये अपने प्राईवेट सेक्रेटरी मेहता मगनलाल तथा कर्नल पीअर्स साहब (जो पहिले जयपुर के रेज़िडेंट थे और इस समय महारावजी साहब के लिये इंडिआ ऑफ़िस की तरफ़ से स्टेट फंकशन्स के वास्ते पोलि-टिकल एटेंडेंट मुक़र्रर किये गये थे) सहित विंडसर कॅसल में पधारे. कॅसल के दरवाज़े पर कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब ने तथा बैठक के पास लॉर्ड मॉर्ले साहब ने इनका स्वागत किया.

जिस दिन इनकी मुलाक़ात लॉर्ड मॉर्ले साहब से हुई, उस दिन उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी, कि हिन्दुस्तान को लौटने के पहिले इनका एक बार फिर उनसे मिलना हो, इसलिये ता० २३ जून को ये मेहता मगनलाल व कर्नल सर वायली साहब सहित उनकी मु-लाक़ात के लिये फ्लावरमीड़ नामक बंगले पर पधारे, जिसकी सीढियों तक वे इनके स्वागत के लिये पधारे. फिर एक घंटे तक पालनपुर तथा दांता के राज्यों के साथ की सिरोहीराज्य की सरहदी तक़रार संबंधी तथा अन्य पोलिटिकल विषयों पर बातें होती रहीं. इनकी बातचीत तथा दलीलों से उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की और इनकी योग्यता तथा जान-कारी की प्रशंसा की. फिर अपने यहां की फिर किताब पर तारीख़ सहित

इनके हस्ताक्षर कराये.

इसी दिन श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की तरफ़ से स्टेट बॉल में, जो ता० २ जुलाई को होनेवाला था, शरीक होने के लिये इंडिश्रा ऑफ़िस की मारफ़त निमंत्रणपत्र आया, परन्तु ता० १ जुलाई के दिन हिन्दुस्तान को लौटना निश्चय होचुका था, जिससे पत्रद्वारा निमंत्रण के लिये शुक्रिया अदा किया और उसमें शरीक न होसकने की मजबूरी ज़ाहिर कीगई,

श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की सेवामें उपस्थित होने का निमंत्रणपत्र लॉर्ड चैंबरलेन की तरफ़ से आने पर ता० २४ जून की रात को ६ बजे दरबारी पोशाक धारण कर महारावजी साहब अपने पोलिटिकल एटेंडेंट लेफ्टीनेंट कर्नल पीअर्स साहब सहित बकिंगहाम पैलेस को पधारे. गाड़ी से उतरते ही मास्टर ऑफ़ हाउसहोल्ड व कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब ने तथा मुख्य दर्वाज़े पर लार्ड चैम्बरलेन ने इनका स्वागत किया. फिर मुलाक़ात के कमरे में बिराजे. १० बजे ये श्रीमान् भारतेश्वर के दर्बार के कमरे में पधारे और अपनी तलवार श्रीमानों के नज़र की. श्रीमानों ने उस तलवार के हाथ लगाकर महारावजी साहब की सलाम क़ुबूल फ़रमाई.

इस समय श्रीमान् भारतेश्वर खड़े हुए थे और श्रीमानों की बाईं तरफ़ श्रीमती क्वीन एम्प्रेस अलेकज़ैंड्रा खड़ी थीं. दोनों तरफ़ लंबी कतारों में कोर्टिअर्स यानी दर्बारी लोग खड़े हुए थे और ४ हिन्दुस्तानी

आर्डरली (अरदली) अफ़सर भी खड़े थे.

थोड़ी देर बाद महारावजी साहब दूसरे कमरे में पधारे, जहां पर श्रीमान् भारतेश्वर से बातचीत हुई, जिसमें श्रीमानों ने इनसे विलायत के आराम तथा आबहवा की अनुकूलता आदि का भी हाल दर्याफ्त फ़रमाया. फिर दूसरे उमरावों से क़रीब २ घंटे तक बातचीत कर महारावजी साहब वहां से लौटे. उस समय लॉर्ड चैंबरलेन उस स्थान तक पहुंचाने को आये, जहां पर उन्होंने इनका स्वागत किया था. मास्टर ऑफ हाउसहोल्ड तथा कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब गाड़ी तक पहुंचाने को आये.

ता० २५ जून को महारावजी साहब श्रीमान् प्रिन्स ऑफ वेल्स साहब की मुलाक़ात के लिये मार्लबरो हाउस नामक महल में पधारे. गाड़ी से उतरते ही श्रीमान् प्रिंस ऑफ वेल्स साहब के लॉर्ड चैंबरलेन तथा कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब ने इनका स्वागत किया. फिर मुलाक़ात के कमरे में पहुंचते ही श्रीमान् प्रिंस ऑफ वेल्स साहब ने खड़े होकर इनसे हाथ मिलाया और जिस कोंच पर श्रीमान् बैठे हुए थे, उसी पर अपनी दाहिनी तरफ़ इनको बिठलाया. फिर क़रीब २० मिनिट तक शिष्टाचार की बातें होने बाद ये अपने बंगले को वापस पधारे.

ता० २६ जून को श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय ने 'विक्टोरिआ ऐण्ड ऑल्बर्ट म्यूज़िअम' को खोला जिसके जलसे में

शरीक होने का निमंत्रण इंडिआ ऑफ़िस की मारफ़त आने पर महारावजी साहब उस जलसे में पधारे.

ता० २८ जून को श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ का मक़बरा अवलोकन करने को फ़्रॉगमोर पधारे और वहां के रिवाज़ के मुआफ़िक वहांपर पुष्पमालाएं चढ़ाईं. फिर विंडसर कॅसल भी देखा.

ता० ३० जून को लेडी व सर कर्ज़न वायली साहब की तरफ़ से महारावजी साहब के सन्मान के लिये इवनिंगपार्टी दीगई, जिसमें ये पधारे. इस पार्टी में राजपूताना के कई एक पुराने रिटायर्ड ऑफ़ीसर उपस्थित थे.

ता० ८ जून से ३० जून तक २३ दिन महारावजी साहब का लंडन नगर में विराजना हुआ. उस अरसे में इन्होंने टावर ऑफ लंडन, वेस्ट मिन्स्टर ऐबी, बैंक ऑफ इंग्लैंड, बकिंगहाम पैलेस और गार्डन, टेम्स नदी का पुल, सेंट रीजेंट्स पार्क, मार्लबरो हाउस, नैशनल गेलेरी, सेंटजेमसिस पार्क, सेंट पॉल्स केथीड्रल, केनसिंगटन गार्डन, रीजन्स पार्क, क्यु गार्डन्स, रिचमंड पार्क, पार्लिआमेंट हाउस, विक्टोरिआ गार्डन, ज़ुलॉजिकल गार्डन आदि प्रसिद्ध स्थान देखे और अपने पुराने मित्रों में से कर्नल कार्नेली, कर्नल ऐबट, मेजर ऐल इंपी, कर्नल ट्रैवर, कर्नल म्यूर, कर्नल पाउलेट, डाक्टर स्पेन्सर, सर आल्फ्रेड लायल, जनरल पर्सीस्मिथ, सर रॉबर्ट क्रॉस्थवेट, सर एडवर्ड ब्रेडफॉर्ड, कर्नल विलिअम लॉक तथा मिस्टर कॉलविन् साहब (एजंट गवर्नरजनरल राजपूताना जो उस समय छुट्टी पर थे) आदि से मुलाक़ातें हुईं.

ता० १ जुलाई सन् १६०६ ई० को महारावजी साहब ने दिन के ११ बजे विक्टोरिआ स्टेशन से रेल में सवार होकर हिन्दुस्तान को प्रस्थान किया. कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब डोवर तक इनको पहुंचाने को आये. डोवर से केले, मार्सैल्स, ब्रिन्डिसी, पोर्ट सैद, स्वेज़ की नहर होते हुए ता० १६ जुलाई के ६ बजे (दिन के) बंबई पधारे. मार्ग में ता० ५ जुलाई के दिन एक दुष्ट पंजाबी के हाथ से कर्नल सर कर्ज़न वायली साहब के मारेजाने की ख़बर सुनने पर इनको अपने उक्त पुराने तथा प्यारे मित्र के देहान्त का बहुत ही रंज़ हुआ. महारावजी साहब की इच्छा लंडन नगर में अधिक समय ठहर कर वहां के तजरुबे से लाभ उठाने की थी, परन्तु वहां की आबहवा इनकी प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण शीघ्र वहां से लौटना पड़ा, इसका इनको रंज ही रहा.

ता० १६ जुलाई को जिस समय इनका कर्नाक बंदर पर स्टीमर से उतरना हुआ, उस समय वहां पर महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब, राजसाहब जोरावरसिंह, जावाल, मांडवाड़ा, रोउआ वगैरह के सर्दार, राज्य के मुख्य मुख्य अहलकार, बम्बई में रहनेवाले सिरोही व मारवाड़ आदि के कई एक प्रसिद्ध पुरुष तथा बम्बई के कितने ही गृहस्थ इनके स्वागत के लिये खड़े थे. उन्होंने कुशलपूर्वक यूरप की सफ़र से लौट आने का हर्ष प्रकट कर इनको पुष्पों के हार पहिनाये और बड़ा ही सन्मान किया. वहां से 'नेपिअन्सी रोड' पर के 'जस्माइन लॉज' नामक बंगले को पधारे.

महारावजी साहब के इंग्लैंड की सफ़र करने, वहां पर श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय तथा प्रिन्स ऑफ वेल्स साहब की मुलाक़ात का सन्मान प्राप्त करने तथा लॉर्ड मॉर्ले जैसे विद्वान् एवं राज्यधुरंधर पुरुषों से प्रशंसित होने के कारण बंबई में निवास करनेवाली महारावजी साहब की प्रजा को यहांतक आनंद हुआ, कि ता० १६ जुलाई को बंबई के सुप्रसिद्ध जस्टिस् सर चंदावरकर महाशय की अध्यक्षता में एक बड़ी सभा, जिसमें बंबई के कई प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित हुए थे, माधवबाग़ में बुलाकर महारावजी साहब को ऐड्रेस दिया, जिसमें अपने स्वामी (महारावजी साहब) के दर्शनों का आनंद, विलायत की यात्रा से कुशलपूर्वक लौटने तथा वहां पर इनका सन्मान होने की प्रसन्नता, एवं चौहान वंश के गौरव, इनकी सर्कार हिंद की तरफ़ की राजभक्ति, सिरोहीराज्य की उन्नत दशा, इनको बड़े सन्मान के ख़िताबों का मिलना, बड़े बड़े सर्कारी अफ़सरों तथा राजाओं के साथ की इनकी मैत्री, क़हत के समय प्रजा का पालन, राज्यप्रबंध की कुशलता, सनातनधर्म पर श्रद्धा तथा संत और विद्वानों का सन्मान करना आदि की स्तुति कर अंतःकरण से धन्यवाद दिया गया था. इस पर महारावजी साहब ने अपनी तरफ़ की स्पीच में इस सन्मान के लिये संतोष प्रकट कर सभासदों का उपकार माना.

ता० २२ जुलाई को रातकी ट्रेन द्वारा बंबई से प्रस्थान कर ता० २३ को आबूरोड स्टेशन पर पहुंचे, जहांपर खराड़ी के मजि-

स्टेट, वहां के प्रतिष्ठित पुरुषों तथा सिरोही के अहलकारों ने स्टेशन पर हाज़िर होकर इनका स्वागत किया और फूलों के हार पहिनाये. शामके वक्त केसरगंज की कोठी पर दर्बार हुआ, जिसमें खराड़ी तथा सांतपुर के लोगों की तरफ़ से नज़र न्योछावरें हुईं तथा 'केसर शुगर मैन्यु फैक्चरिंग कंपनी' की तरफ़ से साह नगीनदास ने ऐड्रेस पढ़ा, जिसका यथोचित उत्तर महारावजी साहब ने दिया और उसके लिये प्रसन्नता प्रकट की.

ता० २४ जुलाई को ये आबू पर पधारे तो वहां की प्रजा ने भी इनके कुशलपूर्वक बड़ी सफ़र से लौट आने की ख़ुशी मनाई और ता० २५ जुलाई को जलसा कर इनको ऐड्रेस दिया. हिंदी का ऐड्रेस पण्डित रामसरूप ने पढ़ा और अंग्रेज़ी का आबू के मजिस्ट्रेट मि० ऐंडरसन साहब ने पढ़ा. इनमें महारावजी साहब तथा इनके राज्यप्रबन्ध की प्रशंसा और इंग्लैंड की यात्रा से कुशलपूर्वक लौटने की खुशी प्रकट कीगई थी. अंग्रेज़ी ऐड्रेस के जवाब में महारावजी साहब की तरफ़ की स्पीच इनके नायब दीवान सदाशिवनारायण दीक्षित बी. ए., एल एल. बी. ने पढ़ी.

ता० २७ जुलाई को आबू से खराड़ी लौटना हुआ, जहां से ता० ३० को पींडवाड़ा स्टेशन पर पधारे. वहां पर भी प्रजा की तरफ़ से खुशी मनाई गई और नज़र न्योछावरें हुईं. उस रात्री को वामणवारजी में विराज कर ता० ३१ को सिरोही पधारे, जहां पर भी बड़ी खुशी

मनाई गई. जिस समय ये अपनी राजधानी के पास पहुंचे, उस वक्त स्त्रियों के झुंड के झुंड मंगलगीत गाते और कलश बंदन कराते थे. शहर में इनकी सवारी देखने के लिये बड़े उत्साह के साथ लोगों की बड़ी भीड़ लग रही थी. जगह जगह लोग हर्षनाद कर सलाम करते थे. महलों में दाखिल होते ही १५ तोपों की सलामी सर हुई.

ता० १ अगस्त को इस खुशी का दर्बार सिरोही के महलों में हुआ, जिसमें राज्य के अहलकार तथा नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों की तरफ़ से नज़र न्योछावरें हुईं. सिरोही की प्रजा, राजसाहब दलपतसिंह (मणादरवाले) तथा जयपुर में पढ़नेवाले सिरोही के विद्यार्थियों की तरफ़ से एड्रेस दिये गये, जिनके यथोचित उत्तर बड़ी प्रसन्नता के साथ महारावजी साहब ने दिये. कवि राघूदान, शार्दूलदान व राजूराम जांखरवालों ने, कवि पबजी पेशुआवाले ने तथा कवि लालदान ऊडवाले ने यहां पर इस खुशी के सम्बन्ध की अपनी अपनी रची हुई कविता सुनाई, जिसके बाद दर्बार बरख़ास्त हुआ.

ता० १६ अगस्त सन् १९०९ ई० (वि० सं० १९६६) को साह मिलापचंद ने दीवान के पद का इस्तीफ़ा दिया, जिसपर ता० २४ अगस्त को अहमदाबाद के रहनेवाले जीवनलाल लाखिया, जो सर्कार अंग्रेज़ी के पेन्शनर हैं, दीवान नियत हुए.

ता० १६ नवम्बर सन् १९०९ को आनंदकंवर बाई का प्रसूतिका की बीमारी से बांसवाड़े में परलोकवास हुआ.

भुज के महाराजा खेंगारजी साहब की तरफ़ से विशेष आग्रह होने पर महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब, राजसाहब जोगावरसिंह (अजारीवाले), जावाल के ठाकुर मेघसिंह, रेविन्यु कमिश्नर सिंघी पूनमचंद, अपने प्राईवेट सेक्रेटरी सिंघी भबूतमल, डाक्टर लखपतराय ‡, हकीम मिरज़ामुहम्मद जब्बारबेग † के पुत्र अकबरबेग तथा दूसरे ७१ आदमियों सहित ता० १३ दिसंबर सन् १६०६ ई० (वि० सं० १६६६) को आबूरोड से विदा होकर भुज पधारे. जहां से ता० १० जनवरी सन् १६१० को वापस सिरोही पधारना हुआ. जाते तथा वापस आते समय जामनगर में ठहरना हुआ, जहांके जाम रणजीतसिंहजी साहब ने महाराजकुमार की बड़ी ख़ातिरदारी की.

ता० २८ फरवरी सन् १६१० ई० को महारावजी साहब राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल मि० कॉलविन साहब सी. एस. आई. से मिलने के लिये अजमेर पधारे. वहां से पुष्कर, काशी और प्रयाग की यात्रा करते हुए ता० २० मार्च को वापस सिरोही पधारना हुआ.

ता० ६ मई सन् १६१० ई० (वि० सं० १६६७) को श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय का स्वर्गवास लंडन नगर में हुआ, जिसकी ख़बर ता० ७ मई की शाम को मिलने पर महारावजी साहब ने ३ दिन तक बाज़ार, अदालतें आदि बंद रखने, जेल में

‡ श्रीमान महारावजी साहब के पैलेस डिस्पेन्सरी के डॉक्टर.

† महारावजी साहब के हकीम.

क़ैदियों से भी ३ दिन तक मिहनत न लेने, सात दिन तक नक्क़ार-ख़ाना तथा राज्य की घड़ी का बजाना बंद रखने की आज्ञा दी और राज्य भर में एक मास तक ग़मी रखने का हुक्म जारी किया तथा श्रीमान् वाइसराय साहब की मारफ़त अपनी तरफ़ की मातमी तथा शाही ख़ानदान के साथ अपनी हमदर्दी ज़ाहिर करनेवाला तार श्रीमती क्वीन अलेक्ज़ैंड्रा के पास भिजवाया.

ता० ६ मई को प्रातःकाल १०१ ग़मी की तोपें (मिनिटगन) और उसी दिन नये शाहन्शाह श्रीमान् पंचम ज्यॉर्ज महोदय की तख़्तनशीनी की १०१ तोपें चलाई गईं.

ता० १२ मई को श्रीमान् भारतेश्वर ज्यॉर्ज पंचम महोदय की तख़्तनशीनी का दर्बार सिरोही के राजमहलों में हुआ, जिसमें कितने एक सर्दार तथा मुख्य मुख्य अहलकार आदि उपस्थित हुए.

ता० २० मई को विलायत में स्वर्गवासी भारतेश्वर सप्तम एड-वर्ड महोदय की दफ़नक्रिया होनेवाली थी, इसलिये उस दिन सूर्या-स्त के समय ६८ तोपें चलाई गईं और अदालतों वग़ैरह में छुट्टी रही.

ता० २८ जून को दीवान जीवनलाल लाखिया छुट्टी लेकर अ-हमदाबाद गये और पीछे से वहीं से अपने पद का इस्तीफ़ा दे दिया, जो स्वीकार किया गया.

सिरोहीराज्य का प्रबन्ध पहिले अधिकतर दीवान की इच्छा-नुसार ही होता था, परन्तु इन महारावजी साहब ने अपनी गद्दीनशी-

नी के समय से ही राज्य का कुल काम अपनी निगरानी में करवाना शुरू किया. पहिले राज्य का मुख्य अधिकारी दीवान और उसकी सहायता के लिये एक नायब दीवान रहता था, परन्तु ता० १४ अक्टूबर सन् १९१० ई० (वि० सं० १९६७) से इन दोनों जगहों को तोड़कर दीवान की जगह मुसाहिबआला और नायब दीवान के स्थान पर सेक्रेटरी मुसाहिबआला नियत करना तजवीज़ हुआ और उसी दिन से महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब मुसाहिबआला नियत हुए तथा उनके सेक्रेटरी की जगह हरीलाल ठाकुर, जो गवर्नमेंट अंग्रेज़ी के पेन्शनर हैं, हुए.

ता० २६ अगस्त सन् १९१० ई० को महारावजी साहब ने श्रीमान् स्वर्गवासी भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की यादगार के 'ऑल इंडिआ मेमोरिअल फंड' में २५००) रुपये † तथा राजपूताना के 'प्रॉविंशिअल मेमोरिअल फंड' में २०००) रुपये दिये, जिसके लिये राजपूताना के एजंट गवर्नरजनरल साहब की तरफ़ से इनको धन्यवाद दिया गया और ये राजपूताना के प्रॉविंशिअल फगड के पेट्रन भी नियत हुए.

वि० सं० १९६७ आश्विन वदि ८ (ता० २६ सितम्बर सन् १९१०) को महाराजकुमार सरूपसिंहजी साहब की कंवराणी जाड़ेचीजी से भुज मुक़ाम पर गुलाबकंवर बाईजी का जन्म हुआ.

† श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ के मेमोरिअल फण्ड में भी महारावजी साहब ने १५०००) रुपये दिये थे.

श्रीमान् महाराजकुमार श्रीसरूपसिंहजी. सिरोही ।

इतिहासलेखकों की यह प्रणाली है, कि वे बहुधा वर्तमान राजा का इतिहास नहीं लिखते, परन्तु हमने अपने पुस्तक में यह अपूर्णता न रहने देने तथा पाठकों को श्रीमान् वर्तमान महाराव सर केसरीसिंहजी साहब के समय की मुख्य मुख्य बातों तथा इनके मुख्य मुख्य कार्यों से परिचित कराने के लिये ही इनका वृत्तान्त इस पुस्तक में संक्षेप से लिखा है.

इन महारावजी साहब को राज्य करते हुए इस समय ३६ वां वर्ष चल रहा है. इस अरसे में सिरोहीराज्य में बहुत कुछ उन्नति हुई है.

इनकी गद्दीनशीनी के समय इस राज्य की सालाना आमद केवल १०५०००) रुपये के क़रीब थी, जिसको बढ़ाना इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य समझा और उसीके लिये राज्यप्रबंध की दुरुस्ती कर सायर (चुंगी), जंगलात, आबकारी, बंदोबस्त आदि महकमे अलग कायम किये; अदालतों का नया प्रबंध कर क़ानून स्टैंप आदि का प्रचार किया; खेती को तरक्की देने के विचार से कई तालाब नये बनवाये तथा पुराने कई एकों की मरम्मत करवाई; ६० गांव (खेड़े) नये बसाये और ४०० कुएं खुदवाये, जिससे आमदनी ५२५०००) रुपये तक पहुंच गई.

प्रजा के आराम के लिये इन्होंने हॉस्पिटल, तालाब, सड़कें आदि बनवाई; क़हत तथा प्लेग के समय बहुत कुछ व्यय कर प्रजा की रक्षा की; सिरोही तथा पींडवाड़े में बेगार मुआफ़ करदी, जिससे इन दोनों जगह के ग़रीब लोगों का बेगार का कष्ट दूर हुआ; पुलिस का

नया प्रबंध किया, जिससे चोरी धाड़ों की संख्या में कमी हुई, सायर (चुंगी) का नया प्रबंध तथा भीलाड़ी रुपये के चलन के स्थान में कलदार रुपये का चलन जारी कर ब्यौपारियों को आसानी करदी. इनके ही समय में इस राज्य में रेल, तार और कई जगह डाकखाने खुले, जिनसे भी प्रजा को बहुत कुछ सुभीता हुआ.

राज्य का गौरव बढ़ाने के लिये इन्होंने महल, कोठियां, कचहरियां तथा अन्य मकान, तालाब, बाग़ीचे आदि बनवाये और राज्य की उन्नतदशा प्रकट करनेवाले सब प्रकार के राजसी ठाठ का सामान भी बहुत कुछ बढ़ाया.

ये अपने पूर्वजों के समान सर्कार अंग्रेज़ी के पूर्ण राजभक्त और मित्र हैं. श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम एडवर्ड महोदय की सेवा में अपनी राजभक्ति प्रकट करने के लिये इन्होंने अपनी वृद्धावस्था में इंग्लैंड की सफ़र की. इनकी राजभक्ति से प्रसन्न होकर श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ ने इनको के. सी. ऐस. आई. के तथा श्रीमान् भारतेश्वर सप्तम ऐडवर्ड महोदय ने जी. सी. आई. ई. के बड़े सन्मान के ख़िताबों से इनको भूषित किया. हिन्दुस्थान के वाइसराय तथा सर्कार अंग्रेज़ी के अफ़सरों से ये सदा स्नेह का बर्ताव रखते हैं. इन्होंने श्रीमती भारतेश्वरी क्वीन विक्टोरिआ का स्मारकचिन्ह कायम करने के लिये डायमण्डजुबिली टैंक बनवाया और कर्नल ऐबट, कर्नल ट्रैवर तथा क्रास्टवेट साहब की यादगारें कायम कर उनके साथ की अपनी मैत्री का परिचय दिया.

ये महारावजी साहब सरल तथा मिलनसार प्रकृति के होने के कारण हिन्दुस्थान के अनेक राजाओं से इनकी मैत्री है और जब जब उनका आबू या सिरोही आना होता है तब ये सदा उनका आदर सत्कार करते हैं और जिन जिन राज्यों में इनका जाना हुआ, वहां के राजाओं ने इनका भी बहुत कुछ आदर सत्कार किया.

अपने सर्दारों के साथ भी ये बहुत अच्छा बर्ताव करते हैं, जिससे इनके समय में सर्दारों का विशेष बखेड़ा न हुआ, इतना ही नहीं, किन्तु वे बहुधा इनसे संतुष्ट ही हैं. कितने एक सर्दारों को इन्हों-ने पैर में सोना पहिनने आदि की इज्ज़तें भी बख़्शीं. कई एक के आपस में सीमा आदि के बखेड़े थे, जिनको इन्होंने मध्यस्थ होकर निपटा दिया, जिससे उनका परस्पर का विरोध भी कम होगया.

अपनी प्रजा के एवं बाहरवालों के साथ भी ये बहुत अच्छा बर्ताव रखते हैं और उनसे मिलते हैं तब बड़ी कृपा दिखलाते हैं. इ-नको राजापनेका तनिक भी अहंकार नहीं है. ये अपने सेवकों के साथ भी ऐसा ही प्रीति का बर्ताव रखते हैं तथा उनके बड़े कुसूरों को भी कभी कभी मुआफ़ करदेते हैं और जिनके काम से ये प्रसन्न रहे उनको प्रतिष्ठा तथा जीविकाएं भी दीं.

इन्होंने अपने राज्यसमय बहुतसे रुपये वार्षिक तथा साम-यिक चन्दों † में भी दिये.

---

† इन्होंने अब तक १७५०००) से अधिक रुपये चंदों में दिये हैं, जिनमें से मुख्य मुख्य

इनकी मुख्य रुचि अपने राज्य के कार्य को संभालने की होने से मुख्य मुख्य काम बहुधा इनकी निगरानी में होते हैं, जिसके लिये ये कई घंटों तक नित्य राज्यकार्य करते हैं. कमठाने की तरफ़ भी इनको बड़ी प्रीति है, जिससे लाखों ‡ रुपये लगाकर जगह जगह मकानात बनवाकर राज्य की शोभा बढ़ाई है. इनको सनातनधर्म पर श्रद्धा होने के कारण इन्होंने तीर्थयात्रा तथा देशाटन भी बहुत किया. ये सदा संध्या आदि नित्यकर्म्म करने के सिवाय वेदान्त, पुराण आदि का श्रवण करते हैं और विष्णु के परमभक्त हैं. इनको भाषा कविता तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़ने तथा सुनने में प्रीति होने से सदा दो चार कवि इनके पास बने रहते हैं. इन्होंने अपने निज के पुस्तकालय में संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा भाषा के बहुतसे ग्रन्थों को एकत्रित किया है और इतिहास तथा प्राचीन वस्तुओं की तरफ़ रुचि होने के कारण कई एक अलभ्य ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा प्राचीन सिक्कों का भी अच्छा संग्रह किया है.

इनकी गद्दीनशीनी के समय इस राज्य की दशा साधारण ही थी, परन्तु इन्होंने अपनी बुद्धिमानी तथा कार्यकुशलता से कई बातों में उन्नति करके राज्य की दशा में बहुत कुछ परिवर्त्तन कर दिया है.

का हाल ऊपर लिखा जाचुका है. आबू की म्युनिसिपलटी को ई० स० १९०७ तक सालाना ३०००) रुपये देते थे, परंतु ता० १ जनवरी सन १९०८ से उस रक़म को बढ़ाकर ८०००) रुपये सालाना देने की आज्ञा दी.

‡ इन महारावजी साहब के हाथ से क़रीब २०००००) रुपये अबतक कमठानों पर लगचुके हैं.

शेष संग्रह नं० १.

सिरोही के चौहान राजाओं का नक़्शा.

नंबर	नाम	गद्दीनशीनी†.	
		विक्रम संवत	ईसवी सन्
१	महाराव लुंभा	१३६८‡	१३११
२	,, तेजसिंह	१३७७	१३२०
३	,, कान्हड़देव	१३९३	१३३६
४	,, सामंतसिंह		
५	,, सलखा		
६	,, रणमल्ल		
७	,, शिवभाण (शोभा)		
८	,, सैंसमल		
९	,, लाखा	१५०८	१४५१
१०	,, जगमाल	१५४०	१४८३
११	,, अखेराज	१५८०	१५२३
१२	,, रायसिंह	१५९०	१५३३
१३	,, दूदा	१६००	१५४३
१४	,, उदयसिंह	१६१०	१५५३
१५	,, मानसिंह	१६१९	१५६२

† नीचे लिखे हुए संवतों में कहीं कहीं एक वर्ष का फ़र्क़ होना संभव है.

‡ इस संवत् के आसपास परमारों से आबू का राज्य छीना.

सिरोही के चौहान राजाओं का नक़्शा.

नंबर	नाम	गद्दीनशीनी.	
		विक्रम संवत्	ईसवी सन्
१६	महाराव सुरतान	१६२८	१५७१
१७	,, राजसिंह	१६६७	१६१०
१८	,, अखेराज (दूसरे)	१६७७	१६२०
१९	,, उदयसिंह (दूसरे)	१७३०	१६७३
२०	,, वैरीशाल	१७३३	१६७६
२१	,, छत्रशाल (दुर्जनसिंह)	१७५४	१६९७
२२	,, मानसिंह (उम्मेदसिंह)	१७६२	१७०५
२३	,, पृथ्वीराज	१८०६	१७४९
२४	,, तख़्तसिंह	१८२९	१७७२
२५	,, जगत्सिंह	१८३९	१७८२
२६	,, वैरीशाल (दूसरे)	१८३९	१७८२
२७	,, उदयभाण	१८६५	१८०८
२८	,, शिवसिंह	१८७५ ‡	१८१८ ‡
२९	,, उम्मेदसिंह	१९१९	१८६२
३०	,, सर केसरीसिंहजी साहब	१९३२	१८७५

‡ महाराव शिवसिंह ने अपने बड़े भाई महाराव उदयभाण को वि० सं० १८७५ (ई० स० १८२७) में नज़रकैद कर राज्य का काम अपने हाथ में लिया. (महाराव) शिवसिंह की गद्दी-नशीनी महाराव उदयभाण का देहान्त होने पर वि० सं० १९०३ (ई० स० १८४७) में हुई.

कलेक्शन् ऑफ़ ट्रीटीज़, एंगेजमेन्टस् ऐंड सनद्ज़ (सी. यू. ऐचिसन)

कैटैलॉग ऐंड हैंडबुक ऑफ़ दी आर्किआलॉजिकल् कलेक्शन इन् दी इंडिअन् म्यूज़िअम (जे. ऐंडरसन)

कैटैलॉग ऑफ़ दी कॉइन्स इन् इंडिअन् म्यूज़िअम (वी. ए. स्मिथ)

कॉइन्स ऑफ़ इंडो सीथिअन्स (ए. कनिंगहाम)

,, ,, एन्श्यंट इंडिआ (,,)

,, ,, मिडिएवल ,, (,,)

,, ,, लेटर इंडो सीथिअन्स (,,)

क्रॉनिकल्स ऑफ़ दी पठान किंग्ज़ ऑफ़ देहली (ई० थॉमस)

क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इंडिआ (सी. एम. डफ)

गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स (जे. एफ. फ्लीट)

चीफ्स ऐंड लीडिंग फैमिलीज़ ऑफ़ राजपूताना

जर्नल एशिआटिक्

जर्नल ऑफ़ अमेरिकन् ओरिएंटल् सोसाइटी

,, ,, एशिआटिक् सोसाइटी ऑफ़ बंगाल

,, ,, दी जर्मन ओरिएंटल् सोसाइटी

,, ,, दी बॉम्बे ब्रैंच ऑफ़ दी रॉयल एशिआटिक सोसाइटी

,, ,, दी रॉयल एशिआटिक सोसाइटी

ट्रैवल्स इन् वेस्टर्न इंडिआ (जे. टॉड)

ट्रैवल्स ऑफ़ फाहिआन (जेम्स लग्गे)

ट्रैवल्स ऑफ़ हुएन्त्संग (ऐस. बील)

दी वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स (ए. ऐडम्स)
नेटिव चीफ्स ऐंड दर स्टेट्स (एब्री मैक)
नेटिव स्टेट्स ऑफ़ इंडिआ (जे. बी. मैलिसन्)
पिक्चरस्स इलस्ट्रेशन्स ऑफ़ एन्श्यंट आर्किटेक्चर इन् हिन्दुस्तान (फर्गसन्)
प्रॉग्रेस रिपोर्ट्स ऑफ़ दी आर्किआलॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिआ. वेस्टर्न [सर्कल्
बॉम्बे गेज़ेटिअर
भिल्सा टॉप्स (ए. कनिंगहाम)
राजपूताना एजेन्सी ऐन्युअल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट्स
राजपूताना गेज़ेटिअर (पुराना तथा नया)
राजपूताना सेंसस् रिपोर्ट्स
रासमाला (किन्लॉक फार्बस)
रिपोर्ट ऑन् दी आर्किआलॉजिकल् सर्वे ऑफ़ इंडिआ (ए. कनिंगहाम
  ,, ,, ,, ,, वेस्टर्न इंडिआ (जे. बर्जेस)
  ,, ,, ,, ,, सदर्न ,, (,,)
हिन्दराजस्थान (मार्कंड एन्० महता)
हिस्ट्री ऑफ़ इंडिआ (एच. एम. इलिअट)
  ,, ,, (एल्फ़िन्स्टन)
  ,, ,, इंडिअन म्युटिनी (जी. बी. मैलिसन्)
  ,, ,, ईस्टर्न ऐंड इंडिअन् आर्किटेक्चर (जे. फर्गसन)
  ,, ,, गुजरात (ई. सी. बेले)
  ,, ,, दी सिपॉई वॉर इन् इंडिआ (जे. डबल्यू. केए)

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ.	पङ्क्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२६	१३	स्फुटआर्यसिद्धान्त	स्फुटब्रह्मसिद्धान्त
४४	६	वि० सं० १३४३	वि० सं० १३४४
५४	८	(ई० स० १२६७)	(ई० स० १२६८)
५६	१३	वि० १२३६ (ई० ११८२)	वि० १२४६ (ई० ११९२)
,,	१५	वि० १३५६ (ई० १२९९)	वि० १२५६ (ई० ११९९)
७३	१३	(ई० स० १३२१)	(ई० स० १३३१)
७४	१४	शक संवत् १५८२	शक संवत् १५५२
१०१	८	प्रवरविक्रम	प्रवीरविक्रम
१२८	४	ई० स० ८१२	ई० स० ८१५
१४७	१०	वि० सं० १२१७	वि० सं० १११७
१६५	१५	हि० स० ९९	हि० स० ९२
१६५	१६	वि० ७६१ (ई० ७१८)	वि० ७६८
२५०	१२	ई० स० १६११	ई० स० १६२०
२६०	४	हि० स० १०६९	हि० स० १०६८
२६७	२०	ई० स० १६६३	ई० स० १६६७

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ.	पङ्क्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२७७	१२	वि० १८६४ (ई० १८०७)	वि० १८६५ (ई० १८०८)
२७८	१०	वि० १८६४ (ई० १८०७)	वि० १८६५ (ई० १८०८)
२८२	४	वि० सं० १८७४	(ई० स० १८७५)
,,	५	(ई० स० १८१७)	(ई० स० १८१८)
३३३	१६	(ई० स० १८६०)	(ई० स० १८७०)
३४५	१३	वि० सं० १८४०	वि० सं० १६४०
३८७	१	वि० सं० १६५७	वि० सं० १६५८
,,	६	वि० सं० १६५७	वि० सं० १६५६
४२४	१८	(ई० स० १८२७)	(ई० स० १८१८)